अहोभाग्य

वह तात धन्य—
वह मात धन्य—
वह क्षेत्र धन्य—
कुल गोत्र धन्य ।

वह घडी धन्य—
वह धर्म धन्य—
वह तन मन—
लोचन श्रोत्र धन्य ।

जो सन्निमित्त—
वनकर खुद को—
युग-युग तक—
अमर वनाते है ।

वे वर्द्धमान से—
अनु प्राणित—
उनकी ही—
गाथा गाते है ॥

वीरं शरणं पव्वज्जामि

सन्मति शरणं पव्वज्जामि

धम्मं शरणं पव्वज्जामि

जिन्होने

महामोह पर विजय प्राप्त की

उन महावीर प्रभु की शरण को प्राप्त होता हूँ।

जिन्होने

कैवल्य रश्मियो से

सारा लोक ज्ञानालोक से भर दिया

उन सन्मति श्री की शरण को प्राप्त होता हूँ।

अर्हत्केवली

भगवान वर्द्धमान द्वारा प्ररूपित

वीतराग धर्म की शरण को प्राप्त होता हूँ।

गणधर इन्द्रो ने भी जिनकी महिमा नही सर्वथा आँकी।
जिनकी स्तुति करते-करते शक्ति थकी जिनवाणी माँ की ॥
मैं अल्पज्ञ भला क्या जानूँ ? महावीर सर्वज्ञ जानते—
कैसे उनके जीवन दर्शन की खीची है मैंने झाँकी ॥

मंगल स्तुति

रचयित्री : विदुषीरत्न पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

जिनने तीन लोक त्रैकालिक सकल वस्तु को देख लिया।
लोकालोक प्रकाशी ज्ञानी युगपत सबको जान लिया।।

रागद्वेष जर मरण भयावह नहिं जिनका सस्पर्श करे।
अक्षय सुख पथ के वे नेता, जग में मगल सदा करे।।१।।

चन्द्र किरण चन्दन गगाजल से भी शीतल वाणी।
जन्म मरण भय रोग निवारण करने मे है कुशलानी।।

सप्तभग युत स्याद्वाद मय, गगा जगत पवित्र करे।
सबकी पाप धूली को धोकर, जग मे मगल नित्य करे।।२।।

विषय वासना रहित निरबर सकल परिग्रह त्याग दिया।
सब जीवो को अभय दान दे निर्भय पद को प्राप्त किया।

भव समुद्र में पतित जनो को सच्चे अवलम्बन दाता।
वे गुरुवर मय हृदय विराजो सब जन को मंगल दाता।।३।।

अनंत भव के अगणित दुःख से जो जन का उद्धार करे।
इन्द्रिय सुख देकर, शिव सुख मे ले जाकर जो शीघ्र धरे।।

धर्म वही है तीन रत्नमय त्रिभुवन की सम्पति देवे।
उसके आश्रय से सब जन को भव-भव से मगल होवे।।४।।

श्री गुरु का उपदेश श्रवण कर नित्य हृदय मे धारे हम।
क्रोध मान मायादिक तज कर विद्या का फल पावे हम।।

सबसे मैत्री, दया, क्षमा हो सबसे वत्सल भाव रहे।
सम्यक् 'ज्ञानमती' प्रगटित हो सकल अमगल दूर रहे।।५।।

☆

महामंगलमय महावीर

सिद्धिप्रदं महावीर, ससारार्णवपारग ।
सन्मति शिरसावन्दे, नित्यं सन्मतिसिद्धये ।।

× × ×

वीर सर्व सुरासुरेन्द्र महितो वीर बुधा. संश्रिताः ।
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्तया नमः ।।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्त मतुल वीरस्य वीरं तपो ।
वीरे श्री द्युतिकांतिकीर्ति धृतयो हे वीर ! भद्रंत्वयि ।।

× × ×

नमोस्तु तुमको सकल लोक के चूड़ामणि हे परमात्मन् !
नमोस्तु तुमको वीर! धीर! महावीर प्रभो! त्रिशलानंदन!
नमस्तु तुमको जिनपुगव! जिनवर्द्धमान! हे प्रभु अतिवीर!
नमस्तु तुमको हे सन्मति प्रभु! मुझको सन्मति दो महावीर ।।

चित्र-शतक के प्रकाशक
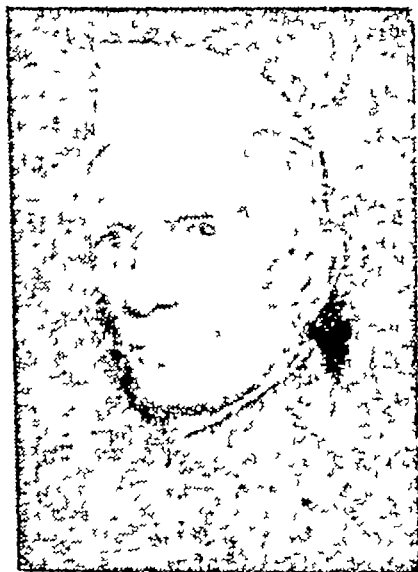
उदारमना—

बाबू रतनलाल जी जैन

१२८६ वकीलपुरा देहली-११०००६

जैन साहित्य प्रकाशन की तीव्र अभिरुचि रखने वाले उदारमना वयोवृद्ध बाबू श्री रतनलाल जी जैन कालका वाले सम्प्रति १२८६ वकीलपुरा देहली के निवासी है। लगभग ४० वर्षों से आप मुझ से सुपरिचित है और मेरी लेखनी पर इतने अधिक विमुग्ध है कि मेरे विशाल काय ग्रन्थो का प्रकाशन आपने निस्वार्थ भाव से किया है तथा भविष्य मे करने को अत्यन्त लालायित है।

वज्राङ्गबली हनुमान चरित्र, भक्तामर महाकाव्य, महावीर

सन्देश, महावोर श्री चित्र-शतक तथा प्रकाश्य मान सचित्र भक्ताभर महाकाव्य (पृष्ठ लगभग ७५०) आदि ग्रन्थ इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

श्री जिनवाणी सरस्वती मदिर के इस धर्म-प्राण पुजारी में समर्पण का गहराभाव है। सर्विस मात्र ही आपकी आजीविका का एक मात्र साधन होने पर भी आप उन्मुक्त हृदय से अपने न्यायोपार्जित धन का सही सदुपयोग श्री जिनवाणी माता के प्रसार-प्रचार मे ही सदा-सर्वदा करते रहते है परन्तु इस साहित्य-सेवा को आप आय का साधन नही बनाते। प्रस्तुत ग्रन्थ "महावीर श्री चित्र शतक" को समस्त जैन मन्दिरो शिक्षा सस्थाओ एव जैन पुस्तकालयो को विना मूल्य देने का उनका निर्णय दूसरो के लिए एक उदाहरण है। आपके वहिरग व्यक्तित्व मे जितना सादापन है, उतनी ही सरलता एव गभीरता आपके अतरग मे है। आत्मन्हिता आपका विशिष्ट गुण है। खादी का सादा लिवास आपकी देशभक्ति को प्रकट करता है।

कमलकुमार जैन शास्त्री "कुमुद"
सम्पादक महावीर श्री चित्र-शतक

गौरव प्राप्यते दानात् न तु वित्तस्य सचयात्।
उच्चैरिस्थिति पयोदाना, पयोधीनामध स्थिति ॥

ऊँचा सदा उठा है, छोडने वाला।
नीचे सदा गिरा है, जोडने वाला ॥

देखलो वादल गगन का वन गया साथी।
पर समुन्दर सर जमी पर फोड़ने वाला ॥

चित्र-शतक के सम्पादक

पं श्री कमलकुमारजी शास्त्री 'कुमुद'

व्यवस्थापक
श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन
खुरई (जिला सागर) म० प्र०

आप ही है जैन जगत के बहुचर्चित सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् एवं कलाकार, जिनकी सतत साधना ने स्थानीय प्रकाशन संस्था श्री कुन्थु सागर स्वाध्याय-सदन की छत्रच्छाया मे अब तक अर्द्ध-शतक ग्रथों का लेखन एवं सम्पादन करके जैन वाड्मय का भंडार भरा है। ६५ वर्षीय प्रौढ होने पर भी जिनमें युवाओं सदृष्य उन्मेप, कर्मठता एव जीवन्त क्रान्ति विद्यमान है।

चित्र-शतक के सम्पादक

कवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु'

अध्यापक श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल
खुरई (सागर) म० प्र०

जिनके व्यक्तित्व मे गौणता की मुख्यता है। सामान्य की विशेषता है, व्याकरण मे जिसे भाव वाचक सज्ञा, निज वाचक सर्वनाम और अकर्मक क्रिया कहते हैं वे है श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु'। श्री पं० कमलकुमर शास्त्री 'कुमुद' के अनन्य सहयोगी। स्व० व्रती श्री बाल चन्द जी के ४६ वर्षीय वरिष्ठ पुत्र।

चित्र-शतक के चित्र-शिल्पी
श्री दुर्गादीन जी श्रीवास्तव एडवोकेट "बागी"

प्रख्यात चित्रकार एवं सुमधुर गीतकार
खुरई (जिला सागर) म० प्र०

श्री वागी जी खुरई के विख्यात एडवोकेट है। चित्रकला आप पर तन-मन से मुग्ध है और हाथ धोकर इनके पीछे पडी है परन्तु आप है कि उसे तलाक दिये फिर रहे है। वागी जो ठहरे !

आज कल आप कविताओ का वाग लगाते है और वगावत की पैरवी करते है।

चित्र-शतक के चित्र-शिल्पी
श्री रमेश सोनी 'मधुकर'
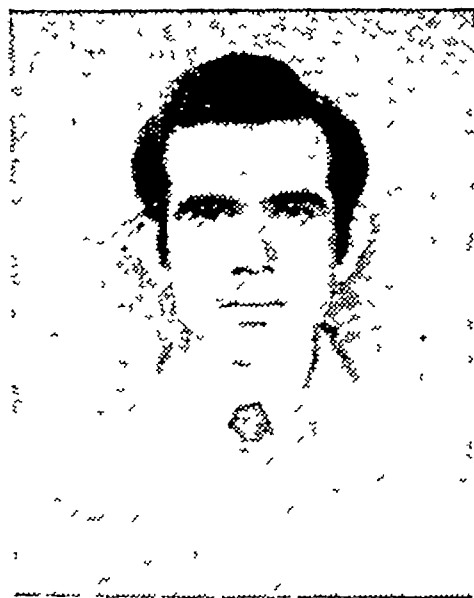
सिद्धहस्त चित्रकार एव सुमधुर गीतकार
खुरई (सागर) म० प्र०

श्री मधुकर जी निरन्तर अपनी तूलिका एव लेखनी द्वारा जिनवाणी माता का शृगार करने मे सदा दत्तचित्त रहा करते है।

आकाशवाणी केन्द्रो द्वारा आप की स्वरचित 'ज्योतिर्मय महावीर' (गीत-काव्य) रचना प्रसारित होने योग्य है।

चित्र-शतक का परामर्श दातृमंडल

ब्रह्मचारी श्री मानकचंद जी चवरे
न्यायतीर्थ, कारजा (महाराष्ट्र)

भारतीय जैन गुरुकुलो के प्रणेता
१०८ मुनि श्री समन्तभद्र जी
महाराज के
अनन्य शिष्य, एव गुरुकुलों के
अधिष्ठाता

पं० श्री जगमोहन लाल जी शास्त्री
कटनी (जबलपुर) म० प्र०
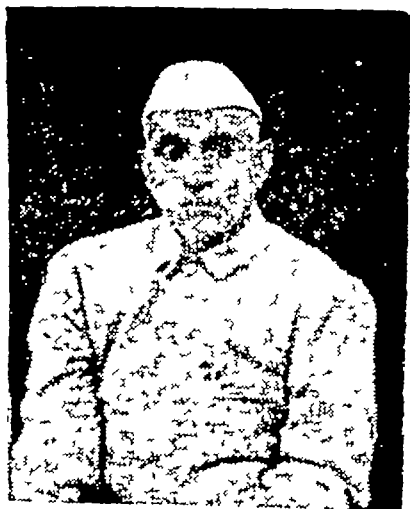
जैन सिद्धान्त के प्रमुख व्याख्याता
अनुभवी एवं चरित्रनिष्ठ
उच्चकोटि के प्रखर विद्वान्

श्री डा० शेखरचंद जी जैन
एम ए पी एच डी साहित्यरत्न

आर्टस् एण्ड कामर्स कालेज
भावनगर (गुजरात) मे
हिन्दी के विभागाध्यक्ष,
अहिन्दी भाषी प्रदेश मे
हिन्दी के प्रचारक एव
उद्भट् विद्वान

पं श्री नेमिचन्द जी जैन शास्त्री
एम ए (द्वय) वी-एड साहित्याचार्य

प्राचार्य श्री पार्श्वनाथ दि० जैन
गुरुकुल हायर सेकेण्ड्री स्कूल
खुरई (जिला सागर) म० प्र०
पी० एच० डी० के शोधात्मक एव
कर्मठ विद्वान

पं श्री हीरालाल जी सिद्धान्त शास्त्री
व्यावर (राजस्थान)
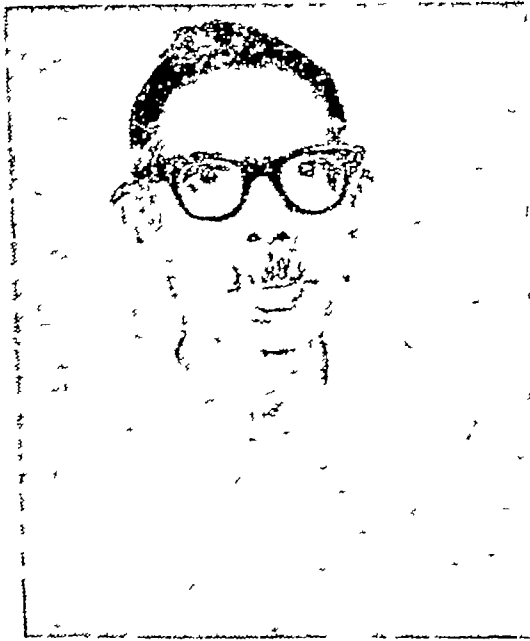
जैन वाड्मय एवं समाज के अनन्य सेवक
षट्खण्डागम के सुयोग्य सम्पादक

आभार

उपरोक्त परामर्शदातृ विद्वान् मंडली ने प्रस्तुत ग्रन्थ निर्माण के पूर्व एव पश्चात् समय-समय पर उचित निर्देशन एव सशोधन प्रदान कर इसे निर्दोष वनाने मे जो योग-दान दिया है उसके प्रति श्री कुन्थु सागर स्वाध्याय सदन (सस्था) अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।

—व्यवस्थापक

पृष्ठ निर्देशन (अ)

—०—

निवेदन के पृष्ठ

मानवता का चरमोत्कर्ष, पौरुष की सुष्ठु पराकाष्ठा, व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति अथवा चैतन्य आत्मा के स्वरूप का अन्तिम निखार जव अलौकिकता के सूक्ष्मतम केन्द्र-विन्दु पर पहुँच कर परमात्मा का रूप धारण कर लेता है तव तीनो लोको के जीव मात्र उस कृतकृत्य सत्व के पादार-विन्दो मे आत्म समर्पण करने के लिये लालायित हो उठते हैं। तथा कथित दिव्य ऐश्वर्य—वैभव—विभूतियाँ ही नही, वल्कि उत्कृष्ट से उत्कृष्ट माहात्म्य भी हतप्रभ होकर ऐसे चिच्चमत्कारमयी समयसार से आलोक की याचना करता है। केवल आत्मा और परमात्मा की सुदृढ भूमिका पर ही आधारित यह सम्पूर्ण जैन-शासन (आत्म-धर्म) रत्नत्रय मण्डित इन चैतन्य-सर्वज्ञ-कर्मण्य वीतरागी महाश्रमणो को 'अरिहत' नाम की महा मगलमयी सज्ञा से सम्वोधित करके अपने को धन्य मानता है। परम पूज्य पच परमेष्ठी के आदि पद पर प्रतिष्ठित ये अनादि सनातन पुरुष प्राणिमात्र के कल्याण के लिये अहिसा, प्रेम, विश्व—वन्धुत्व, सर्वोदय और वीतरागता परक व्यावहारिक उपदेश तथा पर से सर्वथा निरपेक्ष स्वाभाविक स्वावलम्वन परक निश्चय धर्म का उपदेश स्वय "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य" के ज्वलत और जीवित आदर्श प्रतीक वनकर देते हैं। नही-नही, भव्य जीवो के परम सौभाग्य से ही इन युगात्माओ के द्वारा सर्वाङ्गमुखी, निरक्षरी, अनेकान्ता वाग्गंगा दिव्यध्वनि के कलकल निनाद पूर्वक प्रवाहित होती रहती है, जिसमे विवेकी जन-हस अद्यापि किलोलें करते हुए स्वपर कल्याणकारी मुक्ति पथ पर गमन करते है।

समवशरणादिक लौकिक विभूतियो से सम्पन्न एव अनन्त चतुष्टयादिक अनंन अलौकिक गुणो से मडित तीर्थंकर नाम कर्म की सर्वोत्कृष्ट पुण्यतम प्रकृति की यह साकार मानवता जिन अरिहत विशेषो ने अपने अपूर्व पुरुषार्थ से अर्जित की है— वे युग पुरुप कहलाते हैं। जो यथावस्थित चराचर लोक के मात्र वीतराग ज्ञाता दृष्टा होकर आत्मानुशासित जैन-शासन की अनादि निधन प्रवहमान युगान्तरकारी ध्रौव्यधुरी के रूप मे सदा-सर्वदा वदनीय रहते है।

तीर्थङ्कर भगवान वर्द्धमान-महावीर इस कल्प-काल के एक ऐसे ही युग पुरुष महामानव थे जिनका तीर्थङ्करीय शासन चक्र अव भी भरत क्षेत्र मे अढाई हजार वर्ष से निरन्तर प्रवर्त्तमान है। इस पचम कलिकाल के जीवो के लिये उनकी निश्चय व्यवहार परक मुख्य गौण अनेकान्त वाणी जितनी आवश्यक और हितावह आज है, उतनी कदाचित् ही कभी रही है। महाश्रमण महावीर स्वामी आज भले ही अरिहत अवस्था मे साकार रूप से होकर हमारे नयन पथगामी आदर्श न हो (निराकार-निरजन सिद्धत्व अवस्था मे विराजमान हो) तो भी उनका वाङ्मय शरीर परम पूज्य गणधराचार्यो के सूत्र ग्रन्थो मे ग्रथित किया हुआ अव भी सुरक्षित है। आज आवश्यकता है उनके भले प्रकार पारायण की।

सर्वज्ञ भगवान महावीर की वह ओ कारमयी दिव्य ध्वनि उन पूज्यपाद गणधरो ने यद्यपि द्वादशाङ्ग श्रुत मे गूँथी थी परन्तु काल-प्रवाह ने उसकी व्युच्छित्ती करके हमे विविध शास्त्राभासो के गहन कानन मे अकेला छोड दिया है। फिर भी आचार्य कुद-कुदादि की असीम अनुकम्पा से वीर-शासन के अक्षुण्ण मूल-सूत्र हमारे हाथ मे हैं और प्रशस्त मोक्ष मार्ग हमे अभी भी सुस्पष्ट दिखाई दे रहा है।

आज भौतिकता के घने काले बादलो ने आध्यात्मिकता के सूर्य को ढक कर समस्त भूमण्डल को नास्तिकता के वातावरण से भर दिया है। अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार, असत् अधर्म का दु.शासन धर्म की सहिष्णुछाती पर निरन्तर मूग दल रहा है। ऐसे ही युग मे २५०० सौ वर्ष वाद यदि परि निर्वाणोत्सव विश्व व्यापी धूमधाम लेकर आ ही रहा है तो हर अन्तरात्मा की आवाज है कि यह वर्ष आध्यात्मिक सत्क्रान्ति की ऐसी तूफानी लहरें छोडे कि वर्तमान और भावी पीढी का युगो पुराना पाप-पक एक ही वार में प्रक्षालित हो जावे।

आज शासन प्रभावना की अपेक्षा युगीन क्रान्ति का महत्व अधिक है। हमे स्मरण है कि विगत दिनो स्वतन्त्र भारत ने केन्द्रीय शासन के सवल पर बुद्ध महा—परिनिर्वाणोत्सव भी अन्तर्राष्ट्रीय धूमधाम से सम्पन्न किया था। उसके परिणाम की धूमिल स्मृति भी आज नि शेष हो गई है। भय है कि कही यही हाल पच्चीस सौवें वीर परि निर्वाणोत्सव का न हो। यद्यपि सघ एव राज्य सरकारे और जैन समाज के विविध सम्प्रदाय विभिन्न स्मारकीय परियोजनाओ द्वारा भगवान महावीर के अमर गीत गा रहे हैं, परन्तु उन गीतो मे अपने प्राण घोलने वालो का आज भी अभाव है। इस वीर परि निर्वाणोत्सव की सार्थकता तो आध्यात्मिक युगीन सत्क्रान्ति से ही सभव है।

विविध बृहत् योजनाओ की इस भूमिका मे साहित्य प्रकाशन योजनाएँ भी वडे पैमाने पर अपना योग दान दे रही हैं। यह एक ऐसा सरल रचनात्मक कार्य है जिसकी इति श्री लेखन और प्रकाशन पर ही सुगमता से हो जाती है। आगे वाचन-पठन-मनन उनका होता है या नही इसकी कोई चिन्ता की ही नही जाती और न तद्विपयक योजनाएँ भी वनाई जाती। असली रचनात्मक कार्य तो जीवन-निर्माण है—इसे कौन समझावे ?

आज का जन-जीवन अध्यवसाय के लिये इतना व्यस्त और व्यग्र एव अध्यवसायी सा दिखाई दे रहा है कि स्वाध्याय की तो वात दूर, ग्रन्थो के पन्ने पलटना भी उसे मँहगा पडता है। आकर्षणो पर मुग्ध सौन्दर्य पिपासु नयनो को तो चित्रकला ही ज्ञान चेतना की जागृति का सर्वोत्कृष्ट माध्यम हो सकती है। शिक्षित और अशिक्षित, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी दोनो के लिये ही चित्र-लिपि एक ऐसा मौन मुखर काव्य है जो केवल दर्शन मात्र से ही पूरा का पूरा पढ लिया जाता है। मूर्ति दर्शन क्या है ? सहज ही शीघ्रता से पढा जाने वाला वह दर्शन काव्य जो चित्र लिपि मे लिखा गया है। यही कारण है कि जगत मे चित्रों और मूर्तियो की सार्वभौमिकता अपेक्षा कृत अधिक प्रशस्त है।

इसी तथ्य को लक्ष्य मे रखकर हमने सर्व साधारण को भगवान महावीर के आमूल चूल जीवन वृत्त से परिचित कराने के लिये उनका यह चित्रमय इतिहास अकित करने का दुस्साहस किया है। हो सकता है इसके पूर्व भी अनेकों प्रयास हुए हो—समानान्तर स्तर पर अभी हो रहे हो, परन्तु अपनी मौलिकता के प्रमाण स्वरूप इतना कहना ही पर्याप्त है कि हमने इसमे उन सभी चित्रो का सकलन किया है जो भगवान महावीर स्वामी की अतीत कालीन पर्यायों से सम्बद्ध हैं। शास्त्राधार पूर्वक वनाये गये ये कल्पना चित्र इतिहास की वेजोड झाँकियाँ हैं। अन्तिम भव सम्वन्धी महावीर श्री के जीवन चित्र अवश्य ही विपुलता से प्राप्त होते हैं, उनकी श्रृङ्खला मे भी हमने यथा संभव वृद्धि करने का प्रयास किया है। ध्वज प्रतीकादिक के वे सभी चित्र जो अखिल भारतीय निर्वाणोत्सव महा समिति ने निर्धारित एव प्रचारित किये हैं इसमे समाविष्ट करने का प्रयत्न भी हमने किया है। चित्रो का भावाकन इतना सुस्पष्ट हुआ है कि उनकी मूक मौन मुद्रा को भग करने का साहस ही नही

होता, परन्तु इस मुखर युग मे मौन का मूल्य ही क्या ? इस-लिये चित्रो को वाणी देने के लिये हमने तत्सबधी सक्षिप्त पद्य रचना द्वारा भी उन्हे अलकृत किया है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'महावीर श्री चित्र-शतक' मे दो खण्ड है । एक तो चित्र काव्य खण्ड और दूसरा पद्य काव्य खण्ड । इतने मे ही उनके समूचे जीवन दर्शन के गूँथने का प्रयास किया गया है ।

यह ग्रन्थ चित्र सकलन अथवा अलवम मात्र नही है वलिक पुराण एव इतिहास की कोटि मे रखा जाने योग्य एक स्मृति ग्रन्थ है । पद्य क्या हैं ? जैन सिद्धान्त के सूत्र हैं जिनमे घटना क्रम और कथानकों के सुरभित सुमन पिरोये गये है ।

ग्रन्थ के पन्ने पलटते हुये ऐसा प्रतीत होता है जैसे छाया चित्र पटल पर महावीर श्री की फिलम रील क्रम वद्ध रूप से चल रही हो । सक्षिप्त और ललित पद्य सगीत का कार्य करते हुये कथानक को रोचक वनाते जाते है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण कार्य कितना परिश्रम साध्य, व्यय साध्य और समय साध्य रहा इसकी कटुक अनुभूति सिवाय भुक्तभोगी सम्पादक के और किसी को नही हो सकती । अनु-भूति तो अवश्य कटुक थी परन्तु उसका परिपाक अन्तरात्मा मे अपूर्व माधुर्य रस घोल रहा था । उसी माधुर्य ने केवल लक्ष्य बिन्दु पर ही दृष्टि रखी । कटकाकीर्ण मार्ग पर नही ।

एक वर्ष पूर्व इस चित्र शतक की कल्पना भी मेरे मस्तिष्क मे नही थी । वह तो दिल्ली निवासी श्री पन्नालाल जी जैन आर्चिटेक्ट महोदय का सवल निमित्त था जो निरन्तर प्रेरणा की इकाई वनकर इस पुनीत निर्माण कार्य को सम्पन्न कराने मे सदैव स्मरणीय रहेगा । उनके दैनिक पत्र व्यवहारो ने मेरी शिथिलताओ के विरुद्ध अकुश का बृहत्तर काम किया । वस्तुत. इन्ही महावत श्री के निर्देशन मे 'महावीर श्री चित्र शतक' का

यह गुरुतर गजरथ सचालित किया गया है, अत उनके प्रति मैं श्रद्धा पूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

कृतज्ञता के द्वितीय सुपात्र आदरणीय श्रीमान् वाबू रतन लाल जी जैन वकीलपुरा देहली हैं जो हमारे प्रकाशनो मे मुक्त-हस्त से आर्थिक सहायता प्रदान कर उन्हे प्रकाश मे लाने का पुण्यार्जन करते ही रहते हैं। इस ग्रन्थ के एक खण्ड के प्रकाशन का भार अपने कधो पर लेकर हमारे ऊपर भारी अनुकम्पा की है एतदर्थ हम उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है।

कृतज्ञता के तृतीय एव चतुर्थ पात्र है श्री वावू दुर्गादीन जी श्री वास्तव एडवोकेट तथा श्री रमेश सोनी 'मधुकर'। दोनो महानुभाव सुमधुर गीतकार एव सिद्ध हस्त चित्रकार है। स्थानीय विद्वानो के निर्देशन मे रहकर उन्होने न जाने कितनी वार इन चित्रो को सवारा सजाया है। चित्र सकलन और चित्र निर्माण मे जमीन आसमान का अन्तर होता है। उभय चित्रकारो के जैनेतर होने से उनके सामने सैद्धान्तिक अवोधता की विकट समस्यायें थी। उन्हे हल करने के लिये भी कम प्रयास नही करने पडे।

हमारे परम स्नेही सहयोगी सम्पादक श्री फूलचद जी पुष्पेन्दु शिक्षक श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल खुरई ने इस ग्रन्थ के निर्माण कार्य सम्पन्न करने के लिये वस्तुत कुछ उठा नही रक्खा अत. उनके प्रति भी मै अपना आभार प्रकट करके हलका फुलका हो जाना चाहता हूँ।

इस सुअवसर पर मैं श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल खुरई के प्राचार्य श्रीमान् नेमिचन्द जी जैन एम० ए० साहित्याचार्य वी० एड० को भी कदापि विस्मरण नही कर सकता जिन्होने इस ग्रन्थ को सजाने-सवारने मे समय-समय पर अपनी बहुमूल्य रायें देकर हमे उपकृत किया है, वा मेरी प्रार्थना पर उन्होने सम्पादकीय वक्तव्य लिखकर मुझे आभारी वनाया है।

यह चित्र शतक कैसा क्या है ? इसकी उचित समीक्षा तो दर्शक और पाठक ही न्याय पूर्ण ढग से कर सकते हैं। मै स्वय क्यो इसकी प्रशसा करके अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने का आरोप सिर पर लूं। अस्तु—

मेरे जीवन-दीप का निर्वाण भी न जाने किस क्षण हो जाये इस आशका ने ही मुझे निरन्तर ही शुभोपयोग मे प्रवृत्त रखा है।

भगवान् महावीर श्री की २५०० सौवी वर्ष तिथि पर यह चित्र-शतक उनकी पावन स्मृति को युग युगान्त तक अमर रखे इस महान पवित्र भावना के साथ उन्ही के पावन चरणो मे यह ग्रन्थ समर्पित करते हुये पुलकित हो रहा हूँ। 'इत्यलम्'

खुरई (जिला सागर) म० प्र०
दिनाक ६-८-१९७४

विनयावनत—
कमल कुमार जैन शास्त्री,
"कुमुद"

ग्रन्थ-प्रसंग

अनादि निधन सनातनता को काल की सीमा मे कभी भी नही बाधा जा सकता तथापि पुराण और इतिहासो ने सदैव ही किसी एक कल्पित बिन्दु पर स्थित होकर अपने को आदिम इकाई घोषित किया है। आकाश और पृथ्वी का जिस कल्पित रेखा पर सगम का प्रतिभास होता है उसे क्षितिज कहते हैं। पुराणो के आकाश और इतिहास की धरातल का सगम भी एक ऐसा ही कल्पित क्षितिज है जहां से सभ्यता अथवा मानव विकास की कहानी का प्रारभ किया जाता है। उदाहरण के लिए आदिमयुग पर हम विचार करें। आधुनिक इतिहास जिस आदिमयुग की चर्चा करता है उसे वह स्वयं नही जानता। पुराण उसे समझाते हैं कि वह आदिमयुग दूसरा नही वल्कि इस कल्प काल की कर्मभूमि का प्रारम्भिक युग है जिसके प्रणेता आदिनाथ अर्थात् राजा ऋषभदेव थे। वही से मानव सभ्यता के विकास की क्रमिक कहानी का प्रारम्भ होता है।

अन्तिम मनु (कुलकर) श्री नाभिराय जी के पुरुषार्थी पुत्र युवराज ऋषभदेव ने स्वय कर्मभूमि के प्रारम्भ मे मनुष्यों को असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या और वाणिज्य की शिक्षा देकर उनका सतत विकास करने का परामर्श दिया। सव से पहिले मानव के द्वारा अपने विचार मौखिक ही व्यक्त किए गये, पर जव विचारो को लिपिवद्ध करने की आवश्यकता पडी तव कुछ सकेत चिन्ह वनाए गए। सभी ने अपने क्षेत्रो मे अनेको प्रकार के सकेत चिम्ह निर्मित किये और उन्हे आधार मान कर विचारो के लिपिवद्ध करने की परम्परा प्रारम्भ की गई। यही कारण है

कि आज विश्व के कोने-कोने में हजारो भाषाओं और सैकड़ों लिपियां देखने मे आ रही हैं।

विचारों के विकास के साथ मानव मे एक दूसरे के प्रति प्रेम पूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न हुई। कालान्तर मे ससार के सुखो एव दुखों को देखकर ईश्वर की परिकल्पना को जन्म दिया गया। अवतारवाद की आधी विश्व मे फैली और विविध धर्मो का जन्म हुआ। अनेको विचारक आये और उन्होने अपने-अपने विचार व्यक्त कर मानव समुदायो को अपना अनुयायी वनाया। इस प्रकार भले ही प्रथमानुयोग मे दृष्टान्तों द्वारा मानवत्व के विकास की कहानी का आदि और अन्त प्रतिपादित किया हो परन्तु द्रव्यानुयोग ने तो आत्मा के विकास की ही कथा अनादि और अनन्त की भाषा मे सतत कही है। कोई उसे सुने या नही। वह कहानी तो आज भी चल रही है, कल भी चलती रहेगी एव विगत कल भी चलती रही थी। उसकी अजस्र धारा तीनो काल प्रवहमान है। तो भी आध्यात्म की यह कथा मुग्ध सुषुप्त और मूर्च्छित जीवों को शीघ्र सुनाई नही देती, वल्कि आध्यात्मिक क्रान्ति के नगाडे जब उनके कानो पर जोर-जोर से वजते हैं तभी उनकी मोह-निन्द्रा भग होती है। और वे देखते हैं उस युग-पुरुष को जिसने चैतन्य आत्म जागृति का विगुल फूक कर उन्हे जगाया है। वस तभी से उनकी आत्मा के विकास की कहानी का प्रारम्भ हो जाता है।

भगवान महावीर स्वामी भी एक ऐसे ही आध्यात्मिक क्रान्ति के अग्रदूत युग-पुरुष थे जिन्होने ईश्वरवाद, व्यक्तिवाद, स्वार्थ-वाद, कर्मवाद, पाखंडवाद, अवतारवाद की जडी भूत रूढ मान्यताओं के विरुद्ध क्रमश शुद्धात्मवाद, परमात्मवाद, आत्म-वाद, परमार्थवाद और मोक्षवाद, अनेकातवाद का प्रतिपादन करके प्राणिमात्र के क्षद्रतम अहं को भी सिद्ध जैसे विराट्तम

अह् के पद पर पहुंचने की प्रेरणा दी—ज्ञान दिया। इस भांति सनातनता का आदि मध्य और अन्त सभी कुछ आत्मतत्त्व पर केन्द्रित हो गया। फलस्वरूप प्रत्येक आत्मा ने जव अपने मे झाक कर देखा तो निश्चयत उसे परमात्मा के पुनीत दर्शन हुए।

हम जानते है कि जिस वस्तु का विकास होता है उसका विनाश भी होता है। ज्ञान भी वर्धमान एव हीयमान, अव स्थित एवं अनवस्थित होता है। चाहे कारण कुछ भी हो भारतीय सस्कृति का भी यही हाल है। वर्तमान मे पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति का क्रमिक ह्रास होता जा रहा है। मानव की सघटनात्मक प्रवृत्तिया समाप्त हो रही हैं और विघटनकारी प्रवृत्तियां पनप रही हैं। सारा राष्ट्र एक असतुलन की स्थिति से गुजर रहा है। सर्वत्न अशान्ति एव अराजकता की भयकर स्थिति नजर आ रही है। जो मनुष्य थोडा भी समझदार है वह चाहता है कि अव देश मे कोई एक ऐसी व्यवस्था आवे जो शान्ति एव स्थिरता उत्पन्न करे। मैं समझता हू कि भगवान महावीर के उपदेश वर्तमान स्थिति को कावू मे करने के लिए अत्यधिक समर्थ हैं।

"महावीर श्री चित्त-शतक" ग्रन्थ मे भी भगवान महावीर स्वामी के जन्म जन्मान्तरो के चित्रो के द्वारा द्वारा प्रदर्शित करने का सुप्रयास किया गया है कि आत्मा का क्रमिक विकास किन ऊवड खावड या उच्चसम परिस्थितियो से गुजर कर हो पाता है। महावीर जिस प्रकार अनेको भवो के आधार पर अपना विकास कर जगत्पूज्यत्व प्राप्त कर सके उसी प्रकार प्रत्येक मानव की अपनी अन्तरग आत्मा ईश्वरत्व सम्पन्न है। अगर विकास हो तो ईश्वर वना जा सकता है।

'महावीर श्री चित्त-शतक' के चित्न आत्मा के क्रमिक विकास के साक्षात् प्रमाण हैं। प्रथमानुयोग उन्हे मानव के क्रमिक

विकास की कहानी कहता है। चित्र लिपि मे लिखित ये चित्र हमे यह समझाने का प्रयास कर रहे है कि अगर शाश्वत सुख शान्ति की अभिलाषा है तो अपनी आत्मा का विकास करे। विकास की गति जितनी सशक्त होगी सुख एव शान्ति उतनी ही निकट होगी।

भगवान महावीर के पच्चीस सौवे परिनिर्वाणोत्सव के अवसर पर हम 'महावीर श्री चित्र-शतक' एक सचित्र ग्रन्थ प्रस्तुत कर अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। आशा करते हैं कि चित्रों के साथ दिये गये हिन्दी छन्द उन्हे समझाने मे सहायता करेगे।

सभी प्राणी सुख-शान्ति प्राप्त करने का पथ प्राप्त कर सकेगे इस महान आशा के साथ हम यह ग्रन्थ सभी पाठकों के कर-कमलो मे समर्पित कर रहे हैं।

नेमिचन्द जैन एम ए
साहित्याचार्य
प्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ दि. जैन गुरुकुल
खुरई (सागर) म प्र.

जिनके

प्रशान्त ललाम दिव्य स्वरूप को

स्वय इन्द्र ने सहस्र सहस्र लोचनो से देख कर भी

तृप्ति प्राप्त न की

और

अपनी प्रसन्नता के पारावार को

ताडक नृत्य द्वारा भी किंचित अभिव्यक्त न कर सका

ऐसे

पांडुक शिला पर विराजमान

एक हजार आठ स्वार्णभ कलशों से

क्षीरोदक द्वारा अभिषिक्त

नवजात वर्द्धमान

अपने जन्म कल्याणक महोत्सव द्वारा

हमारे

जन्म-मरण का नाश करें

परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता .—

भीकमसेन रतनलाल जैन

१२८६ वकीलपुरा देहली ११०००६

जो

समवशरण के हृदय-कमल पर अन्तरीक्ष विराजमान है

तथा

जो तीन छत्र, चौसठ चँवर, देव दुन्दुभि, अशोक वृक्ष,

प्रभा-मण्डल, रत्न सिंहासन, पुष्पवृष्टि

और

दिव्य ध्वनि इन अष्ट प्रातिहार्यों से मडित है

ऐसे

गणधर चर्चित सुरपति अर्चित

तीर्थंकर महावीर प्रभु

अपनी प्रशान्त वैर विरोधी शीतल शान्त छत्र-छाया

मे

इस क्षुद्र प्राणी को स्थान दान देकर

धर्माम्मृत का आस्वाद कराने की दया करे

परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

पन्नालाल जैन आर्चिटेक्ट (साहित्यकार)

व्यवस्थापक जैन साहित्य प्रकाशन

४९८३ शिवनगर न्यू देहली

११०००५

जिन्होंने भगवती अहिंसा की

सार्वभौमिक सार्वकालिक सार्वजनीन

प्रतिष्ठा द्वारा

दया-करुणा एवं विश्ववन्धुत्व

की

सुधा सरिता बहाकर

विश्व का कोना कोना रस प्लावित कर दिया

उन

सन्मति श्री के

पावन पाद-पद्मो मे

हमारी कोटि-कोटि अर्चनाएं

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

राधामोहन जैन, राधा फैन्सी स्टोर्स

६८ चादनी चौक देहली-६

अधिकृत विक्रेता

फोटो केमरे और उनका सामान, फोटो स्टेट कापीज,

टार्च, चश्मे एव फाउन्टेनपेन इत्यादि

जो

तत्त्व-बोध स्वरूपी सम्यक् ज्ञान के सम्पूर्ण विकसित

कैवल्य के द्वारा बुद्ध ही हैं

जो

तीनो लोको के परम कल्याणकारी होने से

शिव शकर ही हैं

जो

रत्नत्रय मडित प्रशस्त मोक्ष-मार्ग के

विधि-विधायक होने से

ब्रह्मा विधाता ही है

एव

जो आत्म-पौरुष की सर्वश्रेष्ठ उत्तमता को प्राप्त होने से

प्रत्यक्ष ही पुरुषोत्तम विष्णु है

ऐसे

एक हजार आठ नामो से सवोधित होने वाले

वर्द्धमान स्वामी

हमारा सवका कल्याण करे

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

साहित्यरत्न पं० हीरालाल जैन 'कौशल' शास्त्री

अध्यक्ष जैन विद्वत्समिति

३७४९ गली जमादार पहाडी धीरज देहली-६

जिन्होंने आत्मीय स्वावलम्वन का

परमोत्कृष्ट

आदर्श प्रस्तुत करके

अपने पौरुष को

पूर्ण रूपेण अपनी वैयक्तिक पर्याय मे व्यक्त किया

और

जिन्होने मुक्ति

"प्राणिमात्र का जन्म सिद्ध अधिकार"

इस दिव्य निनाद को

तीनो लोको मे गुजायमान किया

उन्ही

महावीर श्री

के पुनीत चरणो मे

हमारे कोटि कोटि प्रणाम

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

धर्मचन्द जैन पांड्या

रतन वेस्ट मकराना स्टोन सप्लाई कम्पनी

मकराना (राजस्थान)

मकराना सगमरमर के किसी भी काम के लिये सेवा का मौका दें

जो
श्रमण सस्कृति के अप्रतिम नायक
युग वोध के चैतन्य प्रतीक
एव
वीतराग विज्ञानता के मूर्तिमान स्वरूप थे
उन

तीर्थंकर वर्धमान महावीर के

पुनीत चरणो मे मेरे श्रद्धा प्रसून समर्पित है
कवि श्री सुधेश के
स्वर मे स्वर मिलाकर मैं भी उनकी वदना करता हू

जिनके वदन ही भवाताप—
हित दाह निकदन चदन हैं।
इस आनन्दित कवि वाणी से
वदित वे त्रिशलानन्दन हैं ।।

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
फर्म हजारीलाल शिखरचन्द जैन
वस्त्र-विक्रेता अमरपाटन (म प्र)

—सहयोगी सस्थान—

सि० हजारीलाल
शिखरचन्द जैन
वस्त्र विक्रेता
सतना (म प्र)

सि० शिखरचन्द
रतनचन्द जैन
वस्त्र विक्रेता
सतना (म. प्र.)

जिन्होने

हिंसा एव पाखड का ताण्डव समाप्त करके

प्रेम और अहिंसा का सुखद समीर बहाया

तथा

परम आत्म कल्याणक मूल्यो को जीवन मे

प्रयोगात्मक रूप दिया

उन

महाप्रयाणी वीतराग जिनवर दिव्यज्योति स्वरूप

विश्व प्रेरक महाश्रमण

भ० महावीर स्वामी के

पादारविन्दों मे

भावसूत्र गुम्फित श्रद्धा-सुमन

अर्पित है

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

क्षुद्र श्रावक फतेचन्द जैन सराफ

शमसाबाद (आगरा) उ प्र

अपने ध्यान का ध्येय बनाने से भव्यजीव

स्वद्रव्य परद्रव्य का

तथा

औपाधिक भाव एव स्वभाव-भाव का

भेद विज्ञान करते हैं

ऐसे

स्वय सिद्ध

शुद्धात्म स्वरूप को दर्शाने वाले

प्रतिबिंबादर्श

कृतकृत्य परमेष्ठी

श्री सन्मति प्रभु

के

पावन-पाद-पद्मो

मे

हमारी कोटि कोटि अर्चनाएँ अर्पित हैं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

ई० डी० अनंतराज शास्त्री

मु पो नल्लूर वाया तेल्लार (एन ए डी. ई) मद्रास

जो गृहस्थावस्था त्याग कर मुनिधर्म साधन द्वारा

चार घातिया कर्म नष्ट होने पर

अनंतचतुष्टय प्रगट करके

कालान्तर मे

चार अघातिया कर्मक्षय होने पर

पूण मुक्त हो गए हैं

तथा

जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का सर्वथा अभाव होने से

समस्त आत्मीक गुण प्रगट हुए हैं

और

जो लोकाग्र शिखर पर किंचित न्यून पुरुपाकार

विराजमान हैं

ऐसे

सिद्ध परमेष्ठी श्री महावीर परमात्मा

हमारे निरन्तर आराध्य बने रहे

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

जयन्ती प्रसाद सुकमाल चन्द जैन

मु पो. खेडा लइ० सरधना

(जिला मेरठ) उ. प्र

जिन्होने सर्व धर्म समन्वय सम्पन्न

समझौता वादी नीतियो की नीव पर

अनेकान्त सिद्धान्त का

वह प्रामाणिक धर्म-महल खडा किया

जिसकी छत्रच्छाया मे

प्राणिमात्र चैन की सास लेता हुआ

आज

अपना आत्म-कल्याण कर सकता है

उस

अनेकान्त प्रतिपादक-वस्तु-स्वरूप दिग्दर्शक

श्री वीर प्रभु के

चरण-कमलो मे शत-शत अभिनन्दन

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता .—

चमनलाल फूलचन्द शाह जैन

मु पो. पादरा (वडौदा)

गुजरात

जिनका विमल स्फटिक मणि तुल्य पारदर्शी मानवत्व

शुभ अर्हत्व मे परिणत होकर

आलौकिक आदर्श की चरम-सीमा का

ऐसा

सच्चिदानन्द घन ध्रुव केन्द्रविन्दु

वन गया

जिसका माप तीनों कालो और तीनो लोकों की

वृहद परिधियो से नही

वल्कि

मात्र आत्म केन्द्रता से ही सम्भव है

उन

परम ज्योति अरिहत प्रभु

श्री वीरनाथ के

चरणो मे हमारा कोटि कोटि नमन

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

तिलोकचन्द पाटनी

प्रचारमन्त्री मनीपुर प्रातीय दि० भ० महावीर २५०० सौ वा

निर्वाण महोत्सव समिति इम्फाल (मनीपुर)

जो सच्चे अर्थो मे एक आदर्श नेता है-प्रणेता है

परन्तु

जिन्होने बध-मार्ग का नही अपितु

मोक्ष-मार्ग का नेतृत्व किया

एव

वाचाल उपदेष्टा वनकर नही

वल्कि

कैवल्य प्राप्ति तक मौन साधक रहकर

उन्होने जैसा देखा, वही सवको कर दिखाया

ऐसे

कर्म पर्वतो के भेत्ता तथा विश्वतत्त्वो के वेत्ता

महावीर श्री

के चरणारविंदो का हम वार-वार

अभिनदन करते है

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

नथमल भागचन्द जैन

जनरल मर्चेन्ट गवर्नमेंट फुडग्रेन

एण्ड शुगर होल सेलर्स

मु पो लालगोला पिन कोड ७४२१४८

जिला मुर्शिदावाद (पश्चिमी वगाल)

जिनकी स्याद्वादमयी मन्दाकिनी
विविध नय कल्लोलों से तरगित होकर
आज भी
इस वसुन्धरा पर
अजस्त्ररूप से प्रवाहित हो रही है
तथा
जिसके सम्यग्ज्ञान सरोवर मे
विवेकी मानस हस किल्लोले करते हुए
अपनी चिर पिपासा शात करते है
ऐसे

महावीर वर्द्धमान स्वामी

हमे भी
अपनी दिव्य-ध्वनि की विमल-गगा में
अवगाहन करने का सुअवसर दे
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता —
श्रीमन्त सेठ भगवानदास शोभालाल जैन
बीडी निर्माता एव बीडी पत्ते के व्यापारी
चमेली चौक सागर (म प्र.)

जिनके

महा मगलमय पच कल्याणक महोत्सव

न केवल मानवेन्द्रों द्वारा वल्कि शतेन्द्रो द्वारा सम्पन्न हुए

और जो

अलौकिक एव चामत्कारिक चौतीस अतिशयों

तथा

अष्ट महा प्रातिहार्यों जैसे बाह्य ऐश्वर्यों के स्वामी थे

वे

अतरग अनत चतुष्टय लक्ष्मी के धनी

श्री महावीर स्वामी

हम सव को

ऋद्धि सिद्धि के प्रदाता वनें

परम-पुनीत- पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

सेठ खेमचन्द मोतीलाल जैन

कुशल कारीगिरो द्वारा वनवाई गई ढोलक छाप वीडी के निर्माता

पलोटन गंज सागर म. प्र.

हे भव्य जीवो !

मेरा सुदूर अतीत भी तुम्हारे सदृश्य ही हीयमान होकर

भव-भ्रमण के निविड तिमिर मे

अनत कल्पकालो मे असहाय भटकता फिरा

किन्तु

ज्यो ही मैने अपने स्वरूप का भान किया

स्वपर भेद विज्ञान किया

आतम-साधना का दृढ व्रत ठान लिया

त्यो ही चल पडा—

सम्यक् रत्नत्रय के पथ पर मेरे जीवन का रथ

और जाकर रुका वहा

लोकाग्र के शिखर पर

जहा मेरी अन्तिम मजिल थी

सिद्ध-शिला

तो तुम भी आओ वही उसी पथ से

मैं तुम्हारा प्रकाश स्तम्भ वन कर कव से

खडा हू

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

बालचन्द श्री व्रती वाङ्मय संस्थान

संचालक फूलचन्द बाबूलाल जैन वैद्य

खुरई (जिला सागर) म प्र

जिनके कैवल्य रूपी चैतन्य आदर्श मे

लोकालोक के सम्पूर्ण चराचर पदार्थ

युगपत्

निज गुण पर्यायो सहित

त्रयकाल

प्रतिविम्बित होते रहते हैं

ऐसे

प्रत्यक्षदर्शी सन्मार्ग प्रकाशक सर्वज्ञ-सूर्य

भगवान महावीर स्वामी

हमारे अन्तर्वाह्य लोचनो के आगे
निरतर झूलते रहे
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

कृषि पंडित श्रीमन्त सेठ ऋषभ कुमार बी. ए.

लेंड लार्ड एन्ड बेंकर्स

भूतपूर्व विधायक खुरई (सागर) म प्र

जिन्होने

आवश्यकताओ की समानान्तर मर्यादाओ से

वाहर भागने वाली दुष्प्रवृत्तियां

संग्रह परिग्रह जमाखोरी आदि की

आशक्तिपूर्ण

मूर्च्छंका

डटकर विरोध किया

उन अकिंचन अरिहंत परमात्मा

श्री अतिवीर स्वामी

के

चरण सरोजो में

भावभीनी पुष्पाञ्जलि समर्पित है

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

धन्नालाल प्रेमचंद सराफ

नानकवार्ड खुरई (सागर) म प्र.

फर्म—दमरूलाल कन्नालाल सराफ
सराफी दुकान खुरई

फर्म—सराफ अदर्श
गल्ले के व्यापारी खुरई

जो आत्म-स्वरूप मे सस्थित होते हुए भी

सर्व व्यापी है

सम्पूर्ण लोक व्यवहार-व्यापारो के वेत्ता होने पर भी

परम अकिंचन है

इच्छाओं का अस्तित्व न होने पर भी

जिनके

सर्वांग से दिव्य-ध्वनि खिरती है

जाग्रत उपादन वाले भव्य जीवो को

जिनकी ध्वनि जड होते हुए भी समर्थ निमित्त वनती है

ऐसे

समवशरण-साम्राज्य के एकच्छत्त निर्लिप्त सम्राट् अरहत प्रभु

श्री महावीर स्वामी की

मागलिग शरण मे

मैं

अपना आत्म-सर्मपण करता हू

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

चौधरी आइल मिल्स

स्टेशन रोड खुरई (जिला सागर) म प्र.

(विशुद्ध खाने का तेल वनाने मे शासन से स्वर्ण-पदक प्राप्त)

जिन्होने पर्याय गत अह को गौण करके द्रव्यगत अह के

दिग्ददर्शन की सम्यक् विधि

प्रतिपादित की

और

जिन्होने

मिथ्यात्व पर सम्यक्त्व की

स्वार्थ पर आत्मार्थ की

ससार पर मुक्ति की

विजय

दुन्दुभि वजाई

उन

महावीर श्री

के युग चरणो मे मेरा वारम्वार नमन

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

तार सेठी   टेलीफोन ८१, २३ निवास ३१

अर्पयिता .—

फर्म धन्नालाल गुलावचंद सेठी

अनाज तिलहन के व्यापारी एव कमीशन एजेन्ट

अधिकृत वितरक —इण्डियन आइल कारपोरेशन लि०

मु. पो. खुरई (जिला सागर) म प्र.

हे परम अकिंचन निर्ग्रन्थ देव !
श्री महावीर प्रभो !
आपके पास किंचिन्मात्र भी लौकिक विभूतिये नहीं हैं
तथापि
आप तीनो लोको के श्रेष्ठ एव सुविख्यात दान शिरोमणि है
क्योकि
निरन्तर ही शम-सम की अविनश्वर
मणियां लुटाते ही रहते है
आप
ऐसे अचल हिमालय है जो स्वय जल हीन होने पर भी
गगा जैसी अगणित सरिताओ का
उग्दम केन्द्र है
और
हम अपार जल-राशि से भरे हुए ऐसे अभागे खारे समुद्र हैं
जिनमे से
एक भी नदी निकलती नही है
अतएव
हम भिक्षुक होकर आप से अपना ही स्वरूप मागने
आपकी शरण मे आये हैं
परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
ज्ञानकुमार हुकमचद जैन धनोरावाले
शिवाजी वार्ड खुरई (जिला सागर) म. प्र.

जिनका

परमौदारिक शरीर

काम क्रोधादिक सर्व निदनीय वैभाविक चिह्नों से

सर्वथा वर्जित है

तथा

जिनके दिव्य वचनो से

लोक मे धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन होता है

ऐसे

गणधर इन्द्र एव अनेकात मूर्ति सरस्वती द्वारा स्तुत्य

परमात्मा

श्री महावीर स्वामी

पुनीत चरणों मे

हमारा

कोटि-कोटि नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

चौधरी शीलचंद अनिल कुमार जैन

चौधरी कटपीस वस्त्र भडार

नानकवार्ड मुरई (सागर) म. प्र.

हे महावीर प्रभो!

वह भी एक कूप मडूक था !

मैं भी एक पर्यायमूढ कूप-मडूक हू !!

वह पशु पचेन्द्रिय था

मैं मनुष्य पचेन्द्रिय हू

किन्तु

नाथ!

उसकी भाव-भीनी भक्ति वदना-पूजन-अर्चना ने

एक कमल पांखुरी लेकर ही उसकी

वह

तुच्छ पर्याय छुडा दी

और

सुर-पर्याय प्रदान की

फिर

आप ही वतलाईये आप की पुनीत सेवा मे

मैं क्या प्रदान करूँ कि

मुझे वैयक्तिक पर्याय से

मुक्ति मिले

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

सतपाल क्लाथ स्टोर

प्रो. परमानन्द जेऊमल सिंधी

स्टेशन रोड खुरई (सागर) म प्र.

जिनकी

विशाल हृदया अहिंसा से मात्र वैशाली का ही नही

बल्कि

तीनो लोको के हृदय विशाल हो गये

और

जिनकी पावन निर्वाण विभूति से मात्र पावा ही नही

बल्कि

प्रत्येक आत्मा का कोना कोना पावन हो गया

ऐसे

जाज्वल्यमान ज्योतिर्मय तीर्थङ्कर

परमात्मा महावीर स्वामी

के

पुनीत चरणो मे

हमारी कोटि कोटि वदनाऐ

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

चौधरी खेमचंद मुन्नालाल जैन

नानकवार्ड खुरई (सागर) म प्र

कुशल कारीगरो द्वारा हिन्दनुतारण हार (चरखा-छाप) बीडी के

एकमात्र निर्माता

जो
अनत ज्ञान द्वारा अपने अनंत गुण पर्यायो को
एवं
समस्त जीवादि द्रव्यो को एक साथ ही
विशेष प्रत्यक्षता से
कर-तल आमलक वत् जानते है
तथा
जिनके चतुर्दिक पार्श्व मे
लौकिक प्रभुत्व अतिशय एव पूज्यता का
वाह्य सयोग
निश्चयत पाया ही जाता है
ऐसे
अरहत परमेष्ठी सर्वज्ञ परमात्मा

श्री वर्द्धमान स्वामी के

चरणो मे
हमारी कोटि कोटि वन्दनाऐ
अर्पित
है
परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पायिता :—

चौधरी खेमचंद मुन्नालाल जैन

पुराना वाजार मुगावली (गुना) म० प्र०
कुशल कारीगरो द्वारा हिन्दनुतारणहार (चरखा-छाप) बीडी के
एकमात्र निर्माता

हे भव्य जीवो !

मेरा सुदूर अतीत भी तुम्हारे सदृश्य ही हीयमान होकर

भव-भ्रमण के निविड तिमिर मे

अनत कल्पकालो से असहाय भटकता फिरा

किन्तु

ज्यो ही मैने अपने स्वरूप का भान किया

आत्म-साधना का दृढ व्रत ठान लिया

त्यो ही चल पडा

सम्यक् रत्नत्रय के पथ पर मेरे जीवन का रथ

और

जाकर रुका रुका वहा लोकाग्र के शिखर पर

जहा पर मेरी अन्तिम मजिल थी

सिद्ध-शिला

तो तुम भी आओ वही उसी पथ से

मैं तुम्हारा प्रकाश-स्तम्भ बन कर कब से खडा हू ।

मैं स्वयं वर्द्धमान हूं

तुम भी स्वय सिद्ध वर्द्धमान हो

जरा अपनी ओर निहारो तो

मेरा

वरद-हस्त तुम्हारे ऊपर है

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

चौधरी खेमचंद मुन्नालाल जैन

आचवल वार्ड बीना (जिला-सागर) म प्र

कुशल कारीगरो द्वारा हिंदनुतारणहार (चरखा छाप) बीडी के

एकमात्र निर्माता

जिनके समवशरण का अलौकिक वैभव

समाजवाद-साम्यवाद

एव

सर्वोदय वाद

का

एक ज्वलत-आदर्श एव प्रमाणिक प्रतीक था

उन अतरीक्ष परमात्मा

श्री वीर प्रभु के

चरणार विदो मे

हमारी कोटि-कोटि वदनाऐं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता .—

दीपचंद मुलायम चंद एवं समस्त मलैया परिवार

खुरई (जिला सागर) म प्र.

हे परम ज्योति वीरप्रभो !

आप एक ऐसे अनुपम चिन्मय रत्न दीप है

जिसमे

आवश्यक्ता नही है

वर्तिका की, तैल की, धूम्र की

तथापि

अपने शाश्वत ज्ञान-प्रकाश से

सम्पूर्ण लोकालोक को आलोकित करते रहते है

अतएव

इस पच्चीस सौवी दीपमालिका के पावन पर्व पर

आज

मैं आप की लौ द्वारा ही अपना ज्ञान दीप

प्रकाशित करने आया हूं

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

रमेशचंद ताराचंद जैन

वस्त्र विक्रेता स्टे० रोड खुरई (सागर) म प्र

जिहोने

इस युग मे वीतरागता के धर्मतीर्थ का प्रवर्तन

अहिसा-सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह की

जीवन्तमूर्ति वन कर किया

जो

शमवशरणादिक वाह्य विभूतियो से

और

अनत चतुष्टयादिक अतर्वैभव से सम्पन्न थे

तथा जिनके

तीर्थंकर नामकर्म की सर्वोत्कृष्ट महापुण्य प्रकृति का उदय था

ऐसे

निर्लिप्त अनासक्त योगी परम आर्हत

तीर्थंकर श्री महावीर जिनेश्वर के

पादपद्मो मे

हमारी कोटि कोटि वदनाए

परम-प्रनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

सिघई परमानंद बाबूलाल जैन

जनरल किराना मर्चेंट एव

पेटेंट दवाइयो के विक्रेता

मु. पो खुरई (जिला सागर) म. प्र

जिह्नोने
वीरता कीपरिभाषा को दूसरों पर विजय प्राप्त करके नहीं
प्रत्युत
अपने विपर्यय स्वरूप पर विजय प्राप्त करके वदल दिया
तथा
जिह्नोंने वीर भोग्या वसुधरा के परम्परागत सिद्धांत को
चुनौती देकर वीतरागता के पावन-पथ पर
अपने कदम वढाते हुए
और उसके स्थान पर
"वीर त्याज्या वसुधरा" के सिद्धात की प्राण प्रतिष्ठा की
ऐसे

वीर-महावीर अतिवीर प्रभु के

वीतरागी चरणो मे
मेरा वारम्वार नमस्कार अर्पित हो।
परम-प्रतीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—

जिह्नोने
इस अवसर्पिणीकाल के चौथे चरण की कर्मभूमि में
गर्भावतरण एव जन्मावतरण के
अलौकिक दृश्य दिखाये
तथा
वैराग्य प्रकरण एव तत्त्व बोध के प्रतापी पुरुषार्थ ने
उसे तपोभूमि मे परिणत कर दिया
ऐसे
जीवन रगभूमि के अप्रतिम अतिम अधिनायक

तीर्थेश्वर श्री वर्द्धमान प्रभु ने

सासारिक स्वागो से मुक्ति पाकर
जो
अपने सहज सिद्ध शाश्वत स्वरूप की उपलब्धि की
वे
हमारे भी नयन-पथ गामी वने
परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
ज्योतिषाचार्य त्रिलोकी नाथ जैन
२३४१ धर्मपुरा देहली
११०००६

जिन्होने
वाल्य-वय मे फणधर वेषी सगम देव के
और
उच्छृंखल मत्तगयदो के मद चूर-चूर किये
कुमार-वय मे
अनग अप्सराओ के रति-भावो को
विरतिभाव से परास्त किया
तारुण्य मे
परिशुद्ध आत्मा से कचन काया की किट्टिमा
तपाग्नि द्वारा प्रथक की
ऐसे
अनुभव वृद्ध जन्म जरा-मृत्यु से रहित
अक्षय अनत पद से विभूपित

श्री महावीर प्रभु को

कोटि कोटि नमन
परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —
सेठ विजय नारायण वीरेन्द्रनारायण
जगतटाकोज डिस्टी व्यूटर्स
चादनी चौक देहली
११०००६

जिन

महावीर प्रभु ने घाति कर्म शत्रुओ को नष्ट करके
अनत एवं अनुपम क्षयिक गुणो की प्राप्ति की
तथा जिन्होने
सम्पूर्ण भव्य जीवो को परमानद प्रराता
केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा
जो
आज भी भव्य जीवो के लिये मुकुट मणि के समान
शोभायमान हैं
ऐसे

त्रैलोक्य तारण समर्थ
वर्द्धमान जिनेश्वर

को
वन्दे तग्दुण लब्धये के स्वर मे
मैं
स्तुति वदना करता हू
परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—

मगनमाला जैन धर्मपत्नी पंकजराय जैन

सुनील कुमार नीनारानी जैन

१२८६ वकीलपुरा देहली

११०००६

हे धर्म तीर्थ प्रवर्त्तक महावीर प्रभो !

आप

उत्तम गुणों के सागर अठारह दोषो से वर्जित

मोक्षमार्ग प्रणेता

अष्ट कर्म रिपु सहारक पचेन्द्रिय विषय कषाय विजेता

पंच महाव्रत-पंच-समिति त्रय गुप्ति के

अधिष्ठाता

अत्यन्त महिमा से मडित

निष्कारण तारण तरण

एव

मोहान्ध कार के विध्वसक है

हे नाथ

आप की स्तुति जब गणधर इन्द्र भी नही कर सकते

तो

मैं किस खेत की मूली हूँ

अत:

नमस्कारो मे ही सारी स्तुतियें गूथ रहा हूँ ।

परम-पुनीत पच्चीस वे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता .—

सेठ पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले

१४७० रगमहल

एम० पी० मुकर्जी मार्ग देहली

११०००६

सत्य और अहिंसा ही 'विजय' का प्रतीक है

अतएव जिन्होने

असत् एव अनात्मा

पर विजय पाई

और

'वीर भोग्या वसुन्धुरा' की

परम्परा गत नीति को चुनौती देकर

वीर त्याज्या वसुन्धरा

का

विजय स्तम्भ त्रिभुवन के वक्ष के ऊपर रोया

उन्ही

१००८ श्री महावीर जी के श्री चरणों में

हमारा वारम्वार नमस्कार

परम-पुनीत पच्चीस वें निर्वाण शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता —

विनोदकुमार विजय कुमार जैन

१३१४ वैद्यवाडा दिल्ली ११०००६

भगवान महावीर-वर्द्धमान

मांगलिक-जन्मचक्र
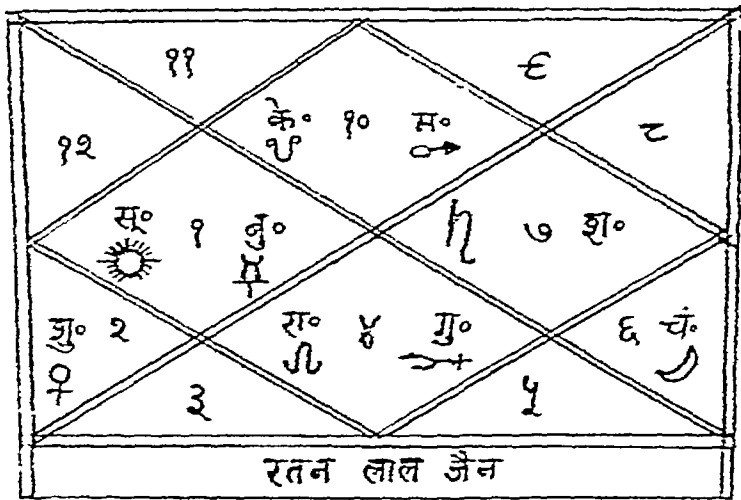
जन्म चैत्र सुदी १३ — सोमवार — ई० पूर्व ५९९

नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनि — सिद्धार्थ संवत्सर (५३)

राशि-कन्या

जन्म स्थान-वैशाली कुण्डलपुर (क्षत्रिय कुंड)

सिद्धार्थ-पिता — त्रिशला-माता

चेटक-नाना — सुभद्रा-नानी

सेनापति सिंह भद्रादि १० मामा

भगवान महावीर स्वामी के जन्म-लग्न का फलितार्थ

ले० ज्योतिषाचार्य श्री त्रिलोकीनाथ जी जैन, २३४१ धर्मपुरा, देहली

अहिंसा के अवतार भगवान महावीर स्वामी के जन्म के समय निर्मल नभ-मडल मे मकर लग्न उदय मे थी। मकर लग्न मे मगल और केतु ग्रह अवस्थित है।

द्वितीय स्थान मे कुभ राशि है। तृतीय स्थान मे मीन राशि है। चतुर्थ स्थान मे मेष राशि के अन्तर्गत सूर्य और बुध हैं। पचम स्थान मे शुक्र वृष राशि गत है। षष्टम् स्थान मे मिथुन राशि है। सप्तम् स्थान मे कर्क राशि मे राहु गुरु है, अष्टम स्थान मे सिंह है। नवम् स्थान मे चन्द्र कन्या राशि के अन्तर्गत है। दशम् स्थान मे शनि तुला राशि के अन्तर्गत अवस्थित है। एकादश स्थान मे वृश्चिक राशि है तथा द्वादश स्थान मे धन राशि विद्यमान है।

लग्न मे मगल मकर राशि मे उच्चता को प्राप्त है। यदि मगल अपनी उच्च राशि मे अथवा अपनी मूल त्रिकोण राशि मे या स्वराशि मे होकर केन्द्र मे स्थित हो तो 'रुचक' नाम का योग वनता है।

रुचक योग मे जन्म लेने वाले मनुष्य का शरीर अत्यन्त वलिष्ठ और वज्रमयी होता है। अपने सम्यक् विचारो तथा सत्कार्यों से वह विश्व मे प्रसिद्धि प्राप्त करता है। रुचक योग वाला जातक सम्राट् या सम्राट् के समकक्ष होता है। उसकी आज्ञा की कोई अवहेलना नही करता अर्थात् प्राणिमात्र उसकी आज्ञा मानने के लिये सदा सर्वदा तैयार रहते हैं। रुचक योग वाला महापुरुष अपने भक्त और श्रद्धालुजनो से चारो ओर से घिरा

रहता है। उसका चरित्र अत्यन्त उच्च कोटि का होता है। ऐसा जातक प्रलोभन या दवाव मे आकर अपने निश्चय को कदापि नही वदलता।

सूर्य और बुध के मेष राशि मे स्थित होने से लग्न मे वैठे हुए मगल मे और भी अधिक विशेपता होती है। मगल पर गुरु की सप्तम दृष्टि सोने मे सुहागा जैसा कार्य कर रही है। मगल ने जातक के शरीर को सर्वोत्कृष्ट कुल में जन्म लेने का अधिकार प्राप्त कराया है। उसने ही उसे उच्चासन पर विराजमान करके शासन के अनुकूल शारीरिक वल एव सर्वोपरि मान-प्रतिष्ठा प्रदान की। मगल के साथ केतु भी है। मगल केतु से अति शीघ्रगामी है अतएव मगल ने अपने और सूर्य-वुध के गुण केतु को प्रदान करके उसे अपना चमत्कार दिखाने के लिए लग्न (शरीर) मे छोड़ दिया।

केतु ग्रह कह रहा है—कि मुझ मे अकस्मात् परिवर्तन लाने का विशिष्ट गुण है तथा मुक्ति दिलाने का अधिकार प्राप्त है इसलिये मैं इस जातक के शरीर को अचानक ही परिवर्तन शील वनाऊँगा और ऐसी घटनाएँ घटित करूँगा जिन्हे कभी किसी ने स्वप्न मे भी न विचारा हो। समस्त ऐहिक सुखों से वचित करके एक अनोखे आदर्श पथ पर चलने के लिए जातक के शरीर को वाध्य करूँगा। पुनश्च केतु ग्रह कह रहा है कि मैं तुच्छ विषय सुखो की लालसा को लुप्त करके आकुलता रहित अविनाशी शाश्वत परम सुखों की ओर ले जाऊँगा, क्योकि मुझमे उच्च के सूर्य और उच्च के मगल के गुण विद्यमान हैं। उच्च के गुरु की मुझ पर और लग्न (शरोर) पर दृष्टि है। गुरु सन्मार्ग दर्शक है।

भगवान महावीर स्वामी के शरीर का सम्वन्ध सद्गुरु से हुआ और सन्मार्ग पर चलकर आवागमन के चक्कर को सदा-

सर्वदा के लिये समाप्त कर मोक्ष रूपी नवल वधू से नाता जोडा। गुरु की सत्कृपा से और ग्रहो के योगायोग से भगवान् महावीर को इस प्रकार की यश कीर्ति उपलब्ध हुई जो आज तक न भुलाई जा सकी है और न युग युगान्तरो तक भुलाई जा सकेगी।

मगल ग्रह मे महान हठवादिता का गुण होता है। वलात् शासन कराना चाहता है। मगल की दृष्टि जनता और उसके मन पर पूर्णरूपेण है। ऐसे मनुष्य को वलपूर्वक राज्य करते हुए जनता और उसके मन पर राज्य करना चाहिये था परन्तु ऐसा नही हुआ। भगवान् महावीर ने जनता और उसके मन पर प्रेम पूर्वक सद्भावनाओ की छाप अकित की, जिसमे वल का प्रयोग किंचित भी नही किया गया। यह कृपा भी गुरु की है। जिस भाव को राहु और व्ययेश (गुरु) देखते हो मनुष्य उस भाव से उदास और पृथक रहते है। यहाँ राहु और गुरु दोनो लग्न (शरीर) देख रहे है इसलिये भगवान् महावीर ने शारीरिक नश्वर सुखो को अति तुच्छ समझा और शरीर को तपस्या की भेंट कर दिया तथा झूठे आडम्वरो और झूठी मान प्रतिष्ठा को छोड कर सत्यता की खोज करने तथा आत्मा को निर्विकारी वनाकर सदा के लिये अमरत्व प्रदान करने हेतु शरीर को सही मार्ग पर चलने के लिए वाध्य कर दिया।

मकर लग्न चर लग्न है, पृथ्वो तत्त्व है अतएव भगवान् महावीर ने अपना निवास स्थान स्थिर रूप से एक जगह नही किया। भूमि पर ही शयन किया।

चतुर्थ स्थान मे सूर्य मेष राशि के अन्तर्गत उच्चता को प्राप्त है। सूर्य आत्मा है, सूर्य प्रखर ज्योति स्वरूप है, सूर्य पिता कारक है, सूर्य अश्व का स्वामी है। नभ-मडल मे सूर्य के समक्ष समस्त ग्रह विलीन हो जाते हैं। चतुर्थ स्थान से माता का, जनता का, स्वय के सुख का तथा भूमि का विचार किया जाता है। सूर्य

मातृ स्थान में स्थित होकर सकेत दे रहा है कि—

माता का सुख उच्च कोटि का होना चाहिये, भूमि संवधी सुख तथा घोडे हाथियों सवधी विशेष सुख होना चाहिये। पिता का सुख भी उच्चतम कोटि का होना चाहिये और उत्कृष्टता की उज्ज्वलतम सुन्दर सुखद भावनाएँ लिये हुये आत्मा को जन साधारण से सम्पर्क करना चाहिये तथा उसे सूर्य जैसा प्रताप प्रदर्शित करना चाहिये।

सूर्य के साथ वुध का योग है। वुध नवम् स्थान का स्वामी है और छटवें स्थान का भी स्वामी है। सूर्य अष्टम् स्थान का स्वामी है। अष्टमेश और नवमेश का योग यदि किसी जातक की जन्मकुडली मे होता है तो राज्य भग का योग होता है तथा उच्च के ग्रह को यदि दो क्रूर ग्रह देखते हो तो भी राज्य भग का योग होता है।

सुख स्थान मे, मातृ स्थान मे तथा भूमि स्थान मे सव प्रकार के सुखो से वचित कराने का विचार सूर्य ने किया। आत्मा को वुध ने याज्ञिक कर्म (आत्म-साधन) मे प्रवृत करने का अपना विचार वनाया, चूकि वुध चन्द्र लग्नाधिपति है, इस कारण मन में आत्म-साधन करने का अपना विचार निश्चय पूर्वक दृढ किया।

वुध वुद्धि ज्ञाता है, वाणी का कर्त्ता है। वाणी एव वुद्धि वल द्वारा जन साधारण से सम्पर्क स्थापित्त कर उसके मन मे भी याज्ञिक कर्म कराने की भावनायें वुध ने जागृत कर दी। सूर्य और वुध मेष राशि (अग्नि राशि) मे है। चतुर्थ स्थान (अग्नि राशि) मे सूर्य कह रहा है—कि मैं सव सुखो को तप की तेज अग्नि में जला कर भस्म कर दूंगा और आत्मन् को इतना प्रतापवन्त कर दूंगा कि वह सौटची कुदन वन जावेगा।

वुध कह रहा है—कि मैं जातक को भाग्य पर भरोसा न

रखने वाला कर्मशूर वना दूँगा क्योकि मुझ पर और सूर्य पर शनि-मगल की पूर्ण दृष्टि है और मगल एव केतु का केन्द्रिय शासन है। यदि इनकी दृष्टि न होती तो मैं सासारिक सुखो का आनन्द ही आनन्द दिलाता। इस परिस्थिति मे मैं तो चाहता हूँ कि भगवान् महावीर स्वामी की आत्मा परम—धाम (मोक्ष) मे पहुँच कर आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाये। उच्च के सूर्य ने चतुर्थ स्थान मे स्थित होकर सहस्त्रों सूर्य जैसा प्रकाश चारो दिशाओ मे फैलाकर आज तक भगवान् महावीर स्वामी के नाम को लोक भर मे चिरतन व्याप्त किया।

भगवान महावीर स्वामी के समय मे हिसा का अधिकाधिक वोलवाला था। यज्ञ मे जीवित अश्वादिको की आहुति दी जाती थी। तत्कालीन हिंसात्मक असत् धर्म की प्रवृत्ति का अवलोकन जीवित प्राणियो को हवन-कुड की प्रज्ज्वलित अग्नि मे भस्म होते देख कर भगवान् महावीर स्वामी की दयार्द्र आत्मा हा हा-कार कर उठी और अत्यन्त द्रवीभूत होकर अपने समस्त ऐहिक सुखो का परित्याग कर प्राणिमात्र को आकुलता रहित सच्चा सुख प्राप्त करने का उन्होने दृढ सकल्प किया। यह सत्कार्य भी उच्च के सूर्य ने ही किया।

पचम स्थान मे शुक्र स्वराशि के अन्तर्गत है। शुक्र पर किसी शुभ ग्रह की या किसी अनिष्टकारी पापिष्ठ ग्रह की दृष्टि नही है। पचम स्थान से विद्या यन्त्र-मन्त्र, सन्तान, सिद्धि आदि के प्रवन्ध का विचार किया जाता है। शुक्र स्वय ही आचार्य है। मकर लग्न मे शुक्र को कारकता प्राप्त होती है। अर्थात् एक प्रकार से विशेपाधिकार प्राप्त होते हैं। यदि हम ध्यान से देखेंगे तो शुक्र पचम स्थान मे समस्त ग्रहो के गुणो को लिये हुये और समस्त ग्रहो का वल धारण किये हुये स्वराशि मे स्थित होकर महावली और हर्षोत्फुल्ल दिखाई देता है। मेष राशि में सूर्य और

बुध विद्यमान होने से दोनों ने अपने-अपने गुण और अपना-अपना वल मगल को प्रदान कर दिया। मगल मकर राशि स्थित केतु के साथ है। मगल और केतु ने सूर्य-वुध के तथा स्वय अपने-अपने गुण और वल शनि को प्रदान किये। अव शनि सूर्य, वुध, मगल, केतु के गुणो को धारण करके तुला राशि मे विराजमान है। शनि ने अपना एव सूर्य, वुध, मंगल, केतु के गुण शुक्र को प्रदान कर दिये। इस भाँति शुक्र मे सूर्य बुध, मगल केतु और शनि के वल और गुण समाविष्ट हो गये। राहु और गुरु कर्क राशि गत होने से चन्द्रमा को गुरु और राहु ने अपने-अपने गुण और वल दे दिये। चन्द्रमा कन्या राशि गत है। चन्द्रमा ने अपने तथा गुरु-राहु के गुण वुध को दे दिये इस-लिये शुक्र मे सूर्य, वुध, मगल, केतु, शनि, राहु, गुरु और चन्द्र के गुण और वलो का समावेश हो गया। पचम स्थान (क्रीडा स्थान) मे शुक्र कह रहा है कि मुझ मे अष्ट ग्रहो का वल है और उन अष्ट ग्रहो मे भी तीन उच्च के ग्रहो की भावनाये हैं। मकर लग्न होने से मैं केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी होता हुआ विशेषाधिकार को प्राप्त हूँ। मैं इस जातक को यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र तथा उच्चकोटि की ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त कराने मे समर्थ हूँ। जातक को ऐसी अलौकिक विद्या से विभूषित करूँगा जो जन-जन को सदैव आकर्षित करती रहे और इनके गुणो की पूजा अर्चा भी होती रहे।

भगवान् महावीर स्वामी को यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र सम्वन्धी उच्च-कोटि की विद्याये, विशिष्ट बुद्धिमत्ता, महाज्ञानी, सर्वज्ञ होने का जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त हुआ। अपने जीवन काल मे ऐसे ऐसे चमत्कार दिखाये कि जिससे प्राणिमात्र को उनके समक्ष सदा नतमस्तक होना पडा।

सप्तम स्थान मे गुरु कर्क राशि के अन्तर्गत है और राहु भी

कर्क राशि मे विद्यमान है। कर्क राशि मे गुरु उच्चता को प्राप्त है। यदि गुरु उच्च राशि का या स्व राशि का अथवा मूल त्रिकोण राशि का केन्द्र मे हो तो 'हस' नाम का योग वनता है।

हस योग वाला जातक अत्यन्त सुन्दर होता है, रक्तिम आभा-युक्त मुखाकृति, ऊँची नासिका, प्रफुल्लित कमलोपम सुन्दर चरण युगल, गौराङ्ग, हँसमुख, उन्नत ललाट, विशाल वक्षस्थल वाला होता है। ऐसा महापुरुप मधुर भाषी होता है। उसके मित्रो तथा प्रशसको की सख्या निरन्तर वढती ही रहती है। सभी के साथ भेद रहित श्रेष्ठ व्यवहार करने का इच्छुक रहता है और उसमे चुम्वकीय व्यक्तित्व होता है।

गुरु विद्या, सन्तान, धन, एव भाग्य का विधायक एव प्रशस्त पथ प्रदर्शक होता है। गुरु के विना ज्ञान प्राप्त नही होता—

"गुरु गोविन्द दोऊ ठाडे किनके लागे पाँय।
वलिहारी गुरु की जिन गोविंद दिये वताय ॥"

मकर लग्न वाले व्यक्तियों को गुरु विशिष्ट फल देने के लिये तत्पर नही रहता क्योकि वारहवें और तीसरे स्थान का स्वामी गुरु होता है। गुरु की दृष्टि लग्न पर ग्यारहवे और तीसरे पर है।

जातक के शरीर को उच्चासन पर आरूढ कराने का विचार सन्मार्ग पर चलाने का सकेत, मुक्ति-रमा को प्राप्त कराने की धारणा तथा उच्च विद्याओ से अलकृत करने का सकल्प गुरु मे विद्यमान है। गुरु पर अपने मित्र उच्च के मगल की दृष्टि है जिससे परस्पर एक दूसरे से सन्मुख दृष्टि सम्वन्ध वना रक्खा है। गुरु के साथ राहु भी सप्तम मे है। राहु यदि कर्क राशि मे केन्द्र स्थान मे स्थित हो तो कारकता को प्राप्त होता है। राहु की दृष्टि भी गुरु की ही भाँति है।

भगवान महावीर स्वामी का शरीर वज्र के समान मजवूत

और अत्यन्त पुष्ट था और ऐसे जातक अन्त समय तक अपने शारीरिक वल से हीन नही होते और उनके यश कीर्ति की पताका विश्व मे सदा-सर्वदा फहराती ही रहती है। राहु और गुरु कह रहे हैं कि हम सप्तम स्थान मे स्थित हैं। पृथक्कोत्पादक कारण वनाना हमारा स्वभाव हो गया है अतएव हम स्त्री-सुख से जातक को पृथक रखेगे और हम पर शनि की १० वी दृष्टि है अत वन खण्डो की पद यात्रायें करायेंगे। निर्जन वीहड स्थानो मे वास करायेगे। सूर्य और बुध का हम पर केन्द्रीय शासन है अत वन खण्डो और निर्जन स्थानो मे वास करते हुये भी आत्म-ज्ञान और आत्म-दर्शन कराने की हमारी प्रतिज्ञाये हैं। राहु, गुरु की चन्द्र, कर्क राशि मे होने से कह रहे हैं कि चन्द्र मन का स्वामी है अत हम अपनी इच्छाओ की पूर्ति हेतु परिवर्तन लाकर मन को एकाग्र करके आत्म-दर्शन कराते हुये जनता के मन पर भी ऐसी अमिट छाप अकित करेंगे जिससे प्राणिमात्र युगो-युगो तक याद करता रहे और जातक (भगवान महावीर) के चरण कमलो मे नत मस्तक होता रहे।

नवमे स्थान मे चन्द्र कन्या राशि के अन्तर्गत है। नौवाँ स्थान धर्म तथा भाग्य स्थान है। पचम से पचम होने से विद्या से परमोत्कृष्ट विद्या की ओर बढने का और अपनी सम्पूर्ण कलाओं से भाग्य स्थान मे स्थित होकर भाग्योन्नति कराने का सकेत दे रहा है। नौवे स्थान से भी नौवाँ स्थान पचम स्थान होता है। वह सकल्प तो प्रथम ही शुक्र जातक को परम सौभाग्यशाली-महाजानी एव उच्च कोटि का धर्म धुरन्धर बनाने के लिये दृढ निश्चय कर चुका है।

चन्द्र मन का स्वामी है—चतुर्थ स्थान का कर्त्ता है। ऐसे चन्द्र को राहु और गुरु ने अपनी भावनायें सर्मापत करके मन मे त्याग और पृथकता, एकान्तवास, धर्म के मर्म की सच्ची

खोज करने के लिये दृढ निश्चयी बना दिया। चन्द्र मे अमृत है। चन्द्र ने कन्या राशि मे बैठ कर बुध को समस्त गुण प्रदान कर दिये और बुध ने सूर्य से योग बनाया अत उस अमृत का स्वाद आत्मा को आया और उस अमृत को पान करने के उपरान्त सभी सासारिक सुख और चमचमाती समस्त सम्पदायें हेय प्रतीत हुईं और मन मे एकाग्रता आने के पश्चात् सर्व ऋद्धि-सिद्धियो पर एकाधिकार हो गया। तथा ससार के समस्त सुखो का वियोग कराके मुक्ति रमा से नाता जुडवा दिया।

ध्यान रहे कि केतु की नवम् दृष्टि चन्द्र पर है। केतु की इच्छा के विपरीत मुक्ति-मार्ग मिलना असभव ही है। दशमे स्थान मे शनि अपनी उच्च राशि तुला मे स्थित है। शनि अपनी स्व राशि मे या मूल त्रिकोण राशि मे या उच्च राशि का होकर केन्द्र मे हो तो 'शशक' नाम का योग बनता है।

'शशक' योग मे जन्म लेने वाले जातक साधारण कुल मे जन्म लेकर भी राज्य सिंहासन के अधिकारी होते हैं। उनकी सेवा के लिये प्रतिहारी नियुक्त रहते हैं। वह सरल स्वभाव और सौम्य मुद्रा धारी होता है तथा वह दिग्दिगन्त मे भारी प्रशसा का पात्र होता है।

शनि का प्रभाव नभ-मण्डल मे सर्वोपरि है। दशम् स्थान से पिता का और निज कर्मों का विचार किया जाता है। दशवें स्थान की उच्च राशि मे स्थित शनि पिता की यश कीर्ति की महानता और प्रसिद्धि की सूचना दे रहा है। शनि कह रहा है—कि मैं दशवें स्थान मे उच्च राशि के अन्तर्गत होकर उच्च कोटि के कर्म कराने की क्षमता एव अधिकार सुरक्षित रखता हूँ अतएव उच्च कर्म कराके ऐसे पद पर पदारूढ कराऊँगा जहाँ पर पहुँचने का स्वप्न मे भी विचार नही आया हो। शनि कह रहा है—कि मुझ मे शुक्र को छोड कर समस्त ग्रहो की भावनायें विद्यमान हैं

और उसमे भी दो उच्च ग्रहों की भावनाये मुख्य हैं। इसलिये मैं इस जातक को उच्च कर्म कराता हुआ आखिरी मंजिल की अन्तिम सीढी पर ले जाऊँगा। मुझमे मगल और केतु के गुण होने से परम सुख और मोक्ष मे ले जाने योग्य पुरुषार्थ कराने का अधिकार प्राप्त है। सूर्य आत्मा है। मैं शरीर का स्वामी हूँ और दूसरे स्थान (धन) का लक्ष्मीपति हूँ। सूर्य आत्मेश है इस कारण से कायक्लेश पूर्वक भी आत्मा को परमात्मा वनाने का—निर्वाण पद पर पहुँचाने का तथा अपने (जातक के) कुटुम्व को त्याग कराने का सम्पूर्ण अधिकार मुझे प्राप्त हैं। मैं दु ख का कारण हूँ। मेरा नाम सुनकर वड़े-वडे योद्धाओ एव शूरमाओं के पराक्रम नष्ट हो जाते हैं। परन्तु जिस जातक पर मेरी कृपा हो जाती है उसकी कीर्ति भी अजर-अमर हो जाती है।

शनि कह रहा है कि मुझ पर उच्च के गुरु का और कर्क के राहु का केन्द्र मे शासन है। अत जातक के शरीर को धर्म के पथ पर चलने और वन-खण्ड—दुर्गम वीहड स्थानो—निर्जन वनो मे वास कराने की मेरी प्रतिज्ञा है। साथ ही वीतरागता पूर्वक मुक्ति धाम दिलाने की शक्ति मुझ मे विद्यमान है परन्तु मुझे अपने मित्र शुक्र से परामर्श करना है क्योकि मेरी मकर और कुम्भ लग्नो में शुक्र को कारकता का विशिष्ट अधिकार प्राप्त होता है और शुक्र की तुला और वृप लग्नो मे मुझे कारकता का अधिकार है। मैं स्वयं तुला राशि के अन्तर्गत हूँ। उच्च पद प्राप्त हूँ अत. अपने समस्त गुण और वल शुक्र को दे रहा हूँ क्योकि मैं वृद्ध हूँ—मेरी गति मंद है परन्त अपने मित्र शुक्र को आज्ञा देता हूँ (लग्नेश होने से) कि तुम मे भोग सम्वन्धी सुख प्राप्त कराने के गुण वहुत होते हैं इसलिये भौतिक गुणो का त्याग कराके तप-त्याग पूर्वक ऐसी ऋद्धिसिद्धियाँ प्राप्त करना जिससे तीनो लोको मे भगवान महावीर स्वामी का नाम अजर-अमर

और प्रख्यात रहे तथा हमेशा उनकी पूजा-अर्चा-उपासना होती रहे।

आज २५०० सौ वर्षोपरान्त भी भगवान महावीर स्वामी के बतलाये हुए सन्मार्ग पर चल कर उनके अगणित असख्य अनुयायी भक्त जन और श्रद्धालु जन उनका वारम्वार स्मरण करके उनके श्री चरणो मे अपनी विनयाञ्जलियाँ सादर सस्नेह समर्पित करते हुए कभी नही अघाते।

जन्म लग्न फलितार्थ

महावीर श्री के चरणो मे सादर समर्पित

विश्व का आधार

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी जी

एक ही व्यापक अहिंसा विश्व का आधार हो।
मित्रता के सूत्र मे आवद्ध सव ससार हो।।
शान्ति-सुख की चाह जग मे, कौन कव करता नही ?।
(पर) कल्पना के कौर भरने से उदर भरता नही।।
साध्य मिलता है तभी जव साधना साकार हो।। एक०।।
वैर वढता वैर से प्रतिशोध फिर होती घृणा।
होड जो शस्त्रास्त्र की है युद्ध को आमन्त्रणा।।
प्रेम का पथ जो निरापद क्यो नही स्वीकार हो।। एक०।।
श्याम शिर से शेर डरता श्याम शिर फिर शेर से।
भय से भय शका से शका, बैर वढता बैर से।।
नर मिले सव को अभय का एक आविष्कार हो।। एक०।।
हो विचारो का अनाग्रह स्वाद यह 'स्याद्वाद' का।
और आचरणो मे 'तुलसी' अन्त हो उन्माद का।।
भगवती देवी अहिंसा का अमर आभार हो।। एक०।।

महावीराष्टक स्तोत्रम्

श्रीमान् पं० वंशीधर जी व्याकरणार्य

(१)

य कल्याणकरो मतास्त्रिजगतो लोकश्च यं सेवते ।
येनाकारि मनोभवो गतमदो यस्मै भव क्रुध्यति ॥
यस्मान्मोहमहाभटोऽपि विगतो यस्य प्रिया मुक्तिमा ।
यस्मिन्स्नेहगत स नो भवति क कान्ताकटाऽऽक्षाऽक्षत. ॥

(२)

यस्याधृष्यमत मत जनहित सद्धर्मषाणोपलम् ।
नम्रीभूत-सुरेन्द्रवृन्द-मुकुटे पादच्छलात्सगतम् ॥
भव्यैरप्यनुगीय-मान-यशसा व्याक्रान्तलोकत्रयम् ।
यस्माद्योऽस्ति नयार्पणादधदनेकान्ताऽकटाऽऽक्षाऽक्षत ॥

(३)

यस्य प्रेङ्खदखर्व-कान्तिमणिभि प्रोद्योतितामातता—
मास्थानावनिभागतैर्दिविरतै प्रक्रान्त—त्र्यत्रिकाम् ॥
तामालोक्य भवांगभोगनिरता मिथ्यादृशोऽप्यादृता ।
सम्यक्त्व विभव भवन्ति कुनयैकान्ताऽऽकटाक्षाऽक्षता ॥

(४)

ये प्राक् त्रासमुपागता मतिहृता वाण्या. कृपाण्या परेऽ—
नीनिज्ञानलवोद्धता गतपथास्तत्वार्थके सगरे ॥
निक्षिप्ता सुनयप्रमाणभुवि ते चेतश्चमत्कारिणो ।
येन ज्ञानसमाहिता. खलु कृता: कान्ताकटाक्षाऽक्षता ॥

(५)

यस्य प्रार्चन भक्तिचाञ्चितमना भेकोऽपि तत्कोपिना
दैवेन प्रहतोऽप्यभूदमरभू कान्ता कटाक्षाऽऽक्षता: ।।
तत् किं यस्य पदार्चने कृतधिय सामोदभावेन हि।
जायन्ते भवयोषिता शिवरमा कान्ता. कटाक्षाऽक्षता ।।

(६)

यस्याद्य भ्रमरावलीव कमले भव्यावलीमन्दिरे।
सम्फुल्लत्कमलावली परिकनद्दीपावली विन्दति ।।
चेतस्याप्त-मुदावलीति तु वर चित्र विचित्र न्विद—
मेका कामवशाऽपरा भवति नो कान्ताकटाक्षाऽऽक्षता ।।

(७)

वीर· सोऽस्तु मम प्रसन्न-मतये त सगतोऽह ततः।
सूक्त तेन हित मत जगदतो वीराय तस्मै नम।।
अन्यो नास्ति तत प्रियङ्कर इतस्तस्य स्मृतिर्मे हृदि।
वीरे तत्र रतो भवान्ययमह कान्ता कटाक्षाऽऽक्षत ।।

(८)

व-शौन्नत्य करोऽप्यसौ नरपते सिद्धार्थ कस्यात्मभू ।
शी-लेनाधिकृता हितोऽपि तपसास्त्रेण प्रकृत् कर्मणाम् ।।
ध-न्यानामति विस्मय विदधती पूर्वं तु पश्चात् प्रभो !
र-स्येय कृतिरातनोतु कमनक् कान्ताऽकटाक्षाऽऽक्षत ।।

—★—

दीप-अर्चना

(कविवर द्यानत जी)

करौ आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की।

(१)

राग विना सब जग-जन तारे, द्वेष बिना सब करम विदारे।
करौ आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(२)

शील-धुरधर शिव-तिय-भोगी, मन-वच-काय न कहिये योगी।
करौं आरती वर्द्धमान की पावापुर निरवान-थान की॥

(३)

रत्नत्रय-निधि परिगह-हारी, ज्ञान-सुधा-भोजन-व्रतधारी।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(४)

लोक अलोक व्याप निज माही, सुखमय इद्रिय-सुख-दुख नाही।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(५)

पच कल्याणक-पूज्य विरागी, विमल दिगम्बर अवर त्यागी।
करौ आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की॥

(६)

गुन-मनि-भूषन-भूषितस्वामी, जगत उदास जगत्रय स्वामी।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(७)

कहै कहाँ लौ तुम सब जानौ, 'द्यानत' की अभिलाप प्रमानौ।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

—★—

महावीर-वन्दना

पंडित प्रवर अशाधरसूरि

सन्मति-जिनप सरसिज-वदन,
सजनिताखिल - कर्मक - मथन ।
पद्‌म सरोवर मध्य—गजेन्द्र,
पावापुरि महावीर जिनेन्द्र ॥१॥
वीर भवोदधि—पारोत्तार,
मुक्ति श्री वधु-नगर-विहार ।
द्विर्द्वादशक — तीर्थ पवित्र,
जन्माभिषकृत — निर्मलगात्र ॥२॥
वर्धमान नामारव्य-विशाल,
मान मान-लक्षण दश ताल ।
शत्रु विमथ न विकट भट-वीर,
इष्टैश्वर्य घुरी कृत दूर ॥३॥
कुण्डलपुरि सिद्धार्थ भूपाल—
तत्पत्नी प्रियकारिणि वाल ।
तत्कुल नलिन विकाशित हंस,
घात पुरो घातिक विध्वस ॥४॥
ज्ञान-दिवाकर लोकालोकम्—
निर्जित कर्मा-राति विशोक ।
वालत्वे सयम सु - ग्रहीत,
मोह महानल मथन विनीत ॥५॥

मानवता के उद्धारक: भगवान महावीर

आओ आओ सुनो कहानी मानवता उत्थान की।
सत्य-अहिंसा के अवतारी, महावीर भगवान की।

परिस्थिति

मानव-मानव मध्य वढ रही भेद भाव की खाई थी।
पशुओ मे थी त्राहि त्राहि, हिंसा से भू थर्राई थी ॥
धर्म नाम पर द्वेप दम्भ, आडम्वर की वन आई थी।
स्वार्थ, असत्य, अनैतिकता से, मानवता मुरझाई थी ॥ आओ०

अवतरण

प्रान्त विहार पुरी वैशाली, राजा थे सिद्धार्थ सुजान।
चैत सुदी तेरस को माता त्रिशला से उपजे गुणखान ॥
श्री वृद्धि . सर्वत्र हुई थी, जनता ने सुख पाये थे।
इससे जग मे त्रिशला-नदन वर्द्धमान कहलाये थे ॥आओ०
मदोन्मत्त हाथी के मद को, चूर 'वीर' पद प्राप्त किया।
दर्शन से शकाये मिट गई, मुनि जन 'सन्मति' नाम दिया ॥
तरु लिपटे विषधर को वश कर, महावीर कहलाये थे।
सर्व हितैपी शान्तवीर के, सव ने ही गुण गाये थे ॥ आओ०

वैराग्य और ज्ञान प्राप्ति

भोग-रोग, सम्पद् विपत्ति है, जव यह भाव समाया था।
कामजयी ने तीस वर्ष मे दीक्षा को अपनाया था ॥
सर्व परिग्रह त्याग, वर्ष वारह, वन वीच विताये थे।
मोहादिक कर नष्ट, सर्व ज्ञाता अरिहंत कहाये थे ॥ आओ०

महावीरश्री का उपदेश

मानव बने महामानव, अब तीर्थंकर पद पाया था ।
मानवता उद्धार हेतु, तब यह सन्देश सुनाया था ॥

अहिंसा

"स्वय जियो जीने दो सब को" इससे बढकर धर्म नही ।
स्वार्थ हेतु पर को दुख देने से बढकर दुष्कर्म नही ॥ आओ०
मद्य-मास अण्डा न कभी मानव भोजन हो सकता है ।
शुद्ध निरामिष भोजन से बढती सच्ची सात्विकता है ॥
पर दुख-सुख को अपना समझो, प्राणि-साम्य मन मे लाओ
इन्द्रिय-विषय-वासना तज, सयम-मय जीवन अपनाओ ॥ आओ०
यज्ञ-हवन-बलि-पूजन हित भी, प्राणि सताना हिंसा है ।
झूठ बोल विश्वासघात कर, काम बनाना हिंसा है ॥
चोरी ठगी शक्ति से धन हर, हृदय दुखाना हिंसा है ।
कामुकता, अश्लील आचरण कलुष भावना हिंसा है ॥ आओ०

अपरिग्रह

सग्रह वृत्ति पाप है, इससे जनता वस्तु न पाती हैं ।
कमी, छिपाव, अभाव, मिलावट, आराजकता छाती है ॥
स्वय वस्तुएँ परिमित रखकर औरो को भी जाने दो ।
आवश्यक सामग्री पाकर, सबको काम चलाने दो ॥ आओ०

अनेकान्त

सभी वस्तुओ मे अनेक गुण, जग मे पाये जाते हैं ।
भिन्न दृष्टि कोणो से जन, उनको कहकर बतलाते है ॥
अत. पराये दृष्टि कोण पर, बन समुदार विचार करो ।
पक्षपात तज, अनेकान्त मय पूर्ण सत्य स्वीकार करो ॥

स्व-पुरषार्थ

अपने जीवन का हर प्राणी, आप स्वय निर्माता है।
जैसा करता, वैसा भरता, कोई न सुख-दुख दाता है ।।
आत्म शक्ति से, वन्ध मुक्ति का श्रद्धामय पौरुष लाओ ।
भौतिकता की चकाचौंध मे आतम को मत विसराओ ।। आओ०

परमात्मा-पद प्राप्ति

सभी आत्माएँ समान है, शक्ति रूप से भेद नही ।
नर-नारक-पशु-देव, कर्मकृत योनि आत्म के भेद नही ।।
तप से कर्म दूर कर, जो नर निर्विकार हो जाता है ।
शुद्ध सिद्ध भगवान् जिनेन्द्र, प्रभु परमात्म कहलाता है ।।

महा परि निर्वाण

तीस वर्ष उपदेश सुना, अगणित जीवो को ज्ञान दिया ।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या, तन त्याग प्राप्त निर्वाण किया ।।
ढाई हजार वर्ष से जन-मन वीर-चरण आराधक है ।
महावीर सिद्धान्त पूर्णत विश्व-शान्ति के साधक है ।। आओ०
रायचन्द जी ने वापू को वीर सँदेश सुनाया था ।
सत्य-अहिंसा से वापू ने हिन्द स्वतन्त्र कराया था ।।
उन्ही वीर के आगे 'कौशल' मव मिल शीश झुकाये हम ।
आत्म शक्ति को पहिचानें, सच्चे मानव वन जायें हम ।। आओ०

जिनकी

परमशांत सौम्यमुद्रा

भव्य जीवों के स्वानुभव में

अनुकूल निमित्त वनती है

तथा

जिनकी दिव्यध्वनि खिरती तो है

उनके वचन योग से

परन्तु

सौभाग्य जगाती है भव्य जीवो का

ऐसे

१००८ श्री वीर प्रभु के चरणो में

शत शत अभिनन्दन

परम पुनीत पच्चीसवे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

नानकचन्द्र जैन एवं राकेशकुमार जैन

प्रोमपट ट्रॉसपोर्ट्स

१२७२ वकीलपुरा देहली-११०००६

जिन्होने

जन्म-मरण के दु:खो से छुटकारा पाकर

स्वय भवसागर को पार किया

तथा

जो समस्त संसारी जीवों को पार कराने के लिए

सुदृढ नौका के समान

पवित्र माध्यम बने हुए हैं

ऐसे

महावीर स्वामी के चरणों मे हमारा कोटि २ नमन

परम पुनीत पच्चीसवे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

(१) **मदनलाल जैन**

४७१९ डिप्टीगज

देहली-११०००६

(२) महावीर बैंगल स्टोर

४७३३, डिप्टीगज

देहली-११०००६

जिन्होने
परम शुक्ल ध्यान की प्रचड अग्नि से
कर्म काष्ठ को जलाकर भस्म कर दिया है

तथा

जिनके केवलज्ञान रूपी किरणों से समस्त लोकालोक
आलोकित हो रहा है
वे सर्वज्ञ भगवान महावीर
हमारे हृदय मे ज्ञान की विमल ज्योति प्रकट करे
परम-पुनीत पच्चीसवे शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

(१) **महावीर प्रसाद जैन**
मेनेजिंग डाइरेक्टर
एलाइड इलैक्ट्रिक एण्ड हार्डवेयर इन्ड्रस्ट्रीज (प्रा०) लि०
मोतीया खान, नई देहली-११००५५
फोन ५११७७२/५१७८३२

(२) राजस्थान इन्ड्रस्ट्रियल एण्ड सर्विस ब्यूरो,
इन्ड्रस्ट्रियल इस्टेट—जयपुर साउथ-३०२००१
फोन० ६४५८

जिनका जीवन

सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र का

शरच्चन्द्र है

जिनकी मुक्ति

जगत के जीवो को सहस्त्ररश्मि बनकर

पथ प्रशस्त किया करती है

जिनकी

परम शान्त मुद्रा से वीतरागता झलकती है

उन सन्मति के

श्री चरणो मे कोटि कोटि है

नमन हमारा

परम पुनीत पच्चीसवे शतक पर भाव भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

प्रकाशचन्द समैया बजाज

मु० पो० कवरई (जिला हम्मीरपुर) उ० प्र०

त्रिशलानन्दन

के

चरणो में शत-शत वन्दन,

काट दिये है स्वयं जिन्होने,

कर्म-जाल के दृढतम वन्धन,

जिनका जीवन।

गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-मुक्ति का सुरभित चन्दन,

उनके ही इस रजत-शतक पर,

पचम गति की प्राप्ति हेतु है,

मोक्ष लक्ष्मी का अभिनन्दन।

आओ घृत के दीप जलाएँ,

धरती पर अमृत बरसाएँ,

मिट जाये भव-भव का क्रन्दन,

महावीर हे त्रिशलानन्दन।

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

परमानंद लखमीचंद जैन सराफ

गौरमूर्ति—सागर (म० प्र०)

ज्योतिर्मय महावीर (पद्य काव्य

श्री रमेश सोनी मधुकर खुरई, (सागर) म० प्र०

(१)

पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का।
मानवता के हृदय-गगन मे, सूरज चमका ज्ञान का॥
पुण्य-दिवस के प्रथम प्रहर मे, मेरा प्रथम प्रणाम लो।
दर्शन की प्यासी अँखियों का, बढ कर ऑचल थाम लो॥

(२)

पद-रज धोने मचल पडी है, पलको की ये निर्झरणी।
अक्षत पूजन करने निकली, श्वासो की पावन तरणी॥
हर तिनका वशी सा गूंजा, फल था दया-निधान का।
पुण्य दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(३)

कुसुम-कुंज में नव निकुज मे, चित्रित है तेरी भाषा।
मौन लिपी से समझाई थी, दया धर्म की परिभापा॥

अमृत-वचनो के अर्थों ने, दैन्य-दाह-तम दूर किया।
वेदो की हर मौन ऋचा को, वशीकरण सा मंत्र दिया॥
काल-भाल पर चमके ऐसे, तारा शुक्र वितान का॥
पुण्य दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(४)

पाप और पाखण्ड की ज्वाला, नाच रही थी हर घर मे।
घृणा द्वेष की दुमुँही नागिन, जहर उगलती थी नर मे॥
बीत गये दिन पक्ष मास के, वर्ष अनेको बीत चले।
लालच-लिप्सा वनी कामिनी, दया धर्म घट रीत चले॥
एक तिलस्मी चमत्कार का, नाटक हुआ विधान का।
पुण्य दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(५)

तव ही त्रिशला की आँखों मे, सोलह सपन श्रृगार हुआ।
चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, महावीर अवतार हुआ॥
किन्नरियाँ गन्धर्व देव गण, हर्षित थे मन ही मन में।
राजा श्री सिद्धार्थ जनकवर, डूव गये सम्मोहन में॥
मात-पिता की गोद भर गई, सुख पाया सन्तान का।
पुण्य-दिवस हम मन्ना रहे है, महावीर भगवान का॥

(६)

रति अनग मोहित हो बैठे, चितवन पर किलकारी पर ।
इन्द्राणी का तन-मन डोला, रुनझुन-रुनझुन तालों पर ॥
रीझ गई केशर की क्यारी, खिली मजरी तानो पर ।
सपने सब साकार हो गये, पुष्पक तीर कमानो पर ॥
धर्म-ध्वजा ऐसी लहराई, बादल उड़े वितान का ।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का ॥

(७)

आल्हादित हो उठा हर्ष था, वशी के मधु स्वर गूजे ।
मादक मनुहारो की धुन पर, गले मिले सब इक दूजे ॥
पीके फूटे हरे प्यार के, मौसम ने रस बरसाया ।
धरती के पाँवो मे घुघरू, पवन बाँध कर मुसकाया ॥
खुशियाँ ऐसी डोल रही थी, ज्यों बेडा जलयान का ।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का ॥

(८)

कल्पवृक्ष ने फूल बिखेरे, स्वागत किया बहारो से ।
नभ में फाग सितारे खेले, उनके पलक इशारो से ॥
किसी होठ पर बजी बसरी, किसी हाथ से बीन बजी ।
चंदन चर्चित कमल ज्योति से, हर दुल्हिन की माग सजी ॥

महका गुंजन, झूमा नंदन, रस बरसा मधुपान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(६)

कंगना खनके बिंदिया दमके, सुध-बुध भूली तरुणाई।
मगन हुआ आनन्द द्वार पर, भटक रही थी अरुणाई॥
सजी दूधिया राहे जगमग, चमका ज्यो नभ का दर्पन।
बिखरी बूंदे काँच सरीखी, चकराया था अपनापन॥
बजी नौवते शुभ शहनाई, मौसम आया दान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(१०)

श्रद्धा के पावन पनघट पर, यश की राधा मुस्काई।
हिरनी सी भोली पलको पर, स्वयं कल्पना भरमाई॥
मगल शब्द गीत शहनाई, गूज उठा स्वर नारो का।
जैसे बचपन लौट पडा हो, खुशियो का त्योहारो का॥
मंत्र मुग्ध हो गई दिशाये, जादू था मुस्कान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(११)

ऋतुओ ने अभिषेक किया, सावन ने झूले डाल दिये।
चंदा पलने मे आ वैठा, रवि ने झूमर वाँध दिये॥

मलय-पवन दासी वन आई, मणि मडित सिरहाने को।
मगल-कलश रखा सखियों ने, लोरी गाई नुलाने को॥
फूली मेहदी, हँसती चपा, पौधा गाये धान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(१२)

पलक वनी पूजा की थाली, हर आँचल पुचकार उठा।
ममता झलक पडी आँखो से, त्रिभुवन का सब प्यार लुटा॥
कजरी गाती, रस झलकाती, करुणा द्वारे तक आई।
दर्शन की प्यासी अभिलापा, छद वदना के लाई॥
तूफानो मे दीप जला फिर, मानव के उत्थान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(१३)

खग वृन्दो ने छेड़ी सरगम, पख हिला सम्मान किया।
पुष्पो से लद गईं लताये, जड-चेतन ने ध्यान किया॥
झिलमिल कुमकुम थाल सजाकर, किरन कामिनी मुस्काई।
हर उमंग झूला सी झूली, हवा हिमानी गदराई॥
वरदानी-हाथो से मिलता, फल गगा स्नान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(१४)

झरनों सी साँसे लहराईं, नशा चढा था जन-जन मे।
इन्द्र स्वय हर्षित हो बैठै, हीरे वरसे आँगन मे॥
मान सरोवर सोहर गाती, कलकल की स्वर लहरी में।
मुखडे ऐसे दमक रहे थे, शीशा ज्यो दोपहरी मे॥
तेज देखकर थम जाता था, चढता सूर्य विहान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(१५)

भू ने माथा रखा पगो पर, अम्वर ने की आरती।
चौक पुरे हर देहरी आँगन, धन्य हो गई भारती॥
सागर की नव वधुएँ सजकर, चरण चूमने को आईं।
शैल हिमालय की बेटी फिर, दूध धुला दर्पण लाईं॥
सव से अच्छा कोहनूर था, वह हीरे की खान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१६)

मदोन्मत्त हाथी था जिनका, एक खिलौना वचपन का।
तक्षक नाग किया वश मे था, खेल हुआ था छुटपन का॥

क्षमा-दया और सत्य अहिंसा, थी जिनकी मीठी बोली।
जियो और जीने दो सबको, सूरत कहती थी भोली॥
पियु पियु के स्वर गूंजे फिर, मन पिघला चट्टान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१७)

कमनीय कला की मूरत बन, वैभव की मणियाँ बिखराई।
गायक के स्वर-संधानो मे, पंचम रस बन लहराई॥
मृदुल-भुजाओ की गगा में, करुणा रोज नहाती थी।
जिनके चरणों की धली से, छल-छाया घबराती थी॥
बिना कहे औठो पर आता, शब्द शब्द आख्यान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१८)

शब्द मन्त्र बनकर बिखरे फिर, नगर डगर हर भावो मे।
धर्म-अहिंसा का लहराया, ज्यो कदंब की छाओं मे॥
ऐसा फूल बना मधुवन का, महक उठी हर फुलवारी।
सोलह स्वर्ग निछावर होते, ऐसी सूरत थी प्यारी॥
जैसे सुमन खिला धरती पर, सुर पुर के उद्यान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१६)

तन के राजकुमार सलौने, मन के वे सन्यासी थे।
जीवन में मानवता बिखरी, घट घट के वे वासी थे॥
वे भोगी कैसे बन जाते, योगी बन कर आये थे।
तीस वर्ष की आयू मे ही, वीतराग गुण गाये थे॥
मानवता की रक्षा करने, हाथ उठा वरदान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२०)

जिधर बढे थे चरण आपके, शवनम अर्घ्य चढाती थी।
साधे अमर सुहागिन वनकर, नई ज्योति दिखलाती थी॥
रूप रग की रजनी गधा, जीवन-कला सिखाती थी।
मोक्ष ज्ञान की दर्शन लीला, अर्थो मे समझाती थी॥
मंगल चरण चमकते ऐसे, ज्यो पल्लव विरवान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२१)

प्रेम सत्य है जग-जीवन का, मुनियो को यह ज्ञान दिया।
अमर आत्मा देह वस्त्र है, श्रद्धा का सम्मान किया॥
जिनकी त्याग तपस्या छूकर, चकित हुआ था ध्रुव-तारा।
जिनकी पावनता को लेकर, शरमाई गगा - धारा॥

जिनके पलक इशारो से ही, शीश झुका अभिमान का ।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का ।।

(२२)

कठिन तपस्या वारह वर्षी, दिव्य सुधा-रस भर लाई ।
वीत गये व्यालीस वर्ष जव, ज्ञान ज्योति दौडी आई ।।
कर्मवाद और साम्यवाद का, हँस कर रिश्ता जोड़ दिया ।
आकिंचन्य दिया दुनिया को, जग से मुखड़ा मोड़ लिया ।।
कला-कीर्ति की वीणा पर था, मिटा तिमिर अज्ञान का ।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का ।।

(२३)

सत्य और शिव को लेकर, सुन्दर स्वर्णिम कलश गढे ।
वीतरागता के सम्वल से, स्याद्वाद के वचन पढ़े ।।
उज्ज्वल शीतल शात मधुर, चिन्तन दर्शन को दिखलाया ।
आदि अन्त की भूल मिटाकर, प्रतिशोधो को ठुकराया ।।
काम-क्रोध का पहरा टूटा, सुख जाना सम्मान का ।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का ।।

(२४)

वैशाली गणतंत्र मध्य मे, भाग्य जगे कुड ग्राम के ।
घर वैठे ही चरण मिल गये, उनको तीरथ धाम के ।।

वदल दिया इतिहास धरा का, महाकाल का बल रोका।
नफरत की काली आधी फिर, दे न सकी जग को धोखा॥
चुटकी भर शक्ती को लेकर, रथ निकला विज्ञान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(२५)

भूखण्ड बिछा आकाश ओढ, अक्षर के दीपक जला गये।
दीपावलि को पावा पुर मे, ज्ञान ज्योति मे समा गये॥
हुई कृतार्थ भूमि भारत की, इनकी परछाई छूकर।
अक्षय अटल अमर होगा वह, इनके वचनामृत सुन कर॥
शंख नाद में स्वर गूजेगा, उनके गौरव गान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे है, महावीर भगवान का॥

(२६)

तेरी छवि-छाया हिल मिल कर, प्राणो मे चुभ-चुभ जाती।
मुखरित कण्ठो की मणिमाला, हृदय-हार वन लहराती॥
जीवित रहे धरा पर प्राणी, ऐसा शब्द शृङ्गार किया।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित से, जन हित का उद्धार किया॥
दीनो का रखवाला था वह, साथी था अनजान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

वैशाली

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

ओ भारत की भूमि वन्दिनी ! ओ जजीरों वाली !
तेरी ही क्या कुक्षि फाड़कर जन्मी थी वैशाली !
वैशाली ! इतिहास-पृष्ठ पर अकन अंगारों का।
वैशाली ! अतीत गव्हर मे गुजन तलवारों का ।।
वैशाली ! जन का प्रतिपालक, गण का आदि विधाता।
जिसे ढूढता देश आज उस प्रजातन्त्र की माता ।।
रुको, एक क्षण पथिक ! यहाँ मिट्टी को शीश नवाओ।
राज सिद्धियो की समाधि पर फूल चढाते जाओ ।।
डूवा है दिनमान इसी खंडहर मे डूबी राका।
छिपी हुई है यही कही धूलो मे राज-पताका ।।
ढूढो उसे, जगाओ उनको जिनकी ध्वजा गिरी है।
जिनके सोजाने से सिर पर काली घटा घिरी है ।।
कहो, जगाती है उनको वन्दिनी बेडियो वाली।
नही उठे वे तो न वचेगी किसी तरह वैशाली ।।

× × ×

फिर आते जागरण-गीत टकरा अतीत गव्हर से।
उठती है आवाज एक वैशाली के खँडहर से ।।
करना हो साकार स्वप्न को तो बलिदान चढाओ।
ज्योति चाहते हो तो पहले अपनी शिखा जलाओ ।।
जिस दिन एक ज्वलन्त पुरुप तुम मे से वढ जायेगा।
एक एक कण इस खंडहर का जीवित हो जायेगा ।।
किसी जागरण की प्रत्याशा मे हम पड़े हुए है।
लिच्छवि नही मरे, जीवित मानव ही मरे हुए हैं ।।

वीर-वैभव

श्री लक्ष्मीनारायण जी 'उपेन्द्र'
खुरई (सागर) म० प्र०

१

अति पुण्य भूमि भारत वसुधा, उसमे कुडलपुर वैशाली।
दैदीप्यमान हो उठी स्वय, थे क्योकि वीर प्रतिभाशाली॥
माता त्रिशला सिद्धार्थ पिता, हर्षित जग का हर प्राणी है।
जन्मावतार की मंगलमय, वेला सचमुच कल्याणी है॥
चैत्र शुक्ल शुभ त्रयोदशी, जन्मोत्सब राजकुमार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है स्वाँग मिटा ससार का॥

२

श्री वृद्धिगत देख पिता ने, वर्द्धमान शुभ नाम दिया।
तीर्थंकर अवतार जान कर, इन्द्रो ने अति नृत्य किया॥
ऐरावत गज पर समासीन, कर पांडुक पर पधराया है।
अभिषेक वीर का देख देख, जन जन का मन हरषाया है॥
था दोज चन्द्र सा वर्द्धमान, सत् रूप ज्ञान सुकुमार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाग मिटा संसार का॥

३

कचनवर्णी स्वर्णिम काया, आकर्षक थी रूपच्छाया।
सुर पतिने नयन हजारो कर, देखा शिशु को न अघा पाया॥
आत्म-ज्ञान सम्पन्न विवेकी, मेधावी वे बालक थे।
भय तो भयभीत रहा उनसे, वे स्वत· शौर्य के पालक थे॥

सच पूंछो तो समय आगया जीवों के उद्धार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाँग मिटा संसार का॥

४

प्रत्युत्पन्न बुद्धि बालक की, वीरोचित क्रीड़ाएँ थी।
एक वार का हाल सुनाये, जिसकी वहु चर्चाये थी॥
खेल खेल में वर्द्धमान भी, समवयस्क सह वृक्ष चढे।
नागराज भी उसी वृक्ष पर, आकर तव ही लिपट पड़े॥
फण पर पग रख उतर पडे पर असर नही फुकार का
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाग मिटा ससार का

५

निर्मद हो पथ बदल लिये, थे जहरीले उद्गारो ने।
हर्षित हो जय बोली मिलकर, साथी राजकुमारो ने॥
इसी तरह जव एक वार, गजराज हुआ मतवाला था।
गजशाला को तोड-फोड़, विप्लव प्रचड कर डाला था॥
सभी लोग घबडा कर भागे, धैर्य अटूट कुमार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाग मिटा ससार का॥

६

धीर प्रशान्त वीर सन्मति का, था सुयुक्ति से मन टकित।
क्लिष्ट समस्याओ का हल वे, कर देते थे नि शकित॥
श्री वर्द्धमान की प्रतिभा भी, दिन दूनी रात चौगुनी हुई।
या प्रश्नो की बौछार स्वय, उत्तर की सिद्ध लेखनी हुई॥
शंकाएँ सब समाधान थी प्रश्न न अस्वीकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाग मिटा ससार का॥

७

ज्यों ज्यो किशोर अति वीर हुए, त्यों चिंतन प्रिय होते जाते।
पटु तर्क शास्त्री भी उनके, तर्कों को सुनकर सकुचाते॥

अवलोक ज्ञानमत्ता उनकी, जिज्ञासु तत्त्व चकरा जाते।
तत्त्वो की व्याख्या सुन सुन कर, अपने को शिष्य बना पाते ।।
निराकार आत्मा सवल थी, उनकी देहाकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोग मिटा ससार का ।।

८

हाँ ! समवयस्क ने एक वार, माँ से पूछा "श्री वर्द्धमान"।
हैं कहाँ ? शीघ्र उत्तर पाया, उत्तर मजिल पर विद्यमान ।।
जव ऊपर जाकर देखा तो, फिर वहाँ नही उनको पाया।
तत्रस्थित पितु श्री से पूछा, उनसे तब नीचे बतलाया ।।
ऊपर नीचे पता नही था असमजस के द्वार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोग मिटा ससार का ।।

९

साथी वोला तुम कहाँ छिपे ? चिंतन की मुद्रा में बैठे।
सातो मजिल मे खोजा पर, तुम किस मजिल में स्थित थे ?
मा से पूछा क्यो नही मित्र ? यो वर्द्धमान से प्रश्न किया।
साथी ने उत्तर दिया तभी इस पूछताँछ ने भुला दिया ।।
अर्थ न कुछ भी ज्ञात हुआ, ऊपर नीचे व्यवहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोग मिटा ससार का ।।

१०

तव वर्द्धमान ने कहा मित्र, है दोनो ही के कथ्य सत्य।
माँ से ऊपर पितु से नीचे सापेक्षतया है यही तथ्य ।।
यदि वीर चाहते तो उदात्त, क्षत्रिय राजा बन सकते थे।
जनता पर शासन कर विलास, भोगो मे भी रम सकते थे ।।
आनन्द अतीन्द्रिय खोजी को है समय न उपसहार का।
आनदित त्रैलोक्य हुआ है, ढोग मिटा संसार का ।।

११

वह युग हिंसामय बना हुआ, था धर्मनाम बदनाम बहुत ।
पशुबलि नरमेघो को करना, ही यज्ञो का था काम बहुत ।।
धर्मों के ठेकेदार सभी सुरपुर का टिकट बांटते थे ।
हिंसा के ताण्डव नृत्य सत्य, का मिलकर गला काटते थे ।।
वातावरण बनाया जिसने शांति अहिंसा प्यार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोग मिटा ससार का ।।

१२

हो जाए अहिंसायुक्त विश्व, है सन्मति का संदेश यही ।
तज मोह राग द्वेषादिक को, धारे विराग मय वेप सही ।।
अतएव त्याग गृहस्थावस्था, वे ज्योति पुज के रूप बने ।
निज शान्ति अहिंसा के सुन्दर तम सत्य शिव अनूप बने ।।
माया मोह न रोक सका था उनको घर परिवार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोग मिटा ससार का ।।

१३

यौवन ने पाँसे फेके थे, रगीनी के अल्हड़ता के ।
पर पाँव फिसलते भी कैसे, उन महावीर की दृढता के ।।
बंधन की तोड़ी बाधाएँ, छोड़ी सब ही रगरेलियां ।
इन्द्रिय निग्रह के निश्चय मे, वे भूल गये अठखेलियां ।।
नही मुक्ति श्री अभिलाषी को कार्य प्रणय व्यापार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोग मिटा ससार का ।।

१४

आत्म तत्त्व की सत्त्य खोज मे, तीस वसंत व्यतीत हुए ।
सभी लोक व्यवहार जगत के नश्वर उन्हे प्रतीत हुए ।।
नग्न दिगम्वर हो निर्जन मे, आत्म-साधना रत रहते ।
वे मौन विवेकी रह करके, उपसर्ग परीषह सब सहते ।।

बाहो का तकिया था उनका, चादर गगनाधार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोग मिटा ससार का॥

१६

आत्म चिंतवन मुख्य ध्येय था न्हवन और दन्तौन विहीन।
शीत ग्रीष्म वर्षादिक ऋतुएँ करती उन्हे अधिक तल्लीन॥
सहज सौम्य स्वाभाविकता का, वन पशुओ पर पडा प्रभाव।
परम अहिंसक तप ने पूरे जन्म जन्म वैरों के घाव॥
था बना तपोवन शेर-गाय सब के स्वच्छद विहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोग मिटा ससार का॥

१६

कभी कदाचित् भोजनार्थ वे, दृढ प्रतिज्ञ ईर्या-पथ से।
चल कर खड़े खडे कर लेते, शुद्धाहार महाव्रत से॥
थी दासी एक अभागिन सी, जो कर्मों के फल भोग रही।
जनक और जननी वियोग मे, जेलो मे दिन काट रही॥
नाम सुपरिचित चदनबाला चेटक सुता दुलार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोग मिटा ससार का॥

१७

था दोष यही केवल उसका, थी रूप रग मे रमावती।
स्वामिनि थी उसकी वदसूरत, चदन दासी थी रूपमती॥
प्रभु महाश्रमण श्री महावीर ने उसके घरआहार लिया।
उस चन्दनवाला सी पतिता का युग युग को उद्धार किया॥
था द्वादश तप द्वादश वर्षी, दृढ निश्चय के व्यवहारका।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोग मिटा ससार का॥

१८

शुभ वयस् व्यालिस होने पर, वे वीतराग सर्वज्ञ बने।
कर राग-द्वेष प[illegible]प्राप्त, वे सच्चे स्थित प्रज्ञ बने॥

जभिया ग्राम तट ऋजुकला, पर ज्यो ही वे ध्यानस्थ हुए ।
त्यो शाल वृक्ष के नीचे वे केवल ज्ञानी आत्मस्थ हुए ।।
वैशाखी शुक्ला दशमी का था धन्य दिवस जयकार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का ।।

१६

वे पूर्ण वीतरागी होने से, जिनवर श्री अरिहन्त हुए ।
तीर्थङ्कर पुण्योदयी प्रकृति, से समवशरण भगवत हुए ।।
तत्त्वोपदेश भूमंडल में देते थे चरण विहारी वे ।
नय अनेकान्त को समझाते थे रत्नत्रय के धारी वे ।।
था समवशरण मे गूज रहा अति दिव्यनाद ऊँकार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का ।।

२०

प्रारभ हुए धर्मोपदेश कल्याणमयी सर्वोदय के ।
वाणी को सुनकर सभी जीव, थे आतुर निज ज्ञानोदय के ।।
षड् द्रव्य सप्त है तत्व यहा उनमे आत्मा को पहिचानो ।
उसमे ही रमना मोक्ष अमर पहिले उसको मानो जानो ।।
है धर्म एक पर निर्देशन होता है विविध प्रकार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का ।।

२१

पर्याय बदलती रहती है, क्षण क्षण उत्पन्न नई होती ।
मिलती न कभी भी आपस मे प्रत्युत् अतीत मे ही खोती ।।
मत देखो गत पर्यायो को, सोचो मत भावी पर्याये ।
है स्वय अरे परिपूर्ण द्रव्य, स्वाधीन सहज सब आत्माये ।।
है द्रव्य यथावत् स्वाभाविक, वैभाविक विविध प्रकार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का ।।

२२

उसको ही ज्यो का त्यो देखो, जानो मानो बस टिके रहो ।
जो वर्तमान सो वर्द्धमान बस इसी प्राप्ति हित विके रहो ॥
जिस तरह यहां पर वहुरूपिया, निज वसन त्याग कर स्वाग धरे ।
उस तरह आत्मा तन तज कर कर्मानुसार भव भ्रमण करे ॥
है मोक्ष मार्ग सम्यग्दर्शन ही सम्यक्ज्ञानाचार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोग मिटा ससार का ॥

२३

इस देह त्याग से सुनो अरे यह नश्वर तन मिट जाता है ।
मोही चेतन के साथ-साथ बस पुण्य-पाप ही जाता है ॥
चौरासी लक्ष योनियो मे यह आत्मा चलनी बनी रही ।
फिर जन्म-मरण के चक्कर मे चारो गतियो मे सनी रही ॥
यदि वात गुनो मेरे भक्तो, तो नाम न लो ससार का ।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोग मिटा ससार का ॥

२४

है यह अनादि से स्वय सिद्ध, इसका न कोई निर्माता है ।
है विश्व रचयिता स्वय अज्ञ, ज्ञाता तो इसे मिटाता है ॥
यदि सचमुच ही सच्चे सुख के, तुम वने हुए अभिलाषी हो ।
तो छोडो लौकिक सुखाभास, तुम निजानन्द अविनाशी हो ।
इस गुण समुद्र अपने चेतन मे लय हो क्षणिक विकार का ॥
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोग मिटा ससार का ॥

२५

इस प्रकार श्री वीर प्रभू ने, स्वातन्त्र्य मन्त्र उद्घोष किया ।
साम्यवाद के साथ साथ ही, रत्नत्रय का कोष दिया ॥
निर्वाण काल आया प्रभु का, तव पावन पर्व प्रसिद्ध हुए ।
फिर अष्ट कर्म कर नष्ट वीर, अर्हत् से शिव सुख सिद्ध हुए ॥

यो वर्ष वहत्तर रहे वताते पथ निश्चय व्यवहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा ससार का॥

२६

शुभ दीपावलि का दिन पावन, निर्वाण दिवस पावापुर में।
सम्पन्न हुआ देवो द्वारा हम दीप जलाते घर-घर में॥
है हुआ हमारा विरह काल ढाई हजार इन वर्षों का।
पर अव सुयोग मिल पाया है, हमको अपने उत्कर्षो का॥
यह युग युग अमर रहेगा मंगल गायन धर्माधार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोग मिटा ससार का॥

२७

मुझ में तो किंचित् शक्ति नही पर भाव भक्ति से आये है।
जिनवर से दृष्टि सुदृष्टि हुई अतएव वीर गुण गाये है॥

—०—

समन्वय

निश्चय की मंजिल पाने को—
सतों ने जो पंथ वनाया।
निश्चयाग्र व्यवहार्य कार्य—
वह व्यावहारिक मार्ग कहाया॥

मत लडो पकड़ कर एक पक्ष—
यह जैन धर्म समझौता है।
हम वनें समन्वयवादी अव—
यह अनेकान्त का न्यौता है॥

—×—

उद्बोधन

श्री डा० रामकुमार जी जैन
एम० वी० वी० एस खुरई

तव चरणो की बाट जोहता, धरती का हर छोर रे।
तप्त-धरा के तृषित कणो पर, बरस पडो घनघोर रे॥
ताल-तलैयो के अधरो पर प्यास रे!
शोक मनाती देखो नदी उदास रे!!
प्यासे पंछी की आँखो मे सास तोडती आस रे!
सूखे पनघट के घाटो पर वीरानो का वास रे!!
पी. पी. पी रट रहा पपीहा प्यासा वन का मोर रे!!!

हो, ममता के रक्षक तुम, हो सुहाग के रखवारे !
वीतराग तुम वैरागी तुम, पर स्वारथ के मतवारे !!
बूढो की लाठी हो तुम, नयन हीन के नयना रे !
बधिर जनो के कान तुम्ही हो गूगो के तुम वयना रे !!
क्रूर काल के द्वार मचादे, नए जन को शोर रे !!!

चमक तडित सम 'पीर-मेघ' को चीर रे !
अपने उर मे ले-सोख धरा की पीर रे !!
अपनी छाती पर रोक काल के तीर रे !
जीवन के द्वारे पर खीचो युग की लखन लकीर रे !!
'जीवन-सीता' हर न पाये, छलिया रावण चोर रे !!!

घोर निराशा के तम में तूँ आशा ज्योति जगाता चल !
"मौतो के गलियारे" मे तूँ जीवन-गीत सुनाता चल !!
हर बुझते जीवन-दीपक की, बाती को उकसाता चल !
हर जीवन पथ भ्रष्ट पथिक को, सम्यक् राह सुझाता चल!!
'यम के पाशो' घुटती-साँसों का मुसका हर पोर रे !!!

लोभो के व्यूहो मे फँस कर, अपनी राह न खोना रे !
सोने की जगमग मे चुधिया अपनी आब न खोना रे !!
सुख के बिरवा रोपन हारे, विष के बीज न बोना रे !
जीवन-ज्योति जगाने वाले, तम के गेह न सोना रे !!
सोयी धरती के पूरब मे, चमको बन कर भोर रे !!!

तब चरणों की बाट जोहता धरती का हर छोर रे !
तप्त धरा के तृषित कणो पर, बरस पडो घनघोर रे !!

--o--

वे महान थे वर्द्धमान थे

श्री शीलचन्द्र जी चौधरी 'शील'
खुरई (सागर) म० प्र०

सन्मति का व्यक्तित्व काल क्या कभी बाँध सकता है ?
महावीर का चिंतन जग की परिधि लाँघ सकता है।
यावच्चन्द्र दिवाकर नभ मे ज्ञानालोक बिखरता।
उनसे प्रति बिम्वित होकर ही कवि का भाव निखरता ॥१॥

वर्ग विहीन सृष्टि मानव की महावीर दिखलाते।
अर्थनीति की मर्यादा को आवश्यक बतलाते ॥
यह युग-युग का चिन्तन एव निष्कर्षों का मथन।
सत्येश्वर का सोना है जो सर्वोदय का कचन ॥२॥

जाने मे या अनजाने मे महावीर का चिन्तन।
विश्व निकट लाया करता आचार-विचारो का प्रण ॥
यह आचार सहिता उनकी स्वय सफल होती है।
जो तिर्यंच नर नरकासुर के पाप सकल धोती है ॥३॥

सत्यमूर्ति थे ज्ञानमूर्ति थे, पौरुष भी वे मूर्तिमान थे।
वे सन्मति थे महावीर थे, तीन लोक मे वे महान थे ॥
कालजयी थे अत. स्वयं ही, भूत भविष्यत् वर्तमान थे।
हीयमान को वर्द्धमान करने वाले वे वर्द्धमान थे ॥४॥

—०—

दर्शन-बोध

श्री मदन श्रीवास्तव
सेन्ट्रल वैंक ऑफ इण्डिया (खुरई) म० प्र०

सलिल की बूंद
मिल कर
जिस जगह
बन जाती है मोती,
वही स्थल
इस सद्उद्देश्य
का आरम्भ है
सभी दर्शन
जहाँ जुड जाते हैं,
दर्शन से जीवन के
महत्तम

जैन दर्शन का
वही स्तम्भ है।
हो जिसमे वीरता
ससार में वह
वीर है
पर अहिसा
सत्य-शिव-सौन्दर्य
का जिसमें
समन्वय हो
वह नि'सन्देह
जग स्तुत्य

महावीर है

—०—

मेरा नमन स्वीकार हो

श्री नारायण 'परदेशी' सम्पादक 'बुजन'
पो० बा० नं० ६ खुरई (जिला सागर) म० प्र०

करुणा के 'नीरद'
महावीर ने—
मानवता को, दुराचार की ज्वाला में धधकते देख !
सांसारिक—सुखो का 'परित्याग' कर ! !
व्याप्त-दुराचार उन्मूलन के लिए—
जीवन-बलिदान की प्रतिज्ञा कर,
त्याग के मार्ग पर ! ?

क्षमता का 'कवच' पहिने ?
आत्मवल की 'लगाम' पकड़े ??
विश्वास के 'अश्व' पर सवार हो,
जगत के 'प्रहारो' को 'वक्ष' दिखा—
मजिल की ओर 'प्रस्थान' किया ??

सतत् बढ़ते रहे
मनन् करते रहे
सुखो का, दुखो का
जनम का, मरण का
भव-मोक्ष, मार्ग का

अन्त मे—
   बारह वर्षों के, 'अन्धकार' को !
      तपस्या के 'अबा' मे,
         तपा डाला,—तन के 'तम' को ! !

कुन्दन बनकर,
   चकाचौंध किया 'अन्धकार' को !
      सत्य, अहिसा, त्याग, प्रेम की—मसालों से,
         प्रकाशित किया, दिशाओ को ! !

मोक्ष का 'लोभ' दिखा !
   मोक्ष का—'मार्ग' दिखा ! !
      मानवता का 'पाठ' सिखा !
         'अमर—ज्योति'
            'अमर—मजिल' पाकर—
               अमर किया—नाम को
                  हे !—"अमन"
                     मेरा—नमन,—स्वीकार हो ! !

नमन

सिद्धो का चैतन्य नग्न है—
   कर्म-पटल से निरावरण ।
अरिहतो का तन-मन नंगा—
   गंगा से ज्यादा पावन ।।
हैं निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिव्रय—
   नग्न सर्वथा आकिञ्चन ।
इन्ही पंच परमेष्ठि गणो के—
   श्री चरणो में करूँ नमन ।।

भ० महावीर के भक्तों के प्रति

श्री दुर्गादीन जी श्रीवास्तव एडवोकेट 'बागी'
खुरई (सागर) म० प्र०

मैं जगती का जीव अकिंचन ।
महा अपावन भ्रष्ट स्वभावी ॥
हे सन्मति ! सब भक्त तुम्हारे ।
हुए वीर एव मेधावी ॥ १ ॥

भक्त वही जो जिन वाणी को ।
वाणी में—जीवन मे ढाले ॥
उपदेशो के पहिले खुद ही ।
उनको निज कृत्यो मे पाले ॥ २ ॥

जियो और जीने दो स्वर के ।
वीतराग मय शाश्वत पथ पर ॥
निर्विकार व्यापार रहित जो ।
बने आत्म-हित नग्न दिगम्बर ॥ ३ ॥

कमल कीच सदृश्य आत्मा ।
लिप्त नही है जड शरीर से ॥
महावीर हे भक्त आप के ।
दृश्यमान हों नीर-क्षीर से ॥ ४ ॥

—०—

त्रिशला माँ की लोरी

(लोक-गीत)

कवि श्री फूलचन्द जी "पुष्पेन्दु" खुरई

तूँ तो सोजा बारे वीर ; तूँ तो सोजा प्यारे वीर।
वीर की बलहइयाँ लेती मोक्ष की प्राचीर॥
तूँ तो सोजा बारे वीर ? तूँ तो सोजा प्यारे वीर।
तुझे झुलाऊँ पालना मे, तुझे खिलाऊँ गोद॥
तुझे सुलाऊँ कैसे ? तूँ तो जागृत आतम बोध।
तूँ तो चेतन की तस्वीर, तूँ तो सन्मति की तस्वीर॥
तस्वीर की गलबहिया लेती इन्द्रो की जागीर
तूँ तो सोजा प्यारे वीर ; तूँ तो सोजा बारे वीर।
काहे का है पालना ? काहे की डारी डोर।
घड़ी घडी जे वीरा पुलके, होकर आत्म-विभोर॥
जिन्हो का है वज्राङ्ग शरीर, जिन्हो की रग-रग में है क्षीर।
क्षीर मे किल्लोले करता करुणा रस गंभीर।
तूँ तो सोजा बारे वीर ? तूँ तो सोजा प्यारे वीर।
रत्नत्रय का पालना है वीतराग की डोर।
सत्य अहिसा के झूले मे हिसा को झकझोर॥
तूँ तो धरम धुरधर धीर, सचमुच नगन दिगम्वर वीर।
वीर की वलहइयाँ लेती, शिव की मलय-समीर।
तूँ तो सोजा वारे वीर तूँ तो सोजा प्यारे वीर॥

—०—

श्री महावीर स्तुति

श्री सिंघई देवेन्द्रकुमार जी जयंत खुरई

मिल के गाये अपन, वीरा प्रभु के भजन, श्रावक सारे।
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

निश दिन तुम को भजे, पाप पाँचो तजे।
कर दया रे, पातकी को लगा दो किनारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

नंद सिद्धार्थ के प्राण प्यारे, मातु त्रिशला की आँखों के तारे।
राज्य-वैभव तजा, नग्न बाना सजा, सयम धारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

रुद्र ने घोर उपसर्ग ढाया, देवियो ने प्रभू को रिझाया।
किन्तु डोले नही, बैन बोले नही तप सम्हारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

राग की आग मे जल रहे है, चाह की राह में चल रहे हैं।
भ्रष्ट आचार है, दुष्ट व्यवहार हैं, बे सहारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

मन को ऐसे मैं कब तक रमाऊँ, कौन विधि से तुम्हे नाथ ध्याऊँ।
जयन्त व्याकुल भया, चैन सारा गया, आए द्वारे॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

—०—

जड़ता से चैतन्य की ओर

नचयिता : रमेश रायत 'रंजन' खुरई (म० प्र०)

कुण्डग्राम की जन्मभूमि ने,
भारत माँ को धन्य किया।
त्रिशलानन्दन ने कण-कण को,
जड़ता से चैतन्य किया ॥१॥
जन्म जात इस अनासक्त ने,
जीवन को एकान्त किया।
पूर्ण वीतरागी वन करके,
अनेकान्त उपदेश दिया ॥२॥
पावापुर निर्वाण भूमि से,
स्वय सिद्ध पद प्राप्त किया।
ज्ञानालोक विखेरा एव
मिथ्या तिमिर समाप्त किया ॥३॥

—×—

मुक्तक

राग रग मे लिप्त आत्मा, कहलाती संसारी।
पराधीनताओं से जकड़ी हुई लोक व्यवहारी ॥
किन्तु वीर ने स्वावलवमव श्रद्धा ज्ञान चरित्र वनाया।
इसीलिए उनके चरणों पर तीनो लोको की वलिहारी ॥

—डा० जुगलकिशोर गुप्ता 'युगल'

बढ़ने का बल पाया है

प्रीतमसिंह 'प्रीतम' शुक्ला वार्ड खुरई

अनदेखी है मजिल मेरी, वीर-प्रभू का साया है।
साया से ही उर मे मैंने, बढने का बल पाया है।।

बढना ही जीवन है मेरा
फूल खिले, या पथ मे काटे
चाहे मौसम साथ रहे या—
चाहे तूफानो के चाटे।

कैसा भी मौसम हो, लेकिन मैंने कदम बढाया है।
कदम-कदम पर कदमो मे भी जोश हमेशा पाया है।।

दुनिया के कलख को जाना—
मैंने अपना ही पथ-दर्शन।
भूतकाल है जीवन-दर्पण—
आने वाले का अभिनन्दन।।

जब-जब भी की गलती मैंने, तब-तब शीश झुकाया है।
वर्तमान के शुभ कर्मों से, जीने का वल पाया है।।
अनदेखी है मजिल मेरी, वीर प्रभू का साया है।
साया से ही उर में मैंने, बढने का वल पाया है।।

—x—

दिव्या लोक

श्री छोटेलाल जी 'कँवल' (अन्त्यत)
खुरई (सागर) म० प्र०

धीर-वीर गभीर हृदय था
महावीर युगवीर का
कण-कण देता है प्रश्नों का
उत्तर मलय समीर का

वैभव उनके चरण चूमने, सुर नगरी तज आया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है॥

पुन. पुन. भव भाव-भ्रमण से
वीतराग जिन विलग हुए
इन्द्रिय निग्रह तय सयम मे
ज्ञानानन्दी सजग हुए।

अष्ट कर्म रिपु वशीभूत कर दुनिया को दिखलाया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है॥

जगमग जगमग दीपमालिका,
केवल ज्ञान प्रतीक वनी।
परम अहिसा धर्म प्रेरणा—
युग युगान्त की लीक वनी॥

अनेकान्त के समझौते ने सारा विश्व रिझाया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है॥

—x—

विरोध भास स्तुति

रचयिता—श्री फूलचंद जी पुष्पेन्द्र खुरई

(१)

वीर में वीर-रस तो वहा ही नही—
जिन्दगी भर करुण-रस प्रवाहित रहा।
खून था ही नही, इसलिए दूध ही—
दूध उनकी रगों मे निरन्तर वहा॥

(२)

युद्ध अथवा महायुद्ध देखे नही—
जीतने की उन्हे वात ही दूर थी।
शत्रुता थी नही एक भी जीव से—
शूरता-वीरता आदि मजबूर थी॥

(३)

सिंह के लक्षणो से समायुक्त थे—
पाशविकता नही किन्तु छू भी गई।
जगलो मे रहे जगली थे नही—
नग्नता सभ्यता रूप परणित हुई॥

(४)

वीर गति मिल चुकी है महावीर को—
मिल चुकी है उन्हे आत्म स्वाधीनता।
वीर-शासन अहिसामयी दिख रहा—
वीर चक्राकिता सत्य-शालीनता॥

वीर वाणी को अन्तस में उतारो

श्री रमेश जैन 'अरुण'
व्याख्याता शास० उ० मा०
शाला सुरखी (सागर)
म० प्र०

महावीर तुम्हारी सत्य अहिंसा
हो गई कैद
इस एटमी युग मे
शांति को निगल गई
क्रान्ति की निशाचरी
तुम्हारे अनुयायी गाधी को
मार दी गई गोली
अध्यात्मवाद की
हो रही नीलामी
लग रही जगह जगह बोली
झूठी आस्था के खडे हो रहे महल
पाखंडो का लगाया जा रहा पलस्तर
वाणी भूपण के कुशल कारीगर

कर रहे पहल
हम सभी वाह् वाह्
की फैला रहे रोशनी
जो दूर के तम का
करती हरण
पर अन्तस् मे सोये
तामस का
कहाँ होता अनावरण ?
मेरी पीढी के लोग
तुम्हे क्या हो गया है ?
क्या तुम नही जानते
अपनी औकात ?
तुम्हारे हाथो मे है
सूरज का उजाला
अंधेरे की कैसी सौगात ?
विवेक से काम लो
अन्धेरे के गीत
मत गाओ
'अरुण' का प्रकाश
यदि न दे सको
तो पावस अमा की निशा का तम
मत बाँटो
अपना चिरन्तन मूल्य
इस तरह् शून्य आकाश मे
मत आँको
उठो, देखो
तुम्हारी, अगवानी को

प्रगति की दुल्हन
आरती लिए खड़ी है
प्रेम का दो सम्बल
आशीष की सुहाग विंदी दो
उसे स्वीकारो
मानव हो, मानव की तरह
मानव को निहारो
वीर की वाणी को
अन्तस् मे उतारो
श्रद्धा से करो
नमन, वन्दन, अर्चन,
मिथ्यात्व को मारो

आत्मा का गणतंत्र

श्री फूलचन्द जी पुष्पेन्दु

केन्द्रीभूत हुई सत्ताएँ—तथा कथित ईश्वर में।
किया विकेन्द्रीकरण—उन्ही का हर आत्मा के घर मे॥
राज्य नही, गणतत्र नही, अब प्राणिमात्र अनुशासन—
छाया समवशरण सर्वोदय तीनो लोको भर में॥१॥
यह स्वतत्रता-युद्ध वदल जाए यदि मुक्ति-समर मे।
तो फिर सच्चा साम्यवाद भी आ जाए क्षण भर में॥
हो सहयोग स्वावलवन पूर्वक समाज की रचना।
यदि समष्टि की हर इकाई स्थित हो आत्म अमर मे॥२॥

आज के संत्रास मय संसार में, महावीर का संदेश ही ऊषा किरण है

रचयिता :—व्याख्याता श्री लालचंद जी 'राकेश'
शा० उ० मा० शाला रायसेन (म० प्र०)

(१)

आज का मानव पिपासाकुल,
मगर पानी नही, वह खून पीना चाहता है।
ओढ कर इसानियत की खाल,
जिन्दगी शैतान की उन्मुक्त जीना चाहता है ॥
पुण्य का सम्पूर्णत. परित्याग कर,
दिन-रैन ही है लिप्त वह पापाचरण में।
किन्तु किसी मूर्ख, बेलज्जत,
पुण्य फल की चाह रखता है स्व मन में ॥
व्यस्त सुख की खोज मे नर,
पर पा रहा सर्वत्र वह तम ही सघन है।
आज के सत्रास मय ससार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ॥

(२)

आज नर की जिन्दगी क्या ?
छल, दम्भ, मिथ्या, मोह, तृष्णा की पिटारी।
कनक वर्णी कामिनी की आग मे,
आसक्त हो, वनकर शलभ फूकी, गुजारी ॥
और कचन चाह कितनी ?
द्रोपदी के चीर जैसी वढ रही दिन-रात दूनी।

कादम्वनी विन जिन्दगानी,
सेमर-सुमन ज्यो लग रही है व्यर्थ सूनी ॥
"छोड इनको सर्वथा रे,
अन्यथा तेरा सुसम्भावी पतन है।"
आज के संत्रास मय ससार में,
महावीर का संदेश ही ऊषा किरण है॥"

(३)

जन्म क्या है ? "मरण की भूमिका है",
ले चुका इसको अनंती बार प्राणी।
मृत्यु का बन ग्रास क्या जाने,
कव कफन ले ओढ अस्थिर जिदगानी ॥
इसलिये भयभीत सब हैं,
लड़खड़ाते भार अपना ढो रहे है।
कर रहे है पंचपरिवर्तन,
अनादिकाल से दुख दग्ध हो कर रो रहे है ॥
"ध्यान द्वार कर्म रिपुओ का दहन,
रोक सकता चार गतियो का भ्रमण है।"
आज के सत्रास मय ससार मे,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है॥

(४)

जीव-हिसा, झूठ, चोरी का,
जहा देखो वही वातावरण है।
चारित्र का रथ गिर रहा है,
दिखता सुरक्षा का नही कोई यतन है॥
और फिर ये ग्रह परिग्रह का,
म ज की खोपडी पर चढ़ उसे ललकारता है।

इसलिये नर कर रहा सचय,
दीन-दुखियों को सदा दुत्कारता है ।।
"ये पाप है, छोड़े इन्हे,
बन गया इस भाति जो वातावरण है ।"
आज के सत्रास मय ससार मे,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ।।

(५)

बन रहे अणुबम, बड़े हम,
कह रहे है चीन, रसिया और अमरीका ।
विस्तारवादी नीति पर चलकर,
परस्पर कर रहे आलोचना, टीका ।।
आज का मानव, दुखी, पीडित, प्रकपित,
पी रहा है अश्रुजल खारा ।
बारूद का ईंधन, बनेगा एक दिन,
निश्चित लडाकू विश्व ये सारा ।।
"जियो खुद, और जीने दो,
अगर माना नही इसने कथन है ।"
आज के सत्रास मय ससार मे,
महावीर का सदेश ही ऊषा किरण है ।।"

(६)

कौन देखो जा रहा वह ?
दीन, नगा और भिखमंगा ।
धरा ही सेज है जिसकी,
औ' चादरा आकाश, की गगा ।।
इक नजर इस ओर भी डालो,
प्रासाद मे वैभव किलोलें कर रहा है ।

एक को मिलता नही खाने,
दूसरा खाने के कारण मर रहा है॥
"पाट सकता 'वीर' का आदर्श ही,
अर्थ के वैषम्य की खाई गहन है।"
आज के संत्रस मय ससार मे,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है॥

(७)

जन्म से कोई नही छोटा वडा,
कर्म ही नर श्रेष्ठता की है कसौटी।
एक जैसी आत्मा सव प्राणियो में,
हो किसी की देह लम्वी या कि छोटी॥
प्यार तुम बाटो सभी को,
वाहु फैला कर गले सवको लगाओ।
तुम किसी के प्राण मत घातो,
विश्व कल्याणी अहिंसा की सुखद लोरी सुनाओ॥
सर्वोदयी सिद्धान्त कहता,
आइये छोटे-वडे सवको शरण है।"
आज के सत्रास मय ससार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है॥

साम्यवाद और भ० महावीर

वर्द्धमान महावीर विराट् व्यक्तित्व के धनी थे। शान्ति और क्रान्ति के वे जननेता थे। यद्यपि राजसी वैभव उनके चरणो में लोटता था तो भी पीडित मानवता और जन जीवन से उन्हे सहानुभूति थी। समाज मे व्याप्त अर्थ जन्य विषमता और व्यक्ति उद्‌भूत काम-वासनाओ के नाग को अहिसा, सयम और तप के गारुडी सस्पर्श से कील कर वे समता, सद्भाव और स्नेह की धारा अजस्र रूप से प्रवाहित करना चाहते थे।

भ० महावीर का जीवन-दर्शन और तत्त्व-चितन इतना अधिक वैज्ञानिक और सर्वकालिक लगता है कि वह आज की हमारी जटिल समस्याओ के समाधान के लिए पर्याप्त है। आज की प्रमुख समस्या है सामाजिक अर्थजन्य विषमता को दूर करने की। इसके लिए मार्क्स ने वर्ग सघर्ष को हल के रूप मे रखा। शोषक और शोषित के आपसी अनवरत सघर्ष को अनिवार्य माना और जीवन की अन्तश्चेतना को नकार कर केवल भौतिक जडता को ही सृष्टि का आधार माना। इससे जो दुष्परिणाम हुआ वह हमारे सामने है। हमे गति तो मिल गई पर दिशा नही। शक्ति तो मिल गई पर विवेक नही। सामाजिक वैषम्य तो सतह पर कम हुआ प्रतिभासित हुआ पर व्यक्ति के मन की दूरी वढती गई। व्यक्ति के जीवन मे धार्मिकता रहित नैतिकता और आचारहीन विचारशीलता पनपने लगी। वर्तमान युग का यही सव से वड़ा अन्तर्विरोध और सास्कृतिक सकट है। भ० वीर की विचारधारा को ठीक से हृदयगम करने पर समाजवादी लक्ष्य

की प्राप्ति भी सभाव्य है और सास्कृतिक सकट से मुक्ति भी।

भ० महावीर ने अपने राजसी जीवन में और उसके चारो ओर जो अनत वैभव की रगीनी थी उससे यह अनुभव किया कि **आवश्यकता से अधिक संग्रह करना पाप है, सामाजिक अपराध है, आत्मवंचना है। आनन्द का रास्ता है अपनी इच्छाओं को कम करो। आवश्यकता से अधिक संग्रह न करो।** क्योकि हमारे पास जो अनावश्यक सग्रह है उसकी उपयोगिता कही और है। कही ऐसा प्राणिवर्ग है जो इस सामग्री से वचित है। अभाव से सतप्त है। अत· हमें उस अनावश्यक सामग्री को सग्रहीत कर रखना उचित नही। यह अपने प्रति ही नही, समाज के प्रति भी छलना है, धोखा है, अपराध है। अपरिग्रह दर्शन का विचार करो। उसका मूल मन्तव्य क्या है ? किसी के प्रति ममत्व, आसक्ति, मूर्च्छा न रखना। वस्तु के प्रति नही, व्यक्ति के प्रति भी नही। स्वय की देह के प्रति भी नही। **वस्तु के प्रति ममता न होने पर अनावश्यक सामग्री का तो संचय करेंगे ही नही। आवश्यक सामग्री भी दूसरो के लिए विसर्जित करेंगे।** आज के संकट काल मे जो सग्रह वृत्ति (hoarding) और तज्जन्य व्यावसायिक लाभ वृत्ति पनपी है—उससे मुक्त हम तव तक नही हो सकते जव तक अपरिग्रह दर्शन को आत्मसात् न कर लिया जावे। व्यक्ति के प्रति भी ममता न हो। इसका दार्शनिक पहलू केवल इतना है कि अपने 'स्वजनों' तक ही न सोचे। **परिवार के सदस्यों की ही रक्षा न करें वरन् उसका दृष्टिकोण समस्त मानवता के हित की ओर अग्रसर हो।** आज प्रशासन और अन्य क्षेत्रों में जो अनैतिकता व्यवहृत है उसके मूल मे अपनो के प्रति ममता ही विशेष रूप से प्रेरक कारण है। इसका अर्थ यह नही कि व्यक्ति पारिवारिक दायित्व से मुक्त हो जावे। इसका ध्वनित अर्थ केवल इतना ही है कि **व्यक्ति स्व के दायरे से निकल कर**

पर तक पहुंचे । स्वार्थ के संकीर्ण क्षेत्र को लांघ कर परार्थ के विस्तृत क्षेत्र को अपनाए । सतो के जीवन की यही साधना है । महापुरुष इसी जीवन पद्धति पर आगे बढते है । क्या महावीर क्या बुद्ध सभी इसी व्यामोह से परे हट कर आत्मजयी बने । जो जिस अनुपात मे इस अनासक्त भाव को आत्मसात् कर सकता है वह उसी अनुपात मे लोक-सम्मान का अधिकारी होता है । आज के तथा कथित नेताओ के व्यक्तित्व का विश्लेषण इस कसौटी पर किया जा सकता है ।

अपने प्रति भी ममता न हो यह अपरिग्रह दर्शन का चरम लक्ष्य है । श्रमण सस्कृति मे इसीलिए शारीरिक कष्ट सहन और सल्लेखना व्रत को इतना महत्व दिया गया है । वैदिक सस्कृति मे समाधि या सत मत में सहजावस्था । इस अवस्था मे व्यक्ति स्व से आगे बढ कर इतना सूक्ष्म हो जाता है कि वह कुछ भी नही रहता ।

सक्षेप में महावीर की इस विचारधारा का अर्थ यही है कि हम अपने जीवन को इतना सयमित और तपोमय बनावे कि **दूसरों का लेशमात्र भी शोषण न हो । साथ ही साथ हम अपने में इतनी शक्ति, पुरुषार्थ और क्षमता अर्जित कर लें कि हमारा शोषण भी दूसरे न कर सकें ।**

इस व्रत विधान को देख कर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भ० महावीर ने एक नवीन और आदर्श समाज रचना का मार्ग प्रस्तुत किया । जिसका आधार आध्यात्मिक जीवन जीना है । यह मार्क्स के समाजवादी लक्ष्य से भिन्न ईश्वर के एकाधिकार को समाप्त कर महावीर की विचार धारा ने उसे जनतंत्रीय पद्धति के अनुरूप विकेन्द्रित किया । जिस प्रकार राजनैतिक अधिकारो की प्राप्ति आज प्रत्येक नागरिक के लिए सुगम है उसी प्रकार ये आध्यात्मिक आधार भी उसे सहज ही प्राप्त हो गये । ★

तीर्थंकर भगवान महावीर और उनके सन्देश

ले० पं० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

अटल-सत्य—

"उत्पाद्व्यय ध्रौव्य युक्त सत्" के सिद्धान्तानुसार ससार परिवर्तनशील है, जिसमे विकास और विनाश का चक्र सदा-सर्वदा अबाधगति से घूमता रहता है। प्रकृति के कण-कण मे —जर्रे-जर्रे मे यह परिवर्तन व्याप्त है। कौन जानता है कि जो आज सुखो की सुरभित शय्या पर सानन्द सो रहे है, दूसरे ही क्षण उन्हे काँटो का राहगीर वनना पड़े। जगत को प्रकाशित करने वाले भुवन-भास्कर को उदयाचल से उदित होकर अस्ताचल की शरणलेनी ही पडती है। प्रकृति मे ऐसे विविध उदाहरण हमे निरन्तर दिखाई देते है, किन्तु यदि इन सारे परि-वर्तनो को दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो क्या वस्तुतः वस्तु का नाश होता है? तो निश्चय ही मानना पडेगा कि वस्तु अथवा द्रव्य का नाश कभी नही होता, अवश्य ही उसकी पर्यायो मे हेर-फेर होती रहती है।

जैन धर्म का सत्व—

अपेक्षाकृत धर्म विशेष का नाम जैन धर्म नही, प्रत्युत् वह तो सहज स्वरूप, सच्चिदानन्द, शुद्धात्मा की विराट् झाँकी है। यह वह तत्त्व है जिसकी की आज के युग मे नही, अतीत युग

अथवा भविष्य युग मे नही, परन्तु त्रिकाल मे निरन्तर आवश्यकता है ! अनिवार्यता है ।! अनिवार्यता इसलिए कि वर्तमान आत्माएँ जिस अवस्था मे है उनकी वह अवस्था--वह स्वरूप उनका अपना तो है नही, किसी दूसरे का है, जिसे कि अज्ञानता वश वे उसे अपना मानती है और निरन्तर निवृति मार्ग से दूर हटती हुई बन्धन मे फसती जाती है । इसी बन्धन से जीव मात्र को निकालने वाली जो भी वस्तु हो सकती है वही 'धर्म' है। व्यावहारिक नाम मे उसी धर्म को - कर्त्तव्य को "पतित पावन जैन धर्म' की सज्ञा है ।

आज उसकी अनिवार्यता—

हाॅ, तो अतीत अथवा भविष्यत् युग की समस्याओ को कुछ देर के लिए यदि गौण रखा जाय, केवल वर्तमान काल का ही चित्रपट आज अपनी आॅखो के सामने खीचा जाय तो कहने की आवश्यकता नही कि आज के युग मे उसका एक मात्र हल—अमोघ औषधि जो कुछ हो सकती है—"वह जैन धर्म ही है" ।

आज विश्व त्रस्त है—सतप्त है, भौतिकता अथवा जडवाद की क्षणिक विभूतियो मे प्राणी बिक रहा है—नष्ट हो रहा है । पारस्परिक व्यवहार मे वैमनस्य की दुर्गन्धि छाई हुई है। व्यक्ति से लेकर समाज और राष्ट्र तक एक दूसरे का वैभव नही देख सकता। दृष्टिकोण और मार्ग सर्वथा विपरीत हो गये है । अहम् और दम्भ के विष से भरी हुई बुराईयाॅ आज अच्छाईयो का जामा पहिने हुए एक-दूसरे को हड़पने की चेष्टा मे प्रवृत्त है । कही भी कोई भी मुक्ति का मार्ग नजर नही आता । आहे तथा क्रन्दन जीवन के परमाणु वन गये हैं। एक वाक्य मे—"आज वर्तमान निराश है—मार्ग प्रदर्शन की उसे प्रवल प्रतीक्षा है ।"

हैं। यही कारण है कि वेदो मे यत्र-तत्र ऋषभदेव जी का स्मरण किया गया है इसीलिए इन्हे यदि अन्य महापुरुषो के समान पौराणिक ही मान लिया जावे तो ऐतिहासिक पुरुष मानने में क्या आपत्ति हो सकती है ? इन ऋषभदेव जी से लेकर कितने ही लम्बे कालो के अन्तर से परम्परया भ० पार्श्वनाथ तक बाईस तीर्थङ्कर और हुए। इनमें से नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ तो विशुद्ध ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार कर लिए गए हैं। भ० पार्श्वनाथ के २७२ वर्ष बाद हमारे चरित नायक भ० महावीर स्वामी का आविर्भाव हुआ। इसलिए जिन परिस्थितियो मे उनका जन्म हुआ उसको प्रकाश मे लाने के पहिले हमे भ० पार्श्वनाथ के बाद के शासन काल की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

भ० पार्श्वनाथ के बाद की परिस्थिति—

भ० पार्श्वनाथ स्वामी के मुक्ति लाभ के २७२ वर्ष बाद और ईस्वी सन् से ६०९ वर्ष पूर्व अर्थात् आज से २४८३ साल पहिले बिहार प्रान्त के कुण्डग्राम (वर्तमान बसाड) नामक नगर मे राजा सिद्धार्थ तथा महारानी त्रिशला के गर्भ से भ० महावीर स्वामी का जन्म हुआ। राजा सिद्धार्थ एक न्यायप्रिय शासक थे और उनका राज्य धन धान्य से सम्पन्न था। वे इक्ष्वाकु कुल भूषण ज्ञातृवशीय क्षत्रिय राजा थे। महारानी त्रिशला उस युग के भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति राजा चेटक की वरिष्ठा (बडी) सुपुत्री थी। वैशाली उनकी राजधानी थी।

इतिहास बतलाता है कि उस काल मे भी आज के समान भारतीय गण तन्त्रात्मक राज्य छोटे-छोटे राज्य सघो मे विभक्त था। उन्ही राज्य सघो मे से वज्जियन राज्य सघ एक विशाल सघ था और राजा चेटक वही से अपना शासन सचालन करते

थे। त्रिशला के अतिरिक्त राजा चेटक की छह सुपुत्रिया और थी। सब से छोटी पुत्री चेलना इतिहास प्रसिद्ध बिम्बसार सम्राट् श्रेणिक की महारानी थी, राजा सिद्धार्थ सम्राट् श्रेणिक एवं राष्ट्रपति चेटक क्षत्रिय होकर भी जैनधर्म के सच्चे अनुयायी थे। पारस्परिक सबधो के कारण ये खूब हिलमिल कर रहते थे। फलस्वरूप तत्कालीन भारत मे इनका कोई भी शत्रु नही था और जो थे भी वे उत्तम व्यवहारो से वशीभूत कर लिए गए थे। साम्राज्यवाद के ये कट्टर विरोधी थे।

तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक स्थिति—

राजनैतिक स्थिति तो उस समय ऐसी थी जिसकी कि आलोचना किसी भी प्रकार नही की जा सकती। कारण कि राजकीय पुरुष जैनधर्म के निर्ग्रन्थ आदर्श पथ चिह्नो पर चलते हुए शासन सूत्र चला रहे थे। हमारे चरित्र नायक भ० महावीर स्वामी के पिता सम्राट् सिद्धार्थ स्वय भ० पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित धर्म के कट्टर अनुयायी थे। उस समय भारत से दुर्भिक्ष विदा हो चुका था, इसलिए प्रजा राज्य बाधाओ से उन्मुक्त थी। टैक्स उतना ही था, जिसको प्रजा नही के बराबर अनुभव करती थी। किन्ही स्थितियो का यदि अधिक से अधिक मार्मिक तथा रोमाञ्चक वर्णन किया जा सकता है तो वे उस समय की सामाजिक तथा पाखण्डपूर्ण धार्मिक परिस्थितिया ही हो सकती हैं। धार्मिक रीति-रिवाज अपने पाखडमयी क्रियाकाण्डो के कारण बेहद बिगड चुके थे। धर्म के नाम पर जहा एक ओर हिंसा की खुलकर होलियाँ खेली जा रही थी, वहाँ दूसरी ओर अत्याचार-अनाचार-असत्य-स्वार्थ-अधर्माचार आदि के कारण नैतिक गुणो पर भी पाला पड़ता जाता था। धर्म तत्त्व के प्रत्येक अग प्रत्यग मे साम्प्रदायिकता का घातक हलाहल भरा हुआ था। उस समय के स्वार्थी-विलासी-पाखडी एव मासाहारी धर्म गुरुओ ने—धर्म

देखिये न, जहाँ भी थोडी सी आशा की झलक दिखाई देती है, उसी ओर उसकी टकटकी लग जाती है। कितना पंगु-पराधीन है आज का विश्व!

क्या कारण है कि अधिकाँश विश्व की आँखे आज भारत पर लगी हुई है? अशान्त विश्व आज क्यो भारत से शान्ति की आशा कर रहा है? इसलिए नही कि एक ही व्यक्ति की आवाज ने अपने राष्ट्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। अहिसा से! शक्ति से!! सत्य से!!! और जिस मृतात्मा का सन्देश आज विश्व के मस्तिष्क मे अपना घर कर रहा है उस युग पुरुप को अहिसा और शान्ति का वरदान देने वाली आखिर यह प्रेरणा आई कहाँ से? किस अतीत के एव कौन से बीजाङ्कुर इस भारत की पावन भूमि पर डले रहे जिन्हे आज हम फलीभूत होते देख रहे है; तो कहना नहीं होगा कि किसी युग नायक ने ही युग नायक को जन्म दिया होगा और फिर वह युग नायक भी कितना महान् नही होगा कि जिसने सारे युग को वदलने के साथ ही अपने को वदलकर परमात्म-पद की प्राप्ति की। स्व कल्याण और पर कल्याण की प्रतीक वह विशुद्ध महान् आत्मा हमारे लिए त्रिकाल वन्दनीय है सस्मरणीय है। अतीत युग का कल्याण यदि उनके उस पावन पौद्गलिक शरीर से हुआ तो वर्तमान का कल्याण भी उनके उन्ही हितकारी सन्देशो से होगा—जो आज हमारे पास अतुल निधि के रूप मे—धरोहर के रूप मे विद्यमान है और जिनके जीते-जागते आदर्श आज हमें देखने को मिलते है।

जैनधर्म की प्राचीनता—

आज के इतिहास मे नवीन-नवीन खोजो के कारण यह तथ्य निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि जैनधर्म अपेक्षा-

कृत सभी धर्मों से प्राचीन है। अनेको प्रमाणो मे से यहाँ पर सुप्रसिद्ध व्यक्तियो के एक दो प्रमाण प्रस्तुत करना श्रेयस्कर होगा।

'विश्व संस्कृति में जैनधर्म का स्थान' शीर्षक लेख के विद्वान् लेखक श्रीमान् डा० कालीदास नाग एम० ए० डी० लिट लिखते है कि ...."जैनधर्म और जैन संस्कृति के विकास के पीछे अगणित शताब्दियो का इतिहास छिपा पडा है। श्रीऋषभदेव से लेकर वाईसवे तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ तक महान् तीर्थङ्करों की पौराणिक परम्परा यदि छोड भी दी जाय तो भी हमें अनुमानत. ईस्वी सन् ८७२ वर्ष पूर्व का ऐतिहासिक काल बतलाता है कि उस समय २३वे तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ स्वामी का जन्म हुआ। जिन्होने ३० वर्ष में घर-गृहस्थी, राजपाट त्याग दिया और जिनको लगभग ईस्वी सन् से ७७२ वर्ष पूर्व बिहार प्रान्तस्थ पार्श्वनाथ पहाड पर मोक्ष प्राप्त हुआ। भ० पार्श्वनाथ निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के महान् प्रचारक थे। उन्होने समूचे ससार को पतित पावन अहिंसामयी जैन धर्म का उपदेश दिया। उस समय यह धर्म प्राणिमात्र का धर्म था।"

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् प्रोफेसर श्री रामप्रशाद जी चन्दा के ही शब्दो मे · "वास्तव में जैनधर्म अनादि निधन धर्म है, परन्तु इस अवसर्पिणी काल के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी हुए हैं। मोहन-जोदडो नामक पुरातन स्थान मे एक पाच हजार वर्ष प्राचीन ऐसा शहर मिला है, जहाँ के सिक्को पर भ० ऋषभदेव की मूर्तियो की छाप है तथा नीचे "जिनेश्वराय नम·" ये शब्द अङ्कित है।"

ऋषभदेव किसी भी प्रकार ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी इतिहास मे उनको स्थान न दिया जाना यह सिद्ध करता है कि वे वैदिक महापुरुषो से भी एक प्राचीनतम महापुरुष हो चुके

विक्रेताओ ने जिस प्रकार निरपराध मूक पशुओ को जबरदस्ती यज्ञो की होलियो में झोका है, उसकी करुण कहानी सुनने वालों के पास पत्थर का दिल चाहिये। धर्म तव देवता नही, दानव था!! वह विक रहा था—स्वरचित विरचित मन्त्रो की वोलियों के आधार पर!

"यज्ञो वधो न वध"
"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति
यज्ञार्थ पशव· सृष्टा स्वयमेव स्वयभुवा
यज्ञे मृता: स्वर्ग यान्ति

इत्यादि उसके स्पष्ट उदाहरण हैं—नमूने है।

अन्ध श्रद्धालुओ या भोलेभालो को स्वर्ग और मोक्ष के टिकट बडे ही सस्ते मूल्यो पर बिक रहे थे। तात्पर्य यह है कि किन्ही स्वार्थी तत्त्वो के कारण धर्म तथा यज्ञादि क्रियाकाण्डो के नाम पर भारतीय वायुमण्डल हिसा की दुर्गन्धि से भर गया था।

सामाजिक परिस्थिति भी इतनी आतङ्कपूर्ण और पेचीदा हो गई थी कि उसके परिवर्तित होने के आसार ही नजर नही आते थे। धार्मिक अनुष्ठान तो सोलहो आने पापी—पडो की मुट्ठियो मे बध हो गये थे। मनुष्य और देवो का सीधा सबध कराने वाले ये पुरोहित दलाल अपना स्वार्थ साधते तो कुछ आपत्ति नही भी हो सकती थी, परन्तु अपना अनिवार्य अस्तित्त्व प्रकट करते हुए जव यज्ञो में जीवित प्राणियो को होम देना इनके वाएँ हाथ का खेल हो गया तब दूसरी ओर इनका जात्याभिमान भी खूब फलने फूलने लगा। फलस्वरूप ऊँच-नीच की भावनाओ पर जातिवाद का भूत खड़ा कर दिया गया। शूद्रादि इतर जातियो पर अत्याचार और अनाचार के जो पहाड टूट सकते थे टूटे और वे बेवस भी उनके नीचे चकनाचूर होने लगे। नारी का व्यक्तित्व निराश्रय होकर चीखे मार रहा था। एक मात्र

भोग की वस्तु ही उसको करार दिया था परन्तु दूसरी ओर भी यज्ञो मे तिलमिलाते हुए प्राणियो की चीखे, शूद्रो और अवलाओ का आर्तनाद तथा दलितो की एक २ आहे साकार क्रान्ति वनती जा रही थी । तात्पर्य यह कि कृत्रिमता के वितान मे वास्तविकता छिप गई थी परन्तु प्रकृति के नियम के अनुसार इन समस्त अत्याचारो-पापाचारो के विरुद्ध मोर्चा लेने वाला एक ऐसा परोक्ष वर्ग नैतिक आधार पर तैयार हो रहा था कि जिसके जवरदस्त प्रहारो ने उस अशान्त वातावरण को शताब्दियो पीछे धकेल दिया ।

आज का युग जो कि अहिंसा और शान्ति की सत्यता पर विश्वास करने लगा है—सब उसी वर्ग का—उसी क्रान्ति का सुखद परिणाम है । उस वर्ग मे विश्व के कोने २ से उठने वाले महापुरुष योरोप के पाइथोगौरिस, एशिया के कन्फ्यूसस लाओत्स आदि उस वर्ग मे सम्मिलित होकर जहाँ क्रान्ति के धीमे २ नारे लगा रहे थे वहाँ भारत मे भ० महावीर की अहिंसा का एक बुलन्द नारा उन पाखडी पडो के हृदयो मे सहस्रो भालो सा छिदता था । महात्मा बुद्ध भी यद्यपि इस क्रान्ति के नेता कहे जा सकते हैं किन्तु तवारीख के पन्ने बतलाते है कि वे भगवान महावीर की तुलना मे गौण थे ।

वीरावतरण

प्रकृति के निश्चित नियम के अनुसार जब-जब अधर्म का दुष्प्रचार और धर्म का ह्रास होता है, "जीवो जीवस्य भक्षण" का अहितकारी सिद्धान्त जोर पकडता है । शान्ति के स्थान को अशान्ति और परोपकार के स्थान को स्वार्थ हथिया लेता है, उस समय प्राणियो के पिछले किन्ही शुभ कर्मोदय से कोई न कोई महान् शक्ति इस मर्त्यलोक मे अशान्त वातावरण को शान्त

करने के लिए अवतरित होती है। कहा भी है—

यदा यदा हि लोकेस्मिन्-पापाचार परम्परा।
तदा तदा हि वीरान्त, प्रदुखा ता सम्भव.॥

अर्थात्—जव-जव देश मे पापाचार वढ़ा तव-तव ऋपभदेव से लेकर वीर प्रभु तक धर्म तीर्थ स्थापकों का जन्म हुआ।

हाँ तो, भारत के उस धार्मिक अशान्त वातावरण के समय कुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशलादेवी की पावन कूँख से चैत्र सुदी त्रयोदशी के दिन शुभ मुहूर्त मे उस वीर महापुरुष ने जन्म लिया जिसने ससार को शान्तिमय सच्चे धर्म का उपदेश दिया, यही महान् उपदेशक जैनियो के ही नही वरन् अखिल विश्व के चौवीसवे तीर्थङ्कर अहिंसा के अवतार भगवान महावीर के नाम से दुनिया मे प्रसिद्ध हुए।

वीरावतरण के समय

जिस समय वीरावतरण हुआ उस वक्त समस्त संसार मे हर्ष छा गया, न केवल मनुष्यो मे वल्कि तमाम सुर-असुर, किन्नर, आदि गन्धर्वो ने मिलकर हर्ष प्रकट किया। स्वय परिवार सहित इन्द्रो ने आकर भगवान का जन्मोत्सव मनाया। नगरवासियो ने भी खूव खुशियाँ मनाईं। प्रकृति ने भी उस समय अनूठी शोभा धारण की थी। आकाश निर्मल हो गया था और चारो ओर वन मे वसन्त की अपूर्व वहार थी। सुगन्धित मन्द पवन वहने लगा। सूर्योदय होते ही जैसे दिवाकीर्ति (उलूक) की अपशकुन वोली वद हो जाती है, ठीक उसी तरह 'वीर-रवि' के उदय होते ही हिंसा का प्रचार करने वाले पाखण्डी पुरोहितो की तूती वद हो गई। धर्म के नाम पर वहने वाली स्वार्थ की सरिता का प्रवल प्रवाह रुक गया। तीनो लोको मे सुख और

शान्ति फैल गई। यहाँ तक कि नारकीय जीवों ने भी इस सुअवसर पर अन्तर्मुहूर्त के लिए सुख शान्ति का अनुभव किया।

राजा सिद्धार्थ ने भी पुण्यात्मा पुत्र की प्राप्ति के उपलक्ष्य मे समूचे राज्य मे "किमिच्छक" दान दिया और उस दिन राज्य मे जितने बच्चों ने जन्म लिया उनका पालन-पोषण राज्य घराने से ही होगा—इस प्रकार की घोषणा करके राजा ने प्रजा वत्सलता का अपूर्व परिचय जनता के लिए दिया। सिद्धार्थ ने होनहार बालक का नाम वर्द्धमान रक्खा।

वर्द्धमान का बाल्यकाल

जन साधारण की अपेक्षा वीर-प्रभु मे कई विशेषताएँ थी। उनका शरीर कामदेव के समान सुन्दर, कस्तूरी की तरह अत्यत सुगन्धित, मल-मूत्र की बाधा से रहित, दूध के समान सफेद खून होने की वजह से उनके कान्तिवान शरीर से पसीना कभी नही निकलता था।

द्वितीया के चन्द्रमा के समान राजकुमार वर्द्धमान बढने लगे, तब कभी घुटनो के बल चलकर, कभी खड़े होकर गिरना और गिरकर फिर खड़े होकर दौडने लगना और कभी अपने साथियो के साथ खेलना और कभी खेलते-खेलते माता की गोदी मे जाकर बैठ जाना तथा तोतली भाषा मे "भूख लगी है", यह कहकर उनकी छाती से लिपट जाना आदि बालकोचित क्रीडाओ द्वारा भगवान माता-पिता को सदा हँसाते ही रहते थे।

राजकुमार वर्द्धमान को वीर की उपाधि

यो तो वर्द्धमान सयाने होने पर अपने साथियो के साथ रोज ही खेल-खेलते थे, पर एक दिन किसी बगीचे मे "कलामलाडी" ("आमली क्रीडा"—"अडाडा वरी") खेल-खेलने सभी सहयोगी

नही लेनी पड़ी—वे तो स्वय बुद्ध थे ।

राजकुमार वर्द्धमान को सन्मति की उपाधि

एक दिन राजकुमार वर्द्धमान अपने साथियों समेत प्रकृति की शोभा निरखने के लिए वन-विहार को गए और एक शिला खड पर बैठकर किसी तात्विक विषय पर चर्चा करने लगे। उसी समय दो ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आये और वर्द्धमान को देखते ही उनकी बहुत दिनों की कई शंकाओ का समाधान हो गया। उसी समय मुनिद्वय ने उन्हे सन्मति के नाम से सबोधन कर नमस्कार किया था।

वर्द्धमान को युवराज पद की प्राप्ति

संसार के परदे पर कोई विद्या-विज्ञान और भाषाएँ ऐसी न बची थी जिनके कि राजकुमार पूर्ण जानकार न थे। तत्त्वज्ञान का जितना अधिक मंथन उन्होने किया था उतनी ही राजनीति और समाजनीति के समझने की भी कोशिश की थी। उनका विश्वास था कि जिस देश मे धर्म समाज और राजनीति की मधुर धाराएँ सम-समान रूप से प्रवाहित नही होती। वहाँ का शासन अधिक उन्नत, समृद्ध एव सुख शान्ति से सुसज्जित नही रह सकता। राजकीय सुख शान्ति का श्रेय राजनीति को है। जातीय धन-वैभव का श्रेय समाजनीति को है और आत्मा के विकास का सारा श्रेय धर्म-नीति को है।

राजा सिद्धार्थ ने अपने पुत्र को राजनीति मे अधिक कुशल जानकर उन्हे युवराज बना दिया। राज्य-शासन की बागडोर सभालते ही महावीरश्री ने अपनी कार्य कुशलता का परिचय इतने अच्छे रूप मे दिया कि उनकी सानी का राजनीतिज्ञ इतिहास के पृष्ठो मे ढूढने पर भी नही मिलता।

आजन्म ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा

कुमार वय के व्यतीत होने पर बडी उमग से अगणित रमणीक भावनाओ को लेकर उस यौवन वय ने युवराज महावीर का सौ-सौ बार स्वागत किया जिसकी रम्य गोदी में बैठकर मनुष्य उन्मत्त हो उठता है, विषय वासनाएँ मानवोचित कर्त्तव्य से उसे दूर फेक देती है। काम का कठोर प्रहार उसे रमणियो का दास बना देता है, किन्तु विश्व विजेता वर्द्धमान को वह यौवन रच-मात्र भी विचलित न कर सका। ससारी प्राणियो के बन्धन मोचन करने वाले वर्द्धमान के दयार्द्र दिल को यौवन का प्रबल तूफान तनिक भी न हिला सका। जनता चकित थी कि युवराज मे यौवन और ब्रह्मचर्य का यह कैसा विषम सम्मेलन है किन्तु यह कौन जानता था ? कि क्षत्रिय युवराज ने नवयुग प्रवर्तन के लिए मन ही मन आजीवन ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा से अपने को आबद्ध कर लिया है।

विचार-विमर्श

राज्य-शासन के कार्यों मे महावीरश्री की न्यायप्रियता और कार्य क्षमता देखकर राजा सिद्धार्थ फूले न समाते थे। वे अपने पुत्र को कुल का भूषण और और न्याय का मूर्तिमान देवता समझते थे। सोचते थे महावीर अपना व अपने वशजो का नाम विश्व मे रोशन करेगे।

एक दिन राजा सिद्धार्थ ने अपनी भार्या त्रिशला देवी से कहा कि—"अपना शरीर अब बहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो गया है, ससार के माया-मोह और वर्द्धमान के वात्सल्य मे पडकर दिगम्बरी दीक्षा लेने से अभी तक वचित रहे जो कि अपने लौकिक हित और लोक मर्यादा की रक्षा और स्थिति की दृष्टि

वालक गये और पेड पर चढकर खेल खेलना शुरू कर दिया। उधर अचानक एक देव वर्द्धमान के वल की परीक्षा हेतु विकराल सर्प का रूप कारण करके आया और पेड की पीड से लिपट गया। भाग्य से उस समय वर्द्धमान ही की वृक्ष पर चढने की वारी थी। भागते हुए वर्द्धमान आये और वृक्ष पर चढ़ने ही वाले थे कि इतने मे ऊपर से किसी वालक ने उन्हे पेड़ पर चढने से रोका और यह कहता हुआ कि "पेड से काला नाग लिपटा है, "वही रहो—पास न आओ" कहकर नीचे कूद पडा; दूसरे साथी न कूद सके, और भय के मारे रोने-चिल्लाने लगे। राजकुमार वर्द्धमान वेधडक पेड के पास तव तक पहुँच गये और सर्प को पकडकर उससे खिलवाड़ करने लगे। जव सर्प को वहुत दूर छोड आये तव कही वालक पेड से नीचे उतरे और राजकुमार की निर्भयता-निडरता और शूरवीरता से प्रसन्न होकर उनका "वीर" नाम रख दिया।

राजकुमार वर्द्धमान को महावीर की उपाधि

एक दिन एक हाथी पागल होकर नगर मे उपद्रव मचा रहा था। प्रजा बेचैन थी, महावत हैरान थे और राजा सिद्धार्थ परेशान। वडी-वडी तरकीवे हाथी को पकडने की सोची गई, पर काम एक भी न आई जव यह बात वीर वर्द्धमान को विदित हुई तो घटनास्थल पर पहुंच कर ज्यो ही उस मदोन्मत्त पागल हाथी को पुचकारा और हाथ फेरा तो वह शान्त हो गया। वीर वर्द्धमान नद्यावर्त महल की ओर बढे तो हाथी भी उनके पीछे पीछे चलने लगा, यह देख सभी आश्चर्य चकित हो गये और तव से नगर के लोग उन्हे 'महावीर' कहने लगे।

वर्द्धमान का विद्याध्ययन समारम्भ

वर्द्धमान की आयु का सातवाँ वर्ष समाप्त हो चुकने पर

माता-पिता ने अपने पुत्र को पढ़ने के लिए विद्यालय मे भेजने का विचार किया। एक दिन राजा ने पुरोहित को बुलाकर विद्याध्यन का शुभ मुहूर्त निकलवाया और यथा समय तैयारियाँ प्रारंभ करदी।

देखते-देखते नद्यावर्त महल के सामने विशाल मण्डप बनकर तैयार हो गया। निश्चित समय से पूर्व ही मण्डप लोगो से खचाखच भर गया। इस अवसर पर कई राजा-महाराजा भी आये थे। हवन क्रिया के उपरान्त उपाध्याय ने कहा—बोलो

"णमो अरिहंताणं"

वर्द्धमान ने पूरा अनादि निधन मन्त्र बोल दिया। उपाध्याय को आश्चर्य हुआ, तब उन्होने राजकुमार की पट्टिका पर 'अ, आ' लिखकर उनसे इन्ही दो शब्दो को लिखने के लिए कहा—वर्द्ध-मान ने पट्टिका पर समस्त स्वर और व्यञ्जन वर्ण लिख दिये। उपाध्याय को तब बहुत आश्चर्य हुआ कि इन्होने विना सीखे यह सब कैसे लिख दिये। तब उन्होने एक कठिन सवाल लिख-कर दिया, राजकुमार ने उसे भी हलकर दिया। एक अधूरा श्लोक बोला तो उसकी भी पूर्ति कर दी। अब तो सभी को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि बात क्या है? उस समय उपाध्याय के कुछ भी समझ मे नही आया।

पर वास्तविक बात यह थी कि आग काड़ी मे कही बाहर से नही लानी पड़ती, वह तो उसके अन्दर ही रहती है। पूर्व जन्म के सुसस्कारो के प्रभाव से ही भ० वर्द्धमान-महावीर मति, श्रुति, और अवधि ज्ञान सहित अवतरित हुए थे, इसलिए यहाँ तो उन्हे आग काडी को जैसे खीचने ही भर की देर होती है उसी भाँति केवल उन्हे याद दिलाने मात्र ही की आवश्यकता थी। इसलिए अन्य बालको की तरह इन्हे किसी गुरु से शक्षा

से वहुत वुरा हुआ, इसलिए अव हमें वर्द्धमान का विवाह करके शीघ्र ही राज-पाट से मोह हटा लेना चाहिए। स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए त्रिशलादेवी ने पतिदेव के माङ्गलिक प्रस्ताव का हृदय से समर्थन किया और एकलौते पुत्र के विवाह की वात सुनकर अत्यत आनन्दित हुईं।

आत्म-साधना की बुनियाद

नित्य प्रति राजनैतिक, सामाजिक विसवादों को सुलझाते-हुए वर्द्धमान की विशाल आत्मा विश्व-हित के लिए तडफ उठी, धर्म की मखौल उड़ाने वाले पाखंडी पुरोहितो के अत्या-चारो से दिल तिलमिला उठा। विश्व-हित की सद्भावनाएं हृदय मे हिलोरे मारने लगी और सुषुप्त क्षत्रियत्व जाग उठा।

वर्द्धमान ने विचार किया तो विदित हुआ कि दुनियाँ की खूंरेजी का मूल कारण हिसा और अहकार है; ये दोनो अत्या-चारों की जडे हैं, इनका दमन किये विना किसी भी हस्ती को दुनिया मे शान्ति कायम करना नामुमकिन है। तोप और तलवार जिस्म के भले ही टुकड़े-टुकड़े करदें पर वे दिल में वहने वाले उत्तम विचारो को नेस्तनाबूद नही कर सकते। राज्य-दण्ड के डर से विद्रोही का सर भले ही झुक जाये और चाहे तो वह क्षमा भी माँग ले, पर उसके विद्रोही विचार नही बदल सकते। आग की जलती हुई ज्वाला मे मनुष्य का शरीर भस्म हो सकता है, पर उसकी खोटी प्रवृत्तियाँ तो इससे और भी सतप्त हो जायेंगी। इसलिये अपने सदुद्देश्य की पूर्ति के लिए वर्द्धमान को कुल परम्परा से प्राप्त राज्य-तंत्र, विशाल शस्त्रागार, और अजेय सेनानी, विशाल भवन व्यर्थ से जान पड़ने लगे। दुनिया को रिझाने वाली भोगोपभोग की विविध आकर्षक वस्तुएँ उन्हे नीरस ज्ञात होने लगी। राजसी सुखों के वीच वर्द्धमान को रहते

हुए तीस वर्ष गुजर गए, पर स्फटिक के समान स्वच्छ सरल हृदय मे लालसा की कालिमा जरा भी न लग पाई थी, यह सब ब्रह्मचर्य व्रत का अनुपम प्रभाव था।

वर्द्धमान की वीरता (विवाह से इन्कार)

एक दिन बड़ी-बडी उमगो को हृदय मे छिपाये महारानी त्रिशला पुत्र के पास पहुँची और युवराज वर्द्धमान कुछ कहे कि उसके पूर्व ही उन्होने विवाह का सुन्दर प्रकरण उनके समक्ष रख दिया, पहले तो महावीर मुस्कराये, बाद मे उन्होने सूखी हँसी-हँसकर अपना मस्तक झुका लिया, पर जब वही प्रश्न उनके समक्ष फिर दुहराया गया तो उन्होने अपनी माता से विनम्र शब्दो मे विनय की—

"कि इस ससार मे सर्वत्र आकुलता ही आकुलता व्याप्त है। मिथ्यात्व और काल्पनिकता की रेतीली दीवारो पर यह ससार टिका हुआ है, अन्याय और अत्याचार, विषमताएँ और भ्रष्टाचार अपना नगा नाच दिखा रहे हैं। यह सब वातावरण देखकर मेरी अन्तरात्मा इन सब दृश्यो से विरक्ति चाहती है। आत्मनिष्ठा के सत्य को पहचान कर ही मैं अब उसकी साधना करना चाहता हूँ। दुनिया के दलदल मे फँसकर यह साधना नितान्त असभव, है अत. हे माताजी मुझे विवाह करने से सर्वथा इन्कार है।" इस प्रकार अपने हृदय मे धर्म प्रचार का जोश लाकर तथा सयम के द्वारा इच्छाओ पर अकुश लगाकर वैभव से मुख मोडकर सबंधियो से नाता तोडकर उन्होने वारह भावनाओ का चिंतवन किया। जिनका कि अनुमोदन देवो ने भी आकर किया।

वैराग्य और दीक्षा

मायावी दुरंगी दुनिया से चित्त को हटाकर वर्द्धमान ने राज-

पाट और घर-बार को छोड दिया और ज्ञातृवनखड नाम के वन मे जाकर मगसिर कृष्णा दशमी के दिन स्वाभाविक नग्न दिगम्बर भेष को ग्रहण कर सिद्ध परमात्मा को साष्टाङ्ग नमस्कार करने के वाद आत्मस्वरूप मे लीन हो गये। ध्यान लगाते ही योगो की प्रवृत्तियो को रोकने से उसी समय दूसरो के मन की बात को जान लेने वाला चौथा मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया।

वर्द्धमान को अतिवीर की उपाधि

जिस समय विहार करते हुए महावीर स्वामी उज्जैन नगरी की ओर आये, उस समय ११वे रुद्र ने वड़ा भारी उपसर्ग किया था, पर वे अपने ध्यान से जरा भी विचलित नही हुए। उनकी दृढता-त्याग और तपस्या को देखकर महादेव (रुद्र) का मान विगलित हो गया और महावीरश्री के समक्ष आकर नमस्कार करने के बाद उसने उन्हे अतिवीर कहकर प्रार्थना की।

महावीर स्वामी के विरोधी दुष्ट पाखडियों ने समय-समय पर उन पर भारी अत्याचार किये लेकिन उन्होने उन अत्याचारो की जरा भी रोक-थाम नही की और वे एक वीर सेनानी की तरह अन्त तक वार पर वार सहते ही गये। महावीरश्री ने अपना दयालु गुण नही छोडा पर विरोधियो को अपने विचारों मे परिवर्तन कर लेना पड़ा, अनेक असह्य उपसर्गों को सहन करते हुए महावीरश्री ने इसी तरह वारह वर्ष विता दिये।

महावीरश्री की जीवन मुक्त-अवस्था

अनेक निर्जन वीहड वनो—भूधर कन्दराओं-वृक्ष के खोखलों मे सर्वोच्च आध्यात्मिक पद प्राप्ति के लिए उग्र तप तपते हुए महावीर जब ऋजुकूला नदी के तट पर अवस्थित जृम्भक ग्राम

के उद्यान में पधारे तव दुद्धर तपश्चरण द्वारा घातिया कर्मों को नाश कर आपने वैसाख सुदी दशमी के दिन केवलज्ञान प्राप्त कर लिया अर्थात् वे जीवन्मुक्त हो गये। उनका अपूर्णज्ञान पूर्ण ज्ञान के रूप मे परिणत हो गया। इस प्रकार भगवान तीर्थङ्कर वर्द्धमान स्वामी तव सर्वज्ञाता-सर्वदृष्टा वीतराग भगवान महावीर हो गये।

महावीरश्री की उपदेश-सभा

भ० महावीर स्वामी को केंवलज्ञान के प्राप्त होते ही उसी समय इन्द्रो ने आकर इस महान पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उपलक्ष्य मे विशाल विराट् उपदेश सभा का निर्माण किया।

जिस उपदेश सभा का नाम समवशरण था जिसकी विशेषता यह थी कि उसके द्वार विश्व के प्राणिमात्र के लिए खुले हुए थे, आने-जाने की रोक-थाम किसी को भी न थी, न किसी प्रकार का टिकट ही श्रोताओ को खरीदना पडता था।

इन्द्र की परेशानी और बुद्धिमानी

बारह कोस की विशाल-विराट् उपदेश सभा सभी श्रेणी के प्राणियो से भर चुकने पर भी जव भगवान महावीर का उपदेश प्रारम्भ न हुआ तो सभा स्थित हर वर्ग के प्राणियो की हैरानी-परेशानी से सभा का व्यवस्थापक इन्द्र भी दुविधा मे पड गया। बिना पट्टशिष्य (गणधर) के तीर्थङ्कर भगवान की वाणी नही खिरती, इस बात को अवधिज्ञान से जानकर यह भी ज्ञात कर लिया कि अनेक शास्त्रो और पुराणो का वेत्ता वेदपाठी इन्द्रभूति गौतम ऋषि के आये विना भगवान का उपदेश प्रारम्भ नही हो सकता। तव वह वृद्ध विप्र का रूप धारण कर इन्द्रभूति गौतम के समीप जा पहुँचा और जैन धर्म का एक साधारण-सा

श्लोक अर्थ जानने की इच्छा से उसके सामने रख दिया। वहुत प्रयत्न के पश्चात् जव उससे श्लोक का अर्थ नही निकला तव उसका अर्थ जानने की जिज्ञासा से इन्द्रभूति गौतम वृद्ध विप्र के पीछे हो लिया। जिस समय वृद्ध व्राह्मण के भेप मे इन्द्र समवशरण के समीप पहुँचा और पतित पावन जैन-धर्म से सदा विद्वेष करने वाले इन्द्रभूति गौतम ने महा मगलमय मानस्तभ देखा तो उसका मान चूर-चूर हो गया, वदला लेने की दुर्भावना भी गुम हो गई और उसके कुभावो मे परिवर्तन होने लगा जव वह भगवान महावीर स्वामी के अत्यन्त समीप पहुँचा तो उनके शरीर से निकलने वाली पुण्याभा को देखकर उसका सिर महावीरश्री के चरणों मे स्वयमेव झुक गया। उसी समय महावीरश्री का उपदेश प्रारम्भ हुआ। अर्थात् वे विश्व कल्याण के विस्तीर्ण क्षेत्र मे उतरे। वीर प्रभु की दिव्यवाणी इन्ही गौतम गणधर द्वारा ग्रथित एवं व्याख्यायित हुई।

महावीरश्री का पहला कदम (भाषा में क्रान्ति)

महावीरश्री ने अपने उपदेश 'अर्द्धमागधी' भाषा मे जो कि उस समय की राष्ट्र भाषा थी—दिये। भापा के सम्वन्ध मे यह जवरदस्त क्रान्ति थी। उस समय के भारत मे संस्कृत की दृढ किलेवन्दी को मिटाना कोई आसान कार्य न था। सस्कृत के वे विद्वान पडित-पुरोहित कि जिनके हाथो मे उस वक्त वेदो की सत्ता मौजूद थी—राष्ट्रभापा वोलना वडा भारी पाप समझते थे। उस समय प्राकृत-भाषा जन-साधारण की भाषा से सस्कृत के पडितों को कितना द्वेष था, यह इसीसे जाना जा सकता है कि वे नाटको में प्राकृत भापा मात्र नीच पात्रो से वुलवाते थे परन्तु क्रान्ति के अग्रदूत महावीरश्री ने इसका क्रियात्मक विरोध किया—उन्होने वताया कि भापा अपने मानसिक विचारो को

व्यक्त करने का एक साधन है। इसलिए किसी एक भाषा को आध्यात्मिक वाणी मान लेना निरी मूर्खता है। देश की सभी भाषाएँ प्रत्येक दृश्य-अदृश्य समस्या का स्वतत्र हल करने की योग्यता रखती हैं। भाषा को उथली और गभीर बनाना उसके जानने वालो पर निर्भर है। जो भाषा जन-साधारण के मन को नही छूती उससे जन-साधारण की कामना करना निरर्थक है। उस समय सस्कृत ही एक ऐसी भाषा थी जो जनता के दिलो को न छूती थी। इसलिए इस भाषा क्रान्ति से जनता में नव चेतना लहरा उठी और राष्ट्र की भाषा मे महावीरश्री का उपदेश मिलने की वजह से आध्यात्मिक प्रश्नो को समझने लगी। इसके बाद भारत की वसुन्धरा पर जितने भी सत पुरुष हुए उन सब ने लोक भाषा को ही अपनाया। स्वय महात्मा बुद्ध ने भगवान महावीर का ही अनुसरण किया—क्योकि उनका उपदेश भी जन-साधारण की भाषा पाली नामक प्राकृत मे हुआ था। महावीरश्री की इस क्रान्तिपूर्ण देन का प्रभाव युग-युगान्तरों को पार कर आज भी हमारे सामने आदर्श की भाँति उपस्थित है।

महावीरश्री का दूसरा कदम (अहिंसावाद)

उस युग मे देवी-देवताओ के समक्ष किसी आशा विशेष से मूक पशुओ की बलि बहुत ही निर्भयता से दी जाती थी। ससार के वे अनजान-बेजबान प्राणी जो अपनी तकलीफो को मुँह से कहने मे असमर्थ है, प्रकृति की तुच्छ घास पर जिनकी जिन्दगी निर्भर है। मानव जाति के अहित की आशा जिनसे स्वप्न मे भी सभव नही और न जिनकी सुख-दुख भरी मूक वाणी को इस रक्त-रजित विराट् कोलाहल मे कोई सुनने वाला नही है ऐसे भोले-भाले प्राणियो की विकल आहुति देखकर महावीरश्री

का मोम सा कोमल दिल पिघल उठा । उन्होने अहिंसक वाणी मे भूली-भटकी जनता को समझाते हुए कहा—

"दया मानव-धर्म का मूल मंत्र है; दया शून्य धर्म हो ही नही सकता, दूसरों की भलाई में ही अपनी भलाई निहित है। सुख-दुख का अनुभव सव जीवो को एक-सा होता है, इसलिए सव जीवो को अपने सरीखा समझकर स्वप्न मे भी उनका अहित मत करो। सृष्टि की महती कृपा से जो सुविधाये तुम्हे प्राप्त हुई है वे इसलिए कि जिससे तुम अधिक से अधिक भलाई कर सको - न कि वुराई के लिए। दीन-दुखियों को तुम से साहस मिले, न कि भर्त्सना और आफत के सताये तुम से त्राण पा सके, न कि उल्टा कष्ट। प्रकृति के अग जैसे तुम हो, वैसे दूसरे भी है। उनके ताडन-पीड़न का तुम्हे क्या अधिकार ? यदि उनका निर्माण व्यर्थ हुआ है तो इसका फल वे स्वयं भुगतेंगे या उनका भाग्य भुगतेगा अथवा वह जिसने उन्हे उत्पन्न किया ? व्यर्थ चीजो के संहार का विधान आपको सौंपा किसने ? आपकी दृष्टि मे जैसे वे व्यर्थ है सभव है आप भी दूसरो की दृष्टि मे व्यर्थ ठहरते हों ? तव क्या होगा ? वे जैसे है, वैसे ही जीवन विताना चाहते हैं, उन्हे दीन पशु कहाकर जीना पसन्द है, पर आपके क्रूर प्रहार से आहत होकर स्वर्ग जाना स्वीकार नही। यदि आपने वलिदान द्वारा स्वर्ग भेजने का प्रण ही वना लिया है तो कृपा कर पहिले आप अपने परिवार से ही यह मागलिक कार्य प्रारम्भ कीजिये। वे दीन-पशु तो घास खाकर ही जीवन व्यतीत करने मे सन्तुष्ट हैं। अत. "खुद जियो और दूसरो को भी जीने दो"—अपने लिए दूसरो को मत मारो—मत हनन करो। अपनी ताकत और वहादुरी को दूसरो की सहायता और भलाई के लिए काम में लाओ। किसी पर जुल्म करना पाप है, और किसी का जुल्म सहना सव से वड़ा पाप है।

महावीरश्री की इस प्रशान्त गभीर वाणी के सामने हिंसा के कुटिल तर्क कुठित हो गए और स्वार्थ की निर्दय प्रवृत्तियाँ सदय हो गई। इस प्रकार महावीरश्री ने न केवल बलिदान बद किये बल्कि मानव समाज को जीव दया का पाठ पढाया। देवदासी जैसी घृणित-प्रथा को जड से उखाड फेकने का सारा श्रेय इन्ही लोकोत्तर भगवान महावीर को है।

भ० महावीर और महात्मा बुद्ध

विहार प्रान्त के एक अन्य क्षत्रिय राजकुमार गौतम बुद्ध ने भी उस समय की वीभत्स हिसा को हटाने के लिए महावीरश्री का पदानुसरण किया। उन्होने भी अहिसा का प्रचार करने के लिए साधु जीवन स्वीकार किया था। गौतम बुद्ध भ० महावीर स्वामी के समकालीन तथा निकटवर्ती थे।

महात्मा बुद्ध ने पहले भ० महावीर के समान दिगम्बर साधूओ की तरह खड़े रहकर हाथो मे भोजन करना, अपने हाथो से केशो का लुँचन करना आदि साधु-चर्या का आचरण किया। पीछे इन विधियो को कठिन जानकर छोड दिया। अपने शिष्यो के साथ वार्तालाप करते हुए म० बुद्ध ने भ० महावीर की सर्वज्ञता का जिक्र किया था। वे उन्हे एक अनुपम नेता के रूप मे मानते थे। ये बाते बुद्धचर्या आदि ग्रन्थो से प्रमाणित हैं।

महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार तो प्रारम्भ किया परन्तु पीछे अपने अनुयायियो की सख्या विशाल रूप मे बढाने के लिए उस अहिंसाव्रत को ढीला कर दिया। अपने आप मरे हुए या अन्य के द्वारा मारे गये जीव का मास भक्षण कर लेने मे भी अहिंसा कायम रह सकती है—बतलाकर महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन मे एक बडी भूल की। इसीलिये बौद्ध धर्मानुयायियो मे मास भक्षण की परम्परा बनी रही—जो कि अब तक चालू है।

लेकिन भगवान महावीर ने ऐसा कदापि नही किया। वहु सख्यक शिष्यो को अनुयायी बनाने का लोभ उन्हे पराजित न कर सका। अतएव भले ही अहिसा धर्म की दृढ चर्या के कारण भ० महावीर के अनुयायी म०-बुद्ध के अनुयायियो से कम संख्या मे रहे, किन्तु जो भी रहे पूर्ण अहिसाव्रती रहे। उन्होने रच मात्र भी मास भक्षण को नही अपनाया और आज तक ऐसा ही होता चला आया है, वौद्ध जनता मांस भक्षण से परहेज नही करती जव कि जैन जनता उससे सर्वथा दूर है।

महावीरश्री का तीसरा कदम (अनेकान्तवाद)

पहले दार्शनिको का वाद-विवाद अधिकाश मे एक-दूसरे के दृष्टिकोण पर सहानुभूति के साथ विचार न करने पर अव-लम्बित था। अस्तु दार्शनिक जगत् मे समता की स्थापना करने तथा अखड सत्य का स्वरूप स्थिर करने के उद्देश्य से भ० महावीर ने स्याद्वाद (अनेकान्त) सिद्धान्त की स्थापना की थी। स्याद्वाद दार्शनिक एव धार्मिक कलह की शान्ति का अमोघ उपाय है। है। वह अति उदारता के साथ दूसरो के दृष्टि विन्दु को समझने की शिक्षा देता है। विशाल हृदय और विशाल मस्तिष्क वनने का आदर्श उपस्थित करता हे।

भ० महावीरने स्याद्वाद का सन्देश देते हुए कहा—"तुम ठीक रास्ते पर हो, तुम्हारा कथन सही है, पर दूसरों का कहना भी सही है। दूसरो की सचाई को समझे विना ही अगर उन्हे मिथ्या कहते हो. तो तुम स्वयं मिथ्या भापण करते हो। रुपये के सौ पैसे वताना तो सत्य है परन्तु वीस पजी कहने वाले को मिथ्याभापी कहने मे तुम स्वय मिथ्याभापी वनते हो। विरोधी को असत्य भापी कहना तुम्हारी सत्यनिष्ठा नही है। किन्तु उसकी सत्यनिष्ठा को भलीभांति समझ लेने मे ही तुम्हारी

सत्यनिष्ठा है।"

प्रत्येक वस्तु को ठीक-ठीक समझने के लिए उसे विभिन्न दृष्टियो से देखो उसके अलग अलग पहलुओ से विचार करो, वस्तु के अनन्त गुणो तथा अनन्त विचार धाराओ का शुद्ध समन्वय करने की शक्ति स्याद्वाद मे है अनेकान्तवाद मे है।

विभिन्न दर्शन शास्त्रो का समन्वय करने मे समस्त दर्शन शास्त्र एक दूसरे के विरोधी न रह कर पूरक बन जाते है। उन सब के समन्वय मे ही अविकल सत्य के दर्शन हो सकते है। अतएव वस्तु तत्त्व की प्रतिष्ठा करने के लिए तथा व्यावहारिक जीवन मे साम्य लाने के लिए स्याद्वाद (अनेकान्त) की अत्यन्त उपयोगिता है। स्याद्वाद का यह सुनहरा सिद्धान्त भ० महावीर की सबसे बडी अनुपम देन है।

महावीर श्री का चौथा कदम (साम्यवाद)

उस समय के धार्मिक क्षेत्र मे बहुत सी मूर्खताएँ प्रचलित थी। धर्म तत्त्व मे आध्यात्मिकता का कोई प्रमुख स्थान नही था। हर जगह वही मूर्खतापूर्ण व्यापार की प्रधानता थी। हर-एक धर्म सकुचित घेरे मे पडा सिसकारियाँ ले रहा था। भ० महावीर ने इन सभी बुराईयो का घेरा तोडकर अत्यन्त वीरता और दृढता के साथ मुकावला किया। विभिन्न समाजो मे समता की स्थापना हेतु उन्होने मानव जाति को एकता का उपदेश दिया। उन्होने अपनी ओजस्वी वाणी मे कहा—

"मनुष्य जातिरेकैव"

अर्थात् मानव जाति एक ही है। उसको कई भागो में बाँटना निरी मूर्खता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि का जाति भेद बिल्कुल काल्पनिक है। कर्म से ब्राह्मण होता है,

कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है। इसलिए गुणो की पूजा करो, शरीर की नही। किसी को दलित और नीच कह कर मत दुत्कारो, मत घृणा करो, न किसी को उच्च कुल मे उत्पन्न होने से ही उसे ऊँचा मानो। सव मनुष्यो को अपना भाई समझो और अनुचित भेद भावो को भूल जाओ।

यह विश्वास और धारणा कि मैं पवित्र हूँ और वह अपवित्र है, मैं ऊँच हूँ और वह नीच है, जघन्य और घृणित पाप है जो विश्व को रसातल मे पहुँचाये बिना कदापि नही रह सकता। विश्व का कोई भी अग अपवित्र अथवा नीच नही है। इसके विपरीत यह मानना कि अमुक अग अपवित्र और नीच है—राष्ट्र, धर्म और समाज के प्रति महान कलक है—भयकर पाप है। किसी को नीच कह कर उसके स्वाभाविक धर्माधिकारो को हडपना नि सन्देह महा नीचता है—घोर पाप है।

महावीरश्री का पाँचवाँ कदम (कर्मवाद)

भ० महावीर स्वामी ने कर्मवाद के सम्वन्ध मे कहा—"जो जैसा करता है वही उसे भोगता है इसलिए 'जैसी करनी वैसी भरनी" के व्यक्ति सम्मत सिद्धान्त को किसी कल्पित और अज्ञात शक्ति को सौप देना कहाँ की बुद्धिमानी है। जिस वस्तु को व्यक्ति ने पैदा किया है उसका उपयोग करने या न करने का उसे पूरा अधिकार है। परम पिता परमात्मा कोई किसी को सुख-दुख नही देता किन्तु पूर्ववद्ध कर्मो का प्रतिफल समय आने पर व्यक्ति को अपने आप मिलता है। जव कोई व्यक्ति अच्छे या वुरे विचार या आचरण करता है—उसी वक्त उसके आस-पास (इर्द-गिर्द) में फैले हुए अनन्त पुद्गल परमाणु खिंच कर आते है और उसकी आत्मा से चिपट कर आत्मस्वरूप

को ढक लेते है, इसी को जैन-सिद्धान्त में कम कहते हैं। इन्ही सचित कर्मो की वजह से यह जीव विविध योनियो में भ्रमण करता हुआ सुख-दुख भोगता है। इसलिए हर समय उठते-बैठते-सोते-जागते शुभ आचार-विचार करो—जिससे ये दुष्ट कर्म तुम्हारी आत्मा को मैला-कुचैला न कर सके। इन्ही कर्म शत्रुओ को तपश्चरण द्वारा नाश कर आत्मा-परमात्मा बन जाता है।

ईश्वर, परमात्मा, भगवान, पैगम्बर, खुदा-तीर्थङ्कर ये सब एक ही नाम के पर्यायवाची शब्द है। इनमे नाम का झगडा करना व्यर्थ है। परमात्मा प्राणियो का पथ-प्रदर्शक हो सकता है। उसे आदर्श अनुपम और अलौकिक मानकर उनकी पूजा-अर्चना कर उनके बताये मार्ग पर चलने मे भी किसी को ऐतराज नही होना चाहिये। लेकिन यदि परमात्मा व्यक्ति की प्रवृत्तियो एव उसके फल पर बन्दिस लगाना चाहे तो यह उसकी ऐसी अनाधिकार कुचेष्टा कही जायगी जिसे कोई दिमाग रखने वाला विज्ञानी आत्मा मानने को कटिबद्ध न होगा।

राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ममता, जन्म, मरण आदि अनेक रोगो से रहित कर्म विहीन आत्मा ही परमात्मा है, ईश्वर है, तीर्थङ्कर है, पैगम्बर है। विश्व-विधान से उसका कोई वास्ता नही है। सृष्टि तो जैसी आज है वैसी ही पहिले भी थी और आयन्दा भी वैसी ही रहेगी। उसमे होने वाले परिवर्तन-परिवर्द्धन और उत्पादन काल चक्र की देन है—परमात्मा की नही। इसलिए जगत के भूले-भटके दुखित सत्रस्त प्राणियो को सबोधते हुए भ० महावीर स्वामी ने कहा—

"जप, तप, सयम, नियम, सदाचार, विज्ञान और आत्मा का अहर्निशि चिन्तन-मनन करने से हर एक व्यक्ति ईश्वर के अविनाशी अजर-अमर पद पर पहुँच सकता है।"

भ० महावीर ने कर्मवाद के सिद्धान्त का प्ररूपण कर हर एक व्यक्ति को अपने पैरो पर खडे होने की शिक्षा दी और ईश्वरशाही के हथकडो से वचाकर कर्मठ एवं कर्त्तव्यनिष्ठ वनाया।

महावीरश्री का छटवाँ कदम (निःसंगवाद)

मनुष्य का स्वभाव ही सग्रहशील है—अधिक से अधिक जुटाना, सग्रह करना उसकी प्रधानवृत्ति है। लेकिन यही प्रवृत्ति विश्व कलह की जननी है। दूरदर्शी भ० महावीर स्वामी मानव स्वभाव की इस बडी कमजोरी से युवराजावस्था से ही परिचित थे, इसलिए उन्होने आर्थिक विषमता को मिटाने के लिए ही नि सगवाद अर्थात् अपरिग्रहवाद का धर्म में समावेश किया। यदि वे ऐसा न करते तो जनता इसे राजनैतिक चाल कह कर टाल देती! नि सगवाद का स्पष्ट अर्थ है—जरूरत से अधिक नही जोडना! यह जरूर है कि सम्पत्ति मानव जीवन की सब से अधिक आवश्यक वस्तु है लेकिन श्वॉस लेने की तरह नही। यदि ससार की सारी सम्पत्ति एक जगह जुड जाय तो दुनियां में विप्लव मच जाय, कलह और क्रान्ति की उद्भूति होने लग जाय! धन का सग्रह करना बुरा नही है, लेकिन उसको जमीन मे गाढ रखना या केवल अपने ही स्वार्थ के काम मे लाना बुरा है—वहुत अधिक बुरा है।

नि.सगवाद और साम्यवाद दोनो मे भेद है। नि सगवाद व्यक्ति से सम्वन्ध रखता है और साम्यवाद राज्यकीय सगठन से। नि सगवाद मे व्यक्ति की भावना काम करती है और साम्यवाद में राज्यकीय अनुशासन। नि.सगवाद का दारोमदार अहिंसा पर अवलम्वित है जव कि साम्यवाद हिंसा पर आश्रित है। नि.सगवाद का स्रोत हृदय है और साम्यवाद दिमाग के तूफानी

विचारो से पैदा हुआ है। दिमाग की अपेक्षा हृदय से निकली चीज अधिक टिकती है, इसीलिये लोग उसे अपनाते भी हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि नि·सगवाद सिद्धान्त की सतत प्रवाह-शील शीतल धारा है और साम्यवाद सिर्फ समय की देन है। ससार के इतिहास में यदि पहिले-पहल पूजीवाद की खिलाफत कही मिलती है तो वह भगवान महावीर स्वामी के नि सग-वाद मे।

महावीरश्री का सातवॉ कदम (धर्मवाद)

धार्मिक क्षेत्र मे भी भ० महावीर स्वामी ने अनेक सशोधन किये थे। उन्होने धर्म सम्वन्धी जनता की दूषित मनोवृत्ति को वदल दिया था। महावीरश्री ने धर्म को आत्मस्पर्शी वनाकर जीवन मे उसकी प्रतिष्ठा की। उन्होने धर्म का जो रूप जन-साधारण के समक्ष प्रस्तुत किया वह बहुत ही सीधा-साधा सरल-सार्वजनिक और व्यापक था। उन्होने कहा—"सत्य का ही दूसरा नाम धर्म है और वह बहु सनातन है—अनादि निधन है। जो सनातन नही, वह सत्य नही हो सकता। वह किसी सीमा मे आवद्ध नही है। सत्य को उत्पन्न नही किया जा सकता क्योकि वह कभी मरता ही नही है। सत्य तो सुमेरु की तरह अचल और आकाश की भाँति नित्य और व्यापक है। इसलिए सत्य ही धर्म है। वह कभी और कही नूतन नही हो सकता। वही सत्य उत्कृष्ट मगल स्वरूप है, ऐसा परम उत्कृष्ट मंगल जिसमे अमगल का लेश भी न हो—वास्तविक धर्म कहलाता है। सत्य तो आत्मा की आवाज है, वह आत्मा मे ही रहता है। जो आत्मा की वास्तविकता से अवगत हो जाता है—वह धर्म-तत्त्व को जान लेता है—समझ लेता है। वास्तविक धर्म सत्य ही है। उसी सत्य के संरक्षण के लिए वाहरी जितने भी व्रत सयम-नियम पाले

जाते है वे सब उसके कारण है। व्रतो का अनुष्ठान ही सत्य के सरक्षण के लिए किया जाता है।

"वत्थु स्वभावो धम्म"

अर्थात् वस्तु का जो स्वभाव है वही धर्म है। आत्मा का स्वभाव सत्य रूप है इसलिए वास्तविक धर्म सत्य ही है।

स्त्रियों के प्रति महावीरश्री की उदारता

प्राय: स्त्रियो पर सदा से अत्याचार होते आये है, इसलिए सभवत: उनको अवला नाम से पुकारा जाता है। उस समय भी स्त्री जाति पर अधिक अत्याचार होता था। उसका कोई व्यक्तित्व न था। उसका पढने-लिखने तक का अधिकार छिन गया था। वह केवल पुरुष की दासी मात्र थी। इतना ही नही, उसकी कोई स्वतत्र सत्ता भी नही थी। उसे मृत-पुरुप के साथ जवरन जलना पडता था, उसके सतीत्व का भी यही अर्थ था—यही प्रमाण था कि जीवन भर पुरुष की इच्छा पर नाचती रहे और उसके मरने पर उसकी चिता के साथ जल मरे—अपनी आहुति दे दे।

भगवान महावीर ने इसका घोर विरोध किया सत्याग्रह किया और पुरुप को स्त्री की महत्ता वतलाई। वे स्त्रियों का वहुत आदर करते थे और उनकी विराट् धर्म-सभा मे पुरुपो की अपेक्षा स्त्रियो को उच्च स्थान प्राप्त था।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"

के सुन्दर सुरभित गीत उन्ही के दिव्योपदेश का फल है। उनके पहले तो—

'न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति'—'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्'

इत्यादि कल्पित शास्त्राज्ञाओ ने स्त्रीत्व के सारे गौरव को मिट्टी मे मिला रखा था। पर भ० महावीर के उपदेश ने स्त्रियो में

ऐसी क्रान्ति का बिगुल फूंका कि उनकी उपदेश सभा मे वे पुरुपो से कई गुणी अधिक पहुँचती थी और उनका दिव्योपदेश श्रवण कर आत्म-कल्याण मे विरत हो जाती थी। आज भी जितनी अधिक धार्मिकता स्त्रियो मे है, उतनी पुरुपों में नही है उन्ही की धार्मिकता से भारतीय सस्कृति अभी तक अक्षुण्ण बनी हुई है। जिसका सारा श्रेय भ० महावीर स्वामी को है।

आश्चर्यजनक अतिशय

भ० महावीर ने ३० वर्ष तक लगातार तत्कालीन भारत के मध्य के काशी, कौशल, कौशल्य, कुसन्ध्य, अश्वष्ट, साल्व, त्रिगर्त, पचाल, भद्रकार, पाटच्चर, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एव वृकार्थक नाम के देशो मे, समुद्रतट के कलिङ्ग कुरुजागल, कैकेय, आत्रेय, कावोज, वाल्हीक, यवन श्रुति, सिन्धु, गाधार, सूरभीरु, दर्गेरुक, वाडवान, भारद्वाज, और क्वाथतोय देशो मे एवं उत्तर दिशा के तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि देश-देशान्तरो मे भ्रमण किया। वे जहाँ जाते वहाँ विराट् धर्म-सभाएँ की जाती, उन धर्म-सभाओ मे लाखो-करोडो नर-नारी, पशु-पक्षी तक आकर बैठते और भगवान का दिव्योपदेश सुनते थे।

स्वाभावत. प्रश्न उठता है कि उस समय तो आज सरीखे रेडियो और लाऊडस्पीकर नही थे, फिर भ० [महावीर स्वामी की आवाज सभा मे स्थित लाखो आदमियो तक कैसे पहुँचती होगी ?

प्रश्न वास्तविकता को लिए ठीक है पर जिनको इस प्रकार की शका होती है उनको ज्ञात होना चाहिए कि वर्तमान की अपेक्षा उस समय विज्ञान का अभाव नही था, उस समय भी किसी भिन्न प्रकार के ध्वनि प्रसारक या ध्वनिवर्धक साधन महावीरश्री के धर्म-सभा मे रहते थे जिन्हे जैन परिभाषा मे

अर्द्ध मागध जाति के देव या एक प्रकार का अतिशय कहते है— उनके द्वारा उनका उपदेश १२ कोष लवी-चौड़ी गोल विराट् धर्म सभा मे पहुँचता था।

महावीरश्री के धर्मोपदेश का प्रभाव

भ० महावीर स्वामी ने अपने हित-मित मयी दिव्योपदेश द्वारा उस समय के लोक में प्रचलित सभी तरह के अन्याय, अत्याचार, अनाचार, दुराचार, दुष्प्रथाएँ, दुराग्रह एवं पोप-पन्थो के विरुद्ध सत्याग्रह किया और जन-साधारण को सन्मार्ग का सदुपदेश दिया। भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर अनेक राजा-महाराजाओ ने अमीरो और गरीवो ने, विद्वानो और अलपज्ञो ने उच्च और दलितों ने, छूत और अछूतों ने, पशु और पक्षियो ने सभी ने पतित-पावन विश्व (जैन) धर्म धारण कर प्राप्त जीवन को सफल वनाया। उस समय भ० महावीर स्वामी द्वारा प्रचारित जैन-धर्म आज सरीखे तग घेरे मे वद नही था, उसका दरवाजा तो सभी के लिए खुला था। इसीलिए उस समय इस धर्म ने सार्वभौमिकता प्राप्त कर ली थी।

लोकोपकारी भ० महावीर ने अगणित प्राणियो को अज्ञानान्धकार से निकालकर यथार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञान कराया, मोह मिथ्यात्व और मूर्खता का आवरण हटाकर जीवो को सच्चा रास्ता सुझाया और प्रचुर मात्रा में प्रचलित लोक मूढताओ-पाखण्डो-रूढ़ियों और दुराग्रहो को हटाया, पतितो को पवित्र किया, अछूतो को छूत वनाकर गले लगाया, हिंसा को वन्द कराकर "खुद जियो और दूसरो को जीने दो" का सबक पढाया, कायरता को हटाकर जनता को स्वावलम्वी वनाया, वैमनस्यता को पछाड कर विश्व मे भ्रातृत्व भाव को फैलाया। इस तरह भ० महावीर स्वामी ने अपने सदुपयोगी सदेशो द्वारा ससार को

सुखी शांत और पवित्र बनाया।

लगातार तीस वर्ष तक दिव्योपदेश देने के उपरान्त ७२ वर्ष की आयु के अन्त समय स्वात्मस्थ हो गये और कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पहली (चतुर्दशी के बाद की) रात्रि को स्वाति नक्षत्र मे विहार प्रान्तस्थ मल्लिवशीय राजा हस्तिपाल की राजधानी मध्यमा पावापुर से अवशिष्ट चार अघातिया कर्मों का विनाश कर मोक्ष-लक्ष्मी को वरण किया था। इस तरह भ० महावीर स्वामी के ७२ वर्षों मे एक भी क्षण उनका ऐसा नही गया जिस क्षण मे उनके द्वारा दूसरो का उपकार न हुआ हो। उनका जीवन वास्तव मे आदर्श जीवन था।

कृतज्ञता

महावीर श्री ने ससार के प्रत्येक प्राणी के प्रति महान उपकार किया था, उनके अगणित उपकारो से जनता दवी जा रही थी इसलिए कृतज्ञतावश उस समय की जनता ने अपने उपकारी परमगुरु के मुक्ति लाभ की खुशी मे दीप जलाकर अपनी प्रगाढ भक्ति का परिचय दिया था, तभी से दीपावली का पावन त्यौहार भारत मे प्रचलित हुआ जो कि आज तक महावीरश्री के उपासको द्वारा प्रतिवर्ष धूमधाम से मनाया जाता है।

महावीरश्री की स्मृति मे वीर निर्वाणसवत् भी आज तक प्रचलित है।

जय महावीर जय वर्द्धमान

जय सन्मति

जय वीर जय अतिवीर

—×—

पृष्ठ निर्देशन (ब)

—०—

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की
जीवन-रेखाएँ

१.	शुभ नाम सम्वोधन	वर्द्धमान, महावीर, वीर, अति-वीर, सन्मति, वैशालिक, वैदेहिक, निग्गंठनात पुत्त, त्रिशलानन्दन
२.	जाति	क्षत्रिय
३.	गोत्र	काश्यप
४.	दैहिक दीप्ति	तप्त स्वर्ण तुल्य
५	वश	ज्ञातृ वश
६	कुल-धर्म	आर्हत्
७	चिह्नाक	सिंह
८.	पितृ-नाम	सिद्धार्थ
९	मातृ-नाम	त्रिशला (प्रियकारिणी)
१०	गर्भावतरणवेला	अषाढ सुदी ६, उत्तर हस्ता नक्षत्र, शुक्रवार, १७ जून ५९९ ई० पूर्व
११	जन्म कल्याण वेला	चैत्र सुदी १३ उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र
१२	जन्मभूमि	कुडग्राम वैशाली (विहार प्रान्त) गणतत्र
१३	व्रत-सयम	पच अणुव्रत, महाव्रत
१४.	निर्ग्रन्थ दीक्षा	ज्ञातृ खण्ड वन, उत्तर हस्ता नक्षत्र मगशिर कृष्ण १० सोमवार २९ दिसम्वर ५६९ ई० पूर्व

१५.	तप कल्याणक	शाल वृक्ष के नीचे, वैशाख सुदी १०, उत्तर हस्ता नक्षत्र रविवार २६ अप्रैल ५५७ ई० पू०
१६	केवल ज्ञान कल्याणक	ऋजुकला नदी के तट पर
१७	प्रधान गणधर	गौतमादि ग्यारह
१८	प्रधान श्रोता	श्रावकोत्तमविम्वसार (श्रेणिक) महाराज मगध सम्राट्
१९	निर्वाण स्थल	मध्यमा पावानगर (विहार)
२०.	आयुष्य प्रमाण	७१ वर्ष ४ माह २५ दिन
२१	निर्वाण वेला	शक सवत् ६०५ वर्ष पूर्व, स्वाति नक्षत्र, भौमवार १५ अक्टूवर ५२७ ई० पू०
२२	निर्वाण कल्याणक	हस्तिपाल राजा की उपस्थिति मे निष्पन्न
२३.	दीपोत्सव	रत्नदीप मय दिव्यालोक नागरिकों द्वारा सम्पन्न
२४.	प्रधान साध्वी	चन्दना सती (त्रिशला जी की लघु भगिनी)
२५.	दिव्य-ध्वनि	प्रथम देशना विपुलाचल राजगृह मे श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (वीर-शासन जयंती)
२६	सिद्धान्त	स्याद्वाद (अनेकान्त) परम अहिंसा अपरिग्रह आदि

जीवन-चक्र

१

इस जगती का रग-मंच, ऐसा अपूर्व संगम-स्थल है ।
जहाँ विविधताओ का अभिनय, होता ही रहता प्रति पल है ॥

२

चिर अनादि से जीव अनन्तानत, स्वाँग धर भटक रहे है ।
आतम के अवलम्ब विना ही, पर्यायो मे अटक रहे हैं ॥

३

ऐसे ही संसारी जीवो मे, हम सब की है निजात्मा ।
जो अपने विस्मरण मरण से, खुद का ही कर रही खात्मा ॥

४

महावीर की भी निजात्मा, हम जैसी ही ससारी थी ।
युग-युगान्तरो आत्म-ज्ञान की, नही कोई भी तैय्यारी थी ॥

५

लेकिन जिस क्षण खुद को जाना, माना पौरुष को पहिचाना ।
कर्मठ सम्यक्त्वी ने तत्क्षण, कर्म-शत्रुओ से रण ठाना ॥

६

और अन्ततः विभव-विभावो, का अभाव कर मुक्त हुये वे ।
भव-भव की पर्यायें तज, स्वाभाविकता से युक्त हुये वे ॥

७

भगवान जन्मते नही किन्तु, पौरुष से बनते आये हैं ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र की, पथ प्रशस्त करते आये है ॥

८

निम्न अवस्थाओ से लेकर, ऊँचे से ऊँचे विकास की ।
क्रमश. झाँकी यहाँ देखिये, महावीर के मोक्ष वास की ॥

महावीर श्री अतीत की परतों में

हीयमान से वर्द्धमान

वनवासी पुरुरवा

९

पुण्डरीकणी वन का वासी, भिल्लराज था 'पुरुरवा' ।
और 'कालिका' नामक उसकी, भद्र भीलनी श्याम-प्रभा ॥

१०

एक दिवस दम्पति ने मृगया, मे, मृग का जव किया शिकार ।
'सागरसेन' एक मुनि तव ही, एकाकी कर रहे विहार ॥

११

पुरुरवा ने हरिण समझ उन, मुनिपर शर संधान किया ।
किन्तु कालिका ने निज पति के, दृष्टि दोष को जान लिया ॥

१२

वोली—नाथ ! रुको, मत मारो, ये वन-देव दिगम्बर है ।
आत्मलीन ये पर उपकारी, महाव्रती जिन गुरुवर हैं ॥

१३

इनके वध के पाप-भाव से, मत भव-भव का बन्ध करो ।
इनके चरण-कमल से, अपने मस्तक का सम्बन्ध करो ॥

१४

सुन कर यह कल्याणी-वाणी, भिल्लराज को जागा ज्ञान ।
तत्क्षण पाद मूल मे पहुँचा, फेंक वहीं पर तीर-कमान ।।

१५

मुनि श्री ने तब भव्य जान कर, उसको दिया धर्म-उपदेश ।
मद्य-मास-मधु-सुप्त व्यसन से, वर्जित श्रावक व्रत नि.शेष ।।

१६

धारण कर सम्यक्त्व सहित, वह जप-तप-सयम अणुव्रत शील ।
प्रथम स्वर्ग मे देव महर्द्धिक, हुआ समाधि-मरण से भील ।।

पुरुरवा प्रथम स्वर्ग में

१७

महाकल्प नामक विमान मे, वह सौधर्म-स्वर्ग का देव ।
मात्र एक अन्तर्मुहुर्त मे, तरुण-किशोर हुआ स्वयमेव ।।

१८

अवधिज्ञान से जान लिया निज, पूर्व-जन्म का सब वृत्तान्त ।
धर्म-ध्यान के पुण्य फलों पर, उसकी श्रद्धा बढी नितान्त ।।

१९

अत सपरिकर चैत्य-वृक्ष पर, स्थित अरिहन्तो कों नित्य ।
भक्ति-भाव से पूजा करता, था ले अष्ट-द्रव्य-साहित्य ।।

२०

नन्दीश्वर या पचमेरु की, वन्दनाओं का लेकर लाभ ।
समवशरण में गणधर-वाणी, सुनता था वह सुर अमिताभ ।।

२१

सात हाथ ऊँचा शरीर था, सप्त धातु से रहित ललाम ।
आयु एक सागर वर्षो की मति, श्रुति अवधिज्ञान अभिराम ॥

२२

अष्ट ऋद्धियो का धारी वह, पाकर अनुपम पुण्य-विभूति ।
अनासक्त रह कर भोगो से, करता सदा आत्म-अनुभूति ॥

२३

यद्यपि वह देवाङ्गनाओं के, साथ सतत करता था केलि ।
तो भी उसे न मूर्च्छित करती, थी क्षणमात्र विषय विष-वेलि ॥

२४

आयु पूर्ण कर देव धरा पर, ऋषभदेव का पौत्र हुआ ।
भरत चक्रवर्ती के घर में, यह 'मारीचि' सुपुत्र हुआ ॥

भरत चक्रवर्ती पुत्र मारीचि कुमार

२५

छह खंडों की वसुन्धरा का, प्रमुख राजधानी का देवेन्द्र ।
भरतेश्वर थे जिसके अधिपति, निर्माता जिसका देवेन्द्र ॥

२६

उसी अयोध्या मे चक्री की, प्रिय 'धारिणी' के उर से ।
सुत 'मारीचि' हुआ मेधावी, चय कर सौधर्मी सुर से ॥

२७

भोगो से होकर विरक्त श्री, 'ऋषभदेव' निर्ग्रन्थ हुये ।
चार सहस्र नृपति भी उनकी, देखा देखी सन्त हुये ॥

२८

चूँ कि द्रव्य लिङ्गी मुनि थे वे, अतः धर्म से भ्रष्ट हुये ।
भूख-प्यास से व्याकुल होकर, जल-फल प्रति आकृष्ट हुये ॥

२६

'भरत' चक्रवर्ती के भय से, न नागरिक बने नहीं ।
आदीश्वर सम रत्नत्रय के, भाव-लिङ्ग मे सने नही ॥

३०

अतः वनस्थित देवराज ने, उन सब को यो किया सचेत ।
वेष दिगम्बर धारण करके, क्यो पाखडी बने अचेत ॥

३१

इनमे से कुछ राजा गण तो, उद्बोधन को प्राप्त हुये ।
किन्तु शेष दुर्गति अनुसारी, मिथ्यामति में व्याप्त हुये ॥

३२

अन्तिम तीर्थङ्कर होगा, 'मारीचि'-दिव्यध्वनि में आया ।
जिसको सुनकर स्वच्छन्दी, ने अपनापन ही बिसराया ॥

३३

होनहार अनुसार बना वह, मिथ्यामत का नेता था ।
परिव्राजक का वेष धार, उपदेश विपर्यय देता था ॥

३४

मैं भी श्री जिन आदिनाथ सा, जगद्गुरू कहलाऊँगा ।
उन जैसा ही मैं भी अपना, पथ अलग अपनाऊँगा ॥

३५

मिथ्यापन की यही मान्यता, भव-भव हमे रुलाती है ।
सम्यग्दर्शन के अभाव मे, स्वर्ग-नरक दिखलाती है ॥

३६

परिव्राजक निज तप प्रभाव से, आयु पूर्ण कर स्वर्ग गया ।
ब्रह्म स्वर्ग के सौख्य भोगकर, पुनः धरा पर मनुज भया ॥

मिथ्या मत प्रचारक जटिल ऋषि

३७

ब्रह्मस्वर्ग से च्यय कर वह, मारीचि जीव अवनी पर ।
'जटिल' नाम का पुत्र हुआ, द्विज कपिल और काली घर ॥

३८

ऋषि बन कर मिथ्यात्व-धर्म का, उसने अति उपदेश दिया ।
भाति भाति की करी तपस्या, एव काय. क्लेश किया ॥

३९

आयु पूर्ण कर उस तापस ने, प्रथम स्वर्ग मे जन्म लिया ।
स्वर्गिक सुख के भोगो में ही, अपना काल व्यतीत किया ॥

परिव्राजक पुष्पमित्र

४०

भारद्वाज-पुष्पदत्ता ये, भारतीय द्विज दम्पत्ति थे ।
इनके सुत मारीचि जीव अब, पुष्पमित्र नामक यति थे ॥

४१

वे स्वर्गो का वैभव तज कर, नगर अयोध्या आये थे ।
सांख्य धर्म के उपदेशो से, जन जन को भरमाये थे ॥

४२

आयु पूर्ण कर पुनः हुवे, सौधर्म स्वर्ग अधिकारी ।
क्योंकि तपस्या के प्रभाव से, मिले सम्पदा भारी ।।

एकान्तमत प्रचारक अग्निसह्य ब्राह्मण

४३

भरत क्षेत्र श्वेतिक नगरी मे, अग्निभूति ब्राह्मण थे ।
प्रिया गौतमी के सग सुख से, करते जो कि रमण थे ।।

४४

वह मारीचि इन्ही के घर मे, अग्निसह्य अवतरित हुआ ।
जिसके द्वारा परिव्राजक का, मिथ्या मत स्फुरित हुआ ।।

४५

सनत्कुमार स्वर्ग मे पहुँचा, आयु पूर्ण कर तापस ।
सात सागरो तक सुख भोगा, चख पुण्यों का मधु-रस ।।

त्रिदंडी साधु अग्निभूति

४६

सनत्कुमार स्वर्ग से चय कर, मन्दिर नाम नगर मे ।
अग्निभूति यति हुआ त्रिदडी, गौतम द्विज के घर मे ।।

४७

मिथ्या शास्त्रों का अध्ययन, कर ऐकान्तिक फैलाया ।
आयु पूर्ण कर पंचम स्वर्ग, पाई देव की काया ।।

४८

होता है सम्यक्त्व न जब तक, तब तक सारे जप-तप।
भले स्वर्ग का वैभव दे दे, कर्म न सकते पर खप॥

महा मिथ्यात्वी भारद्वाज ब्राह्मण

४९

मातु मन्दिर ब्राह्मणी थी, जनक सांकलायन थे।
भारद्वाज नाम के उनके, सुत बहुश्रुत ब्राह्मण थे॥

५०

जो कि स्वर्ग से चय कर आये, पूर्व सस्कारों वश।
ऐकान्तिक मिथ्यात्व प्रचारक, बने त्रिदंडी तापस॥

५१

फल स्वरूप देवायु बध कर, स्वर्ग पाँचवे पहुँचे।
मंद कषायी बाल-तपस्वी, सुरगति में ही पहुँचे॥

भव भ्रमण के भँवर-जाल में फँसा हुआ मारीचि का जीव

५२

अपना मूल स्वभाव भूल, वहिरातम भटक रहा है।
वह अनादि से चारों गति, मे औंधा लटक रहा है॥

५३

नर्क-निगोद-तिर्यक्-सुर गति में, होकर त्रस-स्थावर ।
साठ लाख पर्याये पाता, है मारीचि बराबर ॥

५४

वचनातीत सहे दुख इसने, स्पर्शेन्द्रिय होकर ।
जन्म-मरण फिर हुये अठारह, एक स्वाँस के भीतर ॥

५५

आलू-शकरकंद-लहसुन मे, फिर उपजे फिर और मरे ।
एक देह मे हीं अनन्त अक्षर, अनन्तवाँ ज्ञान धरे ॥

५६

सिद्धो का सुख एक ओर था, उससे उतना ही विपरीत ।
दुख निगोद मे नरको से भी, अधिक सहा था वचनातीत ॥

५७

आर्त-रौद्र मोहित परिणामो, के फल नरको मे भोगे ।
खून-पीव की वैतरिणी मे, पहिन वैक्रियक चोगे ॥

५८

एक साथ विच्छू सहस्र मिल, मानो डक मारते हो ।
सेमर-तरु के पत्ते-पत्ते, भी तलवार धारते हो ॥

५९

आपस मे लड टुकड़े-टुकड़े, किये देह के परावत ।
ले समुद्र की प्यास बूद को, भी तरसा वह मिथ्यामत ॥

६०

जन्म-मरण के साठ लाख, तक कष्ट अनन्ते काल सहे ।
शुभ कर्मों से शाडलीक के, स्थावर द्विज बाल रहे ।

६१

आयु पूर्ण कर स्वर्ग चतुर्थे, पाई विप्र ने सुर पर्याय ।
क्योकि स्वर्ग-सुख दे सकती है, बिन समकित ही मंद कषाय ॥

६२

पृथ्वी-जल की-अग्नि-वायु की, वनस्पति की वादर काय ।
अपर्याप्त-पर्याप्त रूप से, धारी असख्यात पर्याय ॥

६३

पृथ्वी कायिक में भोगी, उत्कृष्ट आयु बाईस हजार ।
जल कायिक मे भोगी थी, उत्कृष्ट आयु पुनि सात हजार ॥

६४

उम्र तीन दिन-रात रही, कई बार अग्नि कायिक होकर ।
वायु काय का जीव हुआ, यह तीन हजार वर्ष सोकर ॥

६५

दस हजार वर्षों तक थी, प्रत्येक वनस्पति की उच्चायु ।
इंधन - राधन - काटना - छेदन, भेदन दु.ख सहे निरुपायु ॥

६६

लट-चीटी-भँवरा विकलत्रय, द्वय त्रय चतुरिन्द्रिय के जीव ।
चिन्तामणि सम दुर्लभ है त्रस, जिसमें रह दुख सहे अतीव ॥

६७

कुचले पीसे गये प्रवाहित, हुये अग्नि में भस्मीभूत ।
खाये गये पक्षियो द्वारा, सहे दु.ख मारीचि प्रभूत ॥

६८

पचेन्द्रिय जब हुआ असैनी, हित अनहित का नही विवेक ।
ज्ञान अल्प था—मोह तीव्र था, धर्म हीन दुख सहे अनेक ॥

६९

संज्ञी पचेन्द्रिय पशु होकर, लघु जीवो का किया शिकार ।
स्वय दीन कातर होने पर, वना सशक्तो का आहार ॥

७०

छेदन - भेदन—क्षुधा - पिपासा, की पीड़ायें क्या कहना ? ।
सर्दी - गर्मी—वोझा ढोना, वध बन्धन परवश सहना ॥

७१

पुण्य योग से नर भव पाया, किन्तु न पाई मानवता ।
इसीलिये दुख सहे अनेको, गर्भ जन्म एव शिशुता ॥

७२

वालकपन मे—खेलकूद मे, सारा समय व्यतीत हुआ ।
भोग विलासो भरी जवानी मे, कुछ भी न प्रतीत हुआ ॥

७३

वूढी सव हो गईं इन्द्रियाँ, किन्तु वासना रही जवान ।
मरघट मे पग लटक गये पर, आया नही धरम का ध्यान ॥

७४

इस प्रकार मारीचि जीव का, क्रमशः हुआ ह्रास पर ह्रास ।
हीन हीन पर्यायो का है, लज्जा जनक निम्न इतिहास ॥

७५

डेढ हजार अकौआ की थी, सीप योनि अस्सीय हजार ।
नीम और केला तरु की थी, सहस बीस नव क्रम अनुसार ॥

७६

तीस शतक चन्दन तरु एव, पच कोटि भव हुये कनेर ।
वेश्या साठ हजार वार बन, पाच कोटि तन धरे अहेर ॥

७७

वीस कोटि अवतार गजो के, गर्दभ पशु के साठ करोड़ ।
स्वाँग श्वान के तीस कोटि थे, साठ लाख क्लीवो के जोड ॥

७८

बीस कोटि नारी पर्यायें, रजक वृत्ति की नव्वे लक्ष ।
मार्जार एव तुरगी के, वीस आठ कोटिक क्रम कक्ष ॥

७९

साठ लाख पर्यायो में तो, गर्भपात कर वारम्वार ।
उपजे राजाओ के पद पर, उपर्युक्त गिनती अनुसार ॥

८०

दानादिक के पुण्य फलो मे, भोगभूमि अवतार हुआ ।
अस्सी लाख वार स्वर्गो मे, क्रमश देवकुमार हुआ ॥

८१

ह्रास विकासो के झूलों पर, झूला वह नीचे ऊपर ।
किन्तु मुक्ति का मार्ग न पाया, रत्नत्रय पथ पर चल कर ॥

८२

इस प्रकार मारीचि जीव ने, कोई क्षेत्र नही छोड़ा ।
क्योकि कभी भी उसने निज से, सम्यक् नाता नहिं जोड़ा ॥

युवराज विश्वनंदी

८३

भ्रमते-भ्रमते राजगृह मे, हुआ विश्वनन्दी युवराज ।
जयिनी विश्वभूति नृप के घर, वह मारीचि जीव सिरताज ॥

८४

इसी विश्वनन्दी के थे, वैसाखभूति सज्जन पितृव्य ।
उसका सुत वैसाखनन्द था, भाई चचेरा घोर अभव्य ।।

८५

विश्वभूति मुनि हुये अंत., वैसाखभूति सरक्षक थे ।
अल्पायुष्क विश्वनन्दी के, वे न्यायी अभिभावक थे ।।

८६

उद्धत हो वैसाखनन्द ने, उपवन पर अधिकार किया ।
वृक्ष उखाड़ विश्वनन्दी ने, उस पर अतः प्रहार किया ।।

८७

वच कर भागा चढा खभ पर, वह वैसाखनन्द भयभीत ।
तोड़ा उसे विश्वनन्दी ने, हुई साथ ही आत्म-प्रतीत ।।

८८

विश्वनन्दी वैसाखभूति ने, नग्न दिगम्बर धारा भेष ।
कठिन तपस्याओ के कारण, काया जर्जर हुई विशेष ।।

८९

आहारार्थ एक दिन निकले, विश्वनन्दि मुनि मथुरा ओर ।
आकार एक बैल ने तब ही, उन्हे गिराया देकर जोर ।।

९०

राजमहल की छत पर से, बैसाखनन्द ने देखा दृश्य ।
अट्टहास उपहास सहित बोला, व्यगोक्तियाँ अवश्य ।।

९१

मुनि निन्दा के घोर पाप से, पाया उसने सप्तम नर्क ।
मंद कषायी विश्वनन्दि मुनि, ने भी पाया दशवाँ स्वर्ग ।।

९२

मुनि वैशाखभूति भी मर कर, उनके साथी देव हुये ।
तीनो प्राणी निज कर्मों के, फल भोक्त स्वयमेव हुये ॥

९३

विश्वनन्दि वैशाखभूति ने, भोगे स्वर्गिक सौख्य अतीव ।
नारायण बलभद्र रूप में, जन्मे क्रमशः दोनो जीव ॥

त्रिपृष्ठ नारायण

९४

पोदनपुर के नृपति प्रजापति, 'मृगा' "जया" ये दो वनिता ।
क्रमश. इनकी माताऐ थी, और प्रजापति पूज्य पिता ॥

९५

वह विशाखनन्दी भी नाना, दुर्गतियो को करके पार ।
अश्वग्रीव प्रतिनारायण हो, जन्म अलकापुरी मझार ॥

९६

गिरि विजयार्द्ध दिशा उत्तर मे, ज्वलनवटी था एक नरेश ।
'स्वयंप्रभा' उसकी पुत्री थी, रूप और लावण्य विशेष ॥

९७

श्री त्रिपृष्ठ नारायण से उस, स्वयंप्रभा का हुआ विवाह ।
अश्वग्रीव प्रतिनारायण को, हुई ज्वलनजटी से डाह ॥

९८

वेचारे उस ज्वलनजटी पर, अश्वग्रीव चढकर आया ।
मानो सन्मुख देख शेर को, मृग वेचारा घवराया ॥

९९

किन्तु न्याय के साक्ष्य हेतु, आये नारायण वलभद्र ।
की सहायता ज्वलनजटी की, अश्वग्रीव से छीना चक्र ॥

१००

प्रतिनारायण का वध करके, वने त्रिपृष्ठ त्रिखडाधीश ।
किन्तु नियम से नरक जायेगे, नारायण यों कहे मुनीश ॥

१०१

एक रात्रि गाना सुनते थे, अपने शय्यापाल समीप ।
सुनते सुनते निद्रा के वश, हुये नितात त्रिपृष्ठ महीप ॥

१०२

गायक शय्यापाल किन्तु था, गाने मे इतना तल्लीन ।
राजा के निद्रित होने की, खबर न उनकी हुई स्वाधीन ॥

१०३

स्वर-लहरी से निद्रा टूटी, नही कोध का पारावार ।
गायक के कानों मे डाली, गर्म गर्म शीशे की धार ॥

१०४

वव्हारम्भ परिग्रह से या, विषय भोग परिणाम स्वरूप ।
आर्त-रौद्र ध्यानो से मर कर, गया सातवे नर्क कुभूप ॥

त्रिपृष्ठ नारायण का जीव क्रूरसिंह की पर्याय में

१०५

कई सागर पर्यन्त नर्क के, दुःख सहे उसने घनघोर ।
निकल वहाँ से हुआ शेर, वह हिंसक पशु गगा की ओर ॥

१०६

फल स्वरूप वह प्रथम नरक, में पहुँचा पुन आयु कर पूर्ण ।
अहँकार मिथ्यात्व आदि सव, विधि के द्वारा होते चूर्ण ॥

१०७

किन्तु भव्य जीवो को निश्चय, सम्यक् दर्शन होता है ।
इने गिने भव शेप अर्द्ध, पुग्दल परिवर्तन होता है ॥

१०८

कल्याण मूर्ति सम्यक् दर्शन, पमु पचेन्द्रिय पा सकता है ।
चेतन का भाग-ज्ञान करके, तप से शिवपुर जा सकता है ॥

क्रूर सिंह की निकट भव्यता

१०६

प्रथम नर्क से निकल पुन, वह सिंह महा विकराल हुआ ।
हिमगिरि की भीषण अटवी मे, खग-मृग सव का काल हुआ ॥

११०

एक दिवस वह कर सिह मृग, पर चढने ही वाला था ।
दो चारण ऋद्धिधारियो ने, त्योही जादू कर डाला था ॥

१११

जय अजितज्जय जय अमिततेज, मुनि करुणा के अवतार महा ।
सिंह से वोले-ठहरो ! ठहरो ! !, तुम को वध का अधिकार कहाँ? ॥

११२

पर्याय मूढता के द्वारा तुम, तो अनादि से भटक रहे ।
तुम आत्म-विपर्यय होकर ही, चहुँगति मे औधे लटक रहे ॥

११३

अब अपनी सम्यक् दृष्टि करो, अपने स्वरूप को पहिचानो ।
त्रैलोक्य धनी तुम 'महावीर', यह दिव्य दृष्टि द्वारा जानो ।।

११४

मिथ्यात्व सरीखा पाप नही, सम्यक्त्व सरीखा धर्म नही ।
शोभा तुम को दे सकता है, इस हिंसा का दुष्कर्म नही ।।

११५

श्री ऋषभदेव के युग से ले, भव-भव मिथ्यात्व रचा तुमने ।
पाखण्डवाद को फैला कर, बस आत्म वचना की तुमने ।।

११६

अब सम्यक् दर्शन धारण कर, श्रावक के व्रत स्वीकार करो ।
हे मृगपति ! पशु निर्दोषो का, मत आगे अब संहार करो ।।

११७

सम्यक्दर्शन सा सुखकारी, तीनो लोको तीनो कालो ।
मिल सकता कोई धर्म नही, सुन लो हे भटके जग वालो ।।

११८

मुनियो के उपदेशामृत सुन, आँखो से आँसू टपक पड़े ।
प्रायश्चित पापो का करके, मृगपति चरणो मे लुढक पडे ।

११९

मुनि वचनो पर श्रद्धा करके, आत्मा का ज्ञान विवेक जगा ।
सम्यक् दृष्टी के दर्शन से लो, युग-युग का मिथ्यात्व भगा ।।

१२०

अब उदासीन श्रावक सा रह, वह अपना समय बिताता था ।
अपने भव-भव के कृत कर्मों पर, बार बार पछताता था ।।

सिंहकेतु देव

१२१

सम्यक्त्व सहित जब मरण किया, सौधर्म-स्वर्ग का देव हुआ ।
थी सिंहकेतु संज्ञा उसकी, अरिहंत भक्त स्वयमेव हुआ ॥

१२२

अभिषेक जिनेश्वर का करता, वह सम्यक् दृष्टी भव्य महा ।
चैत्यो की नित्य वन्दना से, वह जगा रहा भवितव्य वहाँ ॥

१२३

कनकोज्ज्वल राजकुमार

१२४

सौधम स्वर्ग से चय कर फिर, कनकोज्ज्वल राजकुमार हुआ ।
देश कनकप्रभ नृपति पंख, विद्याधर घर अवतार हुआ ॥

१२५

निर्ग्रन्थों के उपदेशो से, हुआ प्रभावित वैरागी ।
सम्यक् तप प्रभाव से पाया, सप्तम स्वर्ग महाभागी ॥

राजा हरिषेण

१२६

आयु पूर्ण कर वह सम्यक्त्वी, अवधपुरी युवराज हुआ ।
वज्रसेन सुत हरीषेण नामक, श्रावक सिरताज हुआ ॥

१२७

श्रुत सागर मुनि से दीक्षित हो, यथाकाल निर्ग्रन्थ हुआ ।
रत्नत्रय तप से प्रशस्त, उनके द्वारा शिव पथ हुआ ॥

१२८

धर्म और पुण्यो के फल से, प्राप्त हुआ तव स्वर्ग दशम ।
सौख्य पूर्ण आयुष्य अन्त मे, हुये चक्रवर्ती उत्तम ॥

चक्रवर्ती प्रियमित्रकुमार

१२९

पुण्डरीकणी है विदेह मे, उसमे ही प्रियमित्रकुमार ।
सहस छियाणव राजरानियो, के थे चक्रवर्ति भरतार ॥

१३०

कोटि अठारह अश्व और गज, थे जिनके चौरासी लाख ।
मुकुटबद्ध राजा सेवक थे, सहस तीस द्वय आगम साख ॥

१३१

एक समय यह चक्रवर्ति नृप, पहुँचे समशरण मे थे ।
वैदेही जिन क्षेमकर के, पावन-पुण्य चरण मे थे ॥

१३२

ससार देह भोगो से होकर, वीतराग तप धारा ।
स्वर्ग द्वादशम चक्रवर्ति ने, पाया उसके द्वारा ॥

युवराज नन्द

१३३

आयु पूर्ण कर चय कर आये, छत्राकार नगर मे ।
नन्दिवर्द्धनम् वीरवती दम्पति, के पावन घर मे ॥

१३४

नन्द नाम युवराज हुआ वह, शुभ सम्यक्त्वी श्रावक ।
'प्रोष्ठिल' मुनि से दीक्षा धारी, तज विपयों की पावक ।।

१३५

अर्हंत् केवली पाद-मूल मे, भाई सोलह कारण ।
भावनाएँ जो पुण्य-प्रकृति का, सर्व श्रेष्ठ है साधन ।।

१३६

तीर्थङ्कर पद की महिमा को, गा न सके जब गणधर ।
सुरपति-सरस्वती फणपति भी, पूजे जिनको हरिहर ।।

१३७

ऐसी पुण्य प्रकृति का बन्धन, करके काया त्यागी ।
स्वर्ग षोडसम् अच्युत मे, वे इन्द्र हुये बडभागी ।।

१३८

निरत तत्त्व चर्चा मे रहकर, आयु पूर्ण होने पर ।
'महावीर श्री' सिद्धारथ सुत, आये त्रिशला के उर ।।

त्रिशलानन्दन का गर्भावतरण

१३९

अढाई हजार वर्ष पहिले जो, आध्यात्मिक सत्क्रान्ति हुई थी ।
परम अहिंसक 'महावीर श्री' द्वारा जग मे शान्ति हुई थी ।।

१४०

प्रियाकारिणी 'श्री-सिद्धारथ' जिनके जननी और जनक थे ।
वैशाली गणतंत्र राज्य के, वे न्यायी अनुपम शासक थे ।।

१४१

अच्युत स्वर्ग से उतर इन्द्र, प्रियकारिणि की कुक्षि पधारे ।
आषाढी षष्ठी शुक्ला को हुये, पूर्ण गर्भोत्सव सारे ॥

१४२

पन्द्रह महिने तक देवो ने, पृथिवी पर वरसाये हीरे ।
माता ने देखे शुभ सोलह, सपने सार्थक धीरे धीरे ॥

१४३

स्वर्गो की छप्पन कुमारिया, जननी की परिचर्या करती ।
विविध पहेली बूझ बूझ कर, गर्भ-भार माता का हरती ॥

वीरश्री का मांगलिक जन्म महोत्सव

१४४

चैत्र सुदी शुभ त्रयोदशी को, हुआ जन्म कल्याणक भारी ।
इन्द्रो द्वारा पाडुक-वन मे, अभिषेको की हुई तैयारी ॥

१४५

इन्द्राणी ने मायामय शिशु, सौर-भवन मे सुला दिया था ।
इन्द्रो ने मिल सपरिवार शिशु, वर्द्धमान अभिषेक किया था ॥

वर्द्धमान श्री के शैशव की वीरोचित क्रीडाएँ तथा

तारुण्य में अनासक्ति

१४६

शैशव सुलभ वाल लीलाएं, लोकोत्तर थी वर्द्धमान की ।
सजय-विजय मुनीश्वर चारण, की शंकाये समाधान की ।।

१४७

ज्यो ही शिशु को देखा उनने, उन्हे तत्त्व का वोध हो गया ।
वर्द्धमान का नाम करण तव, सन्मति से सवोध हो गया ।।

१४८

अष्ट वर्ष के वालक सन्मति, थे सम्यक्त्वी अणुव्रत धारी ।
समचतुस्र सस्थान देह की, धूम त्रिलोको मे थी भारी ।।

१४९

'सगम' नामक एक देव तव, शक्ति परीक्षा लेने आया ।
महा भयकर नाग रूप धर, उसी वृक्ष पर जा लिपटाया ।।

१५०

जिस पर खेल रहे थे सन्मति, साथी सयुत अड-डावरी ।
उतरे फण पर निडर पैर रख, देव विक्रिया हुई वावरी ।।

१५१

अत. तभी से वर्द्धमान शिशु, सन्मति महावीर कहलाये ।
वश मे किया मत्त हाथी जव, तब से नाम वीर का पाये ।।

१५२

धर्म नाम पर जीवित नर-पशु, वैदिक युग मे होमे जाते ।

स्वाथ लोभ वश पडों द्वारा, टिकट स्वर्ग के बाटे जाते ॥

१५३

नग्न नृत्य देखा हिंसा का, धर्म नाम पर आत्म भ्रान्ति को ।
देखा करुण-किशोर वीर ने, अत. जगाया लोक क्रान्ति को ॥

१५४

उसी क्रान्ति के फल स्वरूप ही, आज न दिखती वैदिक हिंसा ।
महावीर से गाधी युग तक, जीवित है सत् शान्ति अहिंसा ॥

१५५

शूद्रो के प्रति घोर घृणा का, छुआछूत का भूत भगाया ।
ऊँच-नीच का भेद हटा कर, नारी का स्वातन्त्र्य जगाया ॥

१५६

घोर परिग्रह स्वार्थवाद ने, गडवड कर दी सभी व्यवस्था ।
धर्म और नैतिकता महँगी, भ्रष्टाचार हुआ था सस्ता ॥

१५७

उस युग का यह दृश्य देख कर, तरुण वीर ने दृढ प्रण कीना ।
और लोक हित तथा आत्म-हित, करने ब्रह्मचर्य व्रत लीना ॥

१५८

लावण्य अलौकिक था किशोर का, आये शत विवाह प्रस्ताव ।
माँ का आग्रह हुआ पराजित, देख वीर का शील स्वभाव ॥

विरागी वीर का दीक्षा तथा तप कल्याणक

१५९

युवा वीर ने तीस वर्ष तक, सफल संभाला युवराजत्व ।

वाल ब्रह्मचारी गृहस्थ रह, देखा जग का नि सारत्व ॥

१६०

मगसिर कृष्णा दशमी के दिन, राज़-पाट वैभव ठुकरा कर ।
वीर-विरागी नें तन-मन से, दिगम्वरत्व का दीप जलाकर ॥

१६१

ॐ नम सिद्धेभ्य· पूर्वक केशों, का लुचन कर डाला ।
लौकान्तिक दीक्षा कल्याणक, पर लाये अनुमोदन माला ॥

१६२

ज्ञातृखड नामक अरण्य की ओर, चली चन्द्रप्रभा पालकी ।
मानव सुर गण द्वारा वाहित, भावलिङ्ग मुनि वीर वाल की ॥

१६३

आत्म स्वभाव साधना वल से, वारह वर्ष किया तप भारी ।
अट्ठाईस मूल गुण पालन करते, चतुर ज्ञान के धारी ॥

उपसर्ग एवं परीषह विजयी महाश्रमण महावीर

१६४

मासों के उपवासी प्रभु के, आहारों की सविधि आकड़ी ।
परीपहो की उपसर्गों की, सम सहिष्णुता वहुत कडी ॥

१६५

चले उसी वन वीर जहाँ वह, सर्प चडकौशिक रहता था ।
जहरीली फुकारो से जो, दावानल वनकर दहता था ॥

१६६

क्रोधित होकर ज्यो ही उसने डसा, वीर-प्रभु के मृदु-पग में ।
लगी निकलने धार दूधिया, त्यो ही अगूठे की रग मे ॥

१६७

सौंप गया वह पशु गण अपने, महावीर को चरवाहा था ।
आकर वापिस ले लूंगा मैं, उसने ऐसा ही चाहा था ॥

१६८

किन्तु मौन ध्यानस्थ वीर को, इन वातो से था क्या मतलव ।
अत दुष्ट ने कर्ण युगल मे, कीला ठोक दिया ही था तव ॥

१६९

ग्यारहवाँ 'भव' रुद्र वीर के, तप की कठिन परीक्षा लेने ।
उज्जयिनी के श्मशान मे, जोर जोर से लगा गरजने ॥

१७०

विविध भयावह विद्रूपो से, तथा सहस्र सेनाओ द्वारा ।
शेर - वाघ - चीते - मायावी, आधी - वर्षा - मूसल धारा ॥

१७१

कान - खजूरे - विच्छू - विषधर, डाँस आदि तन पर लिपटाये ।
रुद्र देव कृत उत्पातो से, किन्तु 'वीर' नहिं रच डिगाये ॥

१७२

धीर-वीर-गभीर सौम्य थी, शान्त सहिष्णु वीर की मुद्रा ।
आत्म शक्ति से हार गई थी, क्षुद्र रुद्र की माया रुद्रा ॥

१७३

रुद्र रौद्र परिणामो द्वारा नरक, आयु का पात्र हो गया ।
सु-विख्यात अति वीर नाथ का, तप कर स्वर्णिम गात्र हो गया ॥

१७४

लोक विजेता महामल्ल सब, काम-सुभट योद्धा से हारे।
रभा और तिलोत्तमाओ पर, हरिहर ब्रह्मादिक भी वारे॥

१७५

तप से विचलित करने प्रभु को, अप्सराओ ने हाव-भाव से।
खूब रिझाया महावीर को, हार गई पर ब्रह्म-भाव से॥

१७६

पर ब्रह्म मे लीन तपस्वी, डावांडोल हुआ नहिं किञ्चित्।
प्रलय-पवन से हिले शैल पर, मन्दराद्रिर्नहिचलितकदाचित्॥

पद दलिता चंदना के हाथों महावीरश्री द्वारा आहार ग्रहण

१७७

वैशाली गणतत्र, सघ के, अधिनायक राजा चेटक थे।
महावीरश्री के मातामह, वे तो जनकसुता-सप्तक थे॥

१७८

राजकुमारी सती चंदना, कन्या थी षोडस वर्षीया।
अपहृत एव पितृ वियुक्ता, त्रस्ता सुन्दरि अति कमनीया॥

१७९

क्रीता दासी केश मुडिता, दलिता दुखित वन्दिनी थी।
खाने को कोदो के दाने, सेठानी से पाती थी॥

१८०

षण् मासिक उपवासी प्रभुवर, आहारार्थ निकलते हैं।
उपर्युक्त अनुसार आखडी, की विधि लेकर चलते हैं।

१८१

उस अभागिनी दासी ने, जव महा श्रमण को पडगाहा ।
टूटी जजीर गुलामी की, देवो ने सौभाग्य सराहा ।।

१८२

कोदो के दाने खीर वने, फिर निरन्तराय आहार हुआ ।
पचाश्चर्य चन्दन दासी का, सचमुच पतितोद्धार हुआ ।।

अरहंत परमेष्ठी सर्वज्ञ महावीर

१८३

द्वादश तप द्वादश वर्षों तक, करते रहे श्रमण भगवान् ।
शुक्ल ध्यान से क्षपक श्रेणि, चढ पहुँचे वारहवें गुण थान ।।

१८४

प्रकृति तिरेसठ कर्म घातिया, किये नष्ट अरिहत हुये ।
त्रैकालिक त्रैलोक्य विलोकी, वें केवलि भगवत हुये ।।

१८५

ऋजुकूला सरिता के तट पर, महावीर सर्वज्ञ वने ।
वैसाखी शुक्ला दशमी को, देवोत्सव भी हुये घने ।।

वीरश्री की विराट् धर्म-सभा की अलौकिक छटा

१८६

देवेन्द्रो द्वारा रचित सभा, मडप वैभव युत समवशरण ।
त्रय गोलाकार प्रकोट सहित, विस्तृत सर्वोदय का कारण ।।

१८७

मानाङ्गण मे चौपथ चौदिशि, जिन प्रतिमा मानस्तम्भ खडे ।
उनके आगे सरवर सुन्दर, पुनि प्रथम कोट में रजत जड़े ॥

१८८

खाई को घेरे वन-उपवन पुनि, दिशा चतुर्दिक ध्वजा पीठ ।
फिर स्वर्णिम कोट दूसरा है, द्वारों पर भवनों के किरीट ॥

१८९

पुनि कल्पवृक्ष वन मे मुनि सुर, के वने हुये हैं सभा-भवन ।
है मणिमय कोट तृतीय रचा, द्वारों पर कल्पो के सुर-गण ॥

१९०

पुनि लता-भवन स्तूप आदि, श्री मंडप क्रमश. तने हुये ।
है केन्द्र स्थल मे गधकुटी, चहुँ दिशा कक्ष हैं वने हुये ॥

१९१

इन वारह कक्षो मे क्रमश., मुनि कल्पवासिनी आर्यिकाएँ ।
ज्योतिप व्यन्तर भवनत्रिक, की हैं समासीन देवाङ्गनाएँ ॥

१९२

फिर देव-भवन व्यन्तर ज्योतिष, अरु कल्पवासि नर पशु के हैं ।
ये सभी सभ्य श्रोता वन कर, सन्मति वाणी को सुनते हैं ॥

महावीरश्री के प्रमुख गणधर का अविर्भाव

१९३

उस गधकुटी कमलासन पर, हैं अन्तरीक्ष श्री वर्द्धमान ।
है समवशरण के जीव सभी, दिव्यध्वनि श्रवणातुर महान ॥

१६४

सर्वज्ञ केवली हुये वीर, फिर भी दिव्यध्वनि नही खिरी ।
छियासठ दिन यद्यपि बीत गये, फिर भी मौनी हैं वीर श्री ॥

१६५

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र शीघ्र, इसका रहस्य जव जान चुका ।
तव वृद्ध विप्र का स्वाँग बना, गुरु कुलाचार्य के निकट रुका ॥

१६६

जो पच शतक निज शिष्यो को, वेदान्त पढाया करता था ।
निज विद्या-प्रतिभा का मिथ्या, वस दभ सदा ही भरता था ॥

१६७

उस युग ने लोहा माना था, उसके अकाट्य शास्त्रार्थों का ।
था याज्ञिक क्रिया काड वेत्ता, ज्ञाता था नाना अर्थों का ॥

१६८

हो ज्ञान अल्प अथवा अतिशय, पर यदि उसमे सम्यकता है ।
तो वन्दनीय वह देवो से, वरना वह कोरा मिथ्या है ॥

१६९

था 'इन्द्रभूति' गौतम वहुश्रुत, आचार्य किन्तु मिथ्यात्वी था ।
पर गणधर होने योग्य पात्र, वस एक मात्र वह द्विज ही था ॥

२००

जिनवर वाणी जो झेल सके, उस युग का ऐसा योग्य पात्र ।
सौधर्म इन्द्र की प्रज्ञा में, था इन्द्रभूति ही एक मात्र ॥

२०१

इसलिये वृद्ध का स्वाँग वना, वह इन्द्र विप्र को ले आया ।
उस समवशरण की ओर जहाँ, था मानथम्भ उन्नत काया ॥

२०२

फिर क्या था गौतम ज्ञानी का, मिथ्या-मद सारा चूर हुआ ।
स्तम्भ देख स्तम्भित था, मिथ्यात्व अंधेरा दूर हुआ ॥

२०३

सम्यक्त्व जगा निर्ग्रन्थ हुआ, सन्मति का गणधर वन पहला ।
श्रुत द्वादशाग मे भाव गूथ, जिनवाणी अमृत रहा पिला ॥

तीर्थंकर भगवान् महावीर के अमर संदेश

२०४

जिस दिवस दिव्यध्वनि खिरी, प्रथम वह सावन कृष्णा थी पावन ।
तिथि महावीर के शासन की, प्रतिपदा मांगलिक मन भावन ॥

२०५

विपुलाचल से दिया गया, जो प्रथम देशना का सन्देश ।
गौतम गणधर ने गूथा है, उसको ही सामान्य-विशेष ॥

२०६

वीतरागता परम अहिंसा, स्याद्वाद सर्वोदय ही ।
कर्मवाद नि:सगवाद है, द्वादशांग वाणी मय ही ॥

२०७

पर द्रव्यो से भिन्न सर्वथा, ज्ञान ज्योति हर चेतन है ।
स्वाभाविकता वीतरागता, वैभाविकता बन्धन है ॥

२०८

जीने का अधिकार सभी को, स्वय जियो जीने भी दो ।
शेर गाय को एक घाट पर, करुणा-जल पीने भी दो ॥

२०९

आत्मा को प्रतिकूल लगे जो, औरो को भी वह प्रतिकूल ।
नही चुभाओ अत किसी को, कभी दुख हिसा के शूल ।।

२१०

अपने वीतराग चेतन मे, राग-द्वेष का प्रादुर्भाव ।
खुद की हिसा करने वाला, कहलाता है हिसक भाव ।।

२११

उसी भाव हिसा के द्वारा, औरों की हिसा करना ।
सकल्पी उद्यमी विरोधी, आरम्भी हिसा कहना ।।

२१२

है अनन्त गुण सत्ता वाला, जड चेतन प्रत्येक पदार्थ ।
हर पहलू से उसे देखना ही, है सम्यग्दृष्टि यथार्थ ।।

२१३

स्याद्वाद का सत्य कथञ्चित्, मुख्य गौणता पर निर्भर ।
पूरक वन कर वहा रहा है, धर्म समन्वय का निर्झर ।।

२१४

साम्यवाद या सर्वोदय का, जीता जगता उदाहरण ।
था समाजवादी रचना मय, महावीर का समवशरण ।।

२१५

भेद भाव से भिन्न आत्मा, पृथक लोक व्यवहारो से ।
परमातम का रूप लिये, निश्चयत विविध प्रकारो से ।।

२१६

जैसी करनी वैसी भरनी, यही कर्म का नियत विधान ।
पुण्य-पाप के फल सुख-दुख हैं, जानो जग को कर्म प्रधान ।।

२१७

केवल ज्ञाता-दृष्टा रह कर, पुण्य-पाप के देखो खेल।
हर्ष-विषादो की लहरो को, समता-सागर वन कर झेल॥

२१८

अष्ट कर्म पर विजय प्राप्त कर, लेना है उत्तम पुरुषार्थ।
नही बैठना भाग्य भरोसे, कर्मवाद सिद्धान्त यथार्थ॥

२१९

सग्रह और परिग्रह धन का, है तृष्णा का घृणित स्वरूप।
पर पदार्थ से भिन्न सर्वथा, परम अकिंचन है चिद्रूप॥

२२०

आवश्यक्ताओ की मर्यादाओं, से बाहर जाना।
घोर पाप है यहाँ स्वार्थ, मय विषमताओं का उपजाना॥

देश-विदेश में वीरश्री की पद यात्राएँ

२२१

अर्हत्केवली वर्द्धमान का, प्रवचन हेतु विहार हुआ।
वैशाली वाणिज्य ग्राम मे, समवशरण तैयार हुआ॥

२२२

अंग कलिग सुकौशल अश्मक, मालव हेमागद पाचाल।
वत्स दशार्णव सौर देश मे, समवशरण था रचित विशाल॥

२२३

इस चैतन्य क्रान्ति की लहरों, नें युग का प्रक्षाल किया।
भीगा रस से कोना कोना, लोकत्रय खुशहाल किया॥

वीर शासन से प्रभावित व्यक्तित्व

२२४

श्रमणोत्तम गौतम इत्यादिक, ग्यारह प्रमुख सघ गणधर थे ।
वारिषेण आदिक अट्ठाईस, सहस्र विविध ज्ञानी मुनिवर थे ॥

२२५

छत्तीस सहस्र आर्यिकाओ मे, सर्व प्रथम थी सती चदना ।
श्रावक और श्राविका चौलख, करे वीर की सतत वन्दना ॥

२२६

श्राविकोत्तम राजा श्रेणिक, बिम्बसार थे सघ अग्रणी ।
महिलाओ की सघ नायिका, सम्यक्त्वी थी राज्ञि चेलनी ॥

२२७

वीर सघ के समवशरण मे, थे शतेन्द्र नर-सुर-विद्याधर ।
पशु-पक्षी तिर्यञ्च सभी थे, महावीर स्वामी के अनुचर ॥

२२८

राजा श्रेणिक वौद्ध धर्म तज, क्षायिक सम्यक्त्वी हो जाते ।
वर्द्धमान के पद-मूल में, भावी तीर्थङ्कर पद पाते ॥

२२९

साठ हजार किये प्रभुवर से, प्रश्न उन्होने समवशरण में ।
फल स्वरूप अनुयायी बन कर, भूमण्डल ही गिरा चरण मे ॥

२३०

एक कूप मंडूक भक्ति वश, कमल पखुडी लेकर आया ।
श्रेणिक के गजराज पैर से, कुचल शीघ्र ही सुर पद पाया ॥

२३१

विद्युतचर से चोर तथा, अर्जुनमाली से डाकू निर्दय ।
आत्म समर्पण वीर चरण मे, करके बने मुनीश्वर निर्भय ।।

२३२

श्रावक था आनन्द नाम का, भूमि और पशु-धन का स्वामी ।
कर प्रमाण परिग्रह का वह, बना वीर प्रभु का अनुगामी ।।

२३३

इस प्रकार प्रभु वीतराग के, परम अहिसा मयी धर्म से ।
हुआ प्रभावित सारा ही युग, जिन-शासन के गूढ मर्म से ।।

महावीर श्री का परिनिर्वाण महोत्सव एवं दीपावली का शुभारम्भ

२३४

तीस वर्ष तक महावीर श्री, ने सब जीवो को संबोधा ।
और एक दिन पावापुर के, उपवन में आ योग निरोधा ।।

२३५

कार्तिक कृष्ण अमावस की थी, सु-प्रभात वह मगल वेला ।
सिद्धालय मे हुआ विराजित, सन्मति प्रभु का जीव अकेला ।।

२३६

अष्ट कर्म कर नष्ट सिद्ध पद, पाजाते हैं त्रिशला-नन्दन ।
ज्ञान शरीरी सिद्ध प्रभू के, चरण-कमल में शत शत वन्दन ।।

२३७

पावन पावापुर की धरती, धन्य धन्य उसका उद्यान ।
देवेन्द्रो ने जहाँ मनाया, कल्याणक उत्सव निर्वान ॥

२३८

मणिमय शिविका मे स्थित वह, प्रभु की परमौदारिक देह ।
पूजन-अर्चन कीर्ति-सुरभि से, लोक व्याप्त थी निः सन्देह ॥

२३९

अग्निकुमार देव नत मुकुटो द्वारा, प्रकटित हुई कृशानु ।
उसके द्वारा दग्ध हुये उनके, कर्पूरी तन परमानु ॥

२४०

फिर विभूति-रज लौकिक जन, के माथो का श्रङ्गार बनी ।
पावापुर के रम्य जलाशय, का आगे आधार बनी ॥

२४१

रत्नवृष्टि करके देवों ने, पावापुर जगमगा दिया ।
कार्तिक कृष्ण अमावश निशिका, मोह महातम भगा दिया ॥

२४२

तव से अव तक लौकिक युग ने, यहाँ मनाई दीपावलिया ।
वीर-चरण में इस प्रकार की, सतत समर्पित श्रद्धाञ्जलिया ॥

२४३

केवल ज्ञान मोक्ष लक्ष्मी की, पूजन वर्द्धमान पूजन है ।
लौकिक लक्ष्मी की उपासना, भव-भव दुखकारी वन्धन है ॥

वर्द्धमानश्री की सार्थकता

२४४

इन पच्चीस शतक वर्षों मे, वदल चुका इतिहास जगत का ।
भौतिकता की चकाचौध मे, विस्मृत हुआ नाम भगवत का ॥

२४५

अवसर्पिणि कलिकाल पाचवा, इसमे सव कुछ हीयमान है ।
वीर-पथ पर चलने वाला, चेतन ही वस वर्द्धमान है ॥

युग-युग की मंगल कामनाएँ

२४६

महा गर्भ-कल्याणक धारी, महावीर कल्याण करो ।
महा जन्म-कल्याणक धारी, वर्द्धमान भव-त्राण हरो ॥

२४७

दीक्षा - कल्याणक धारक, हे वीर नाथ मगल कारी ।
केवल ज्ञान-भानु प्रकटाओ, हे सन्मति केवल धारी ॥

२४८

परम मोक्ष कल्याणक पथ पर, हे अतिवीर लगा देना ।
पच परम गुरु के वचनो से, भव-भव हमे जगा देना ॥

२४९

पच्चीस शतक वीं यह शताब्दी, युग युगान्त तक रहे अमर ।
महावीर का जीवन दर्शन, अनुप्राणित होये घर-घर ॥

जिन शासन की कीर्ति पताका
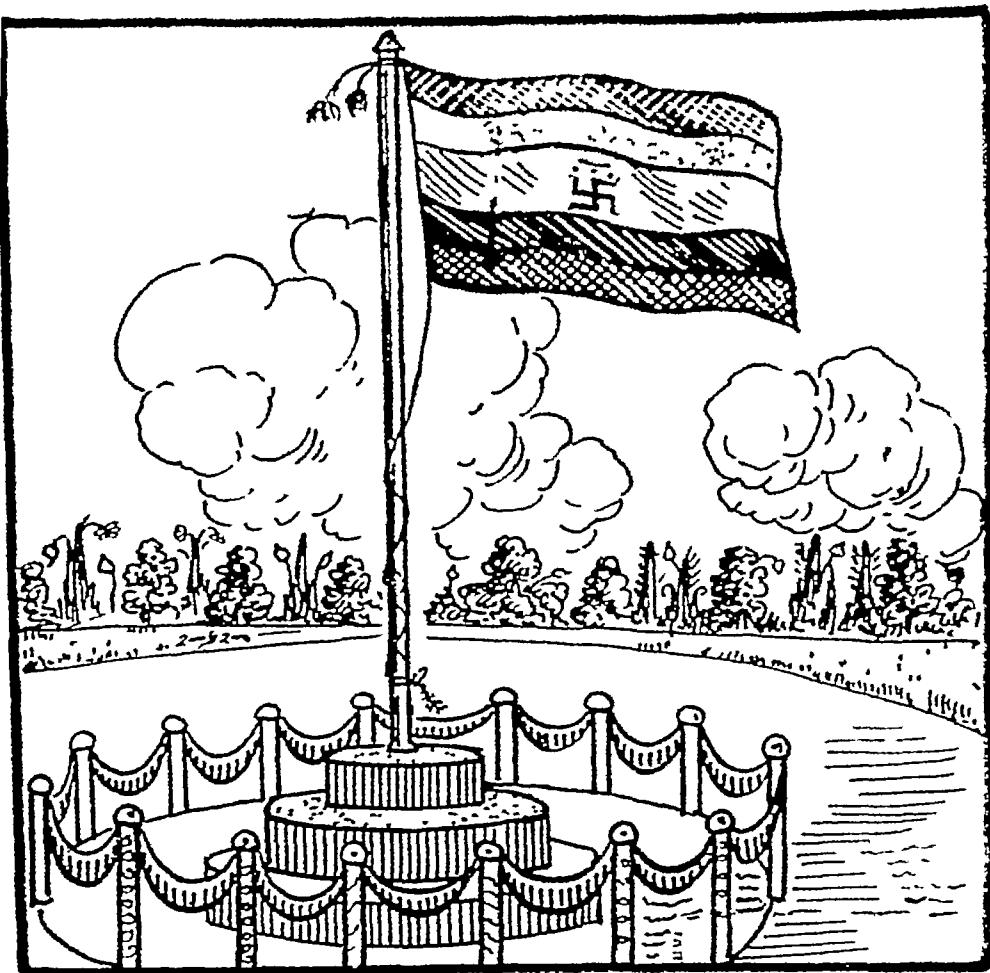
आदि ऋषभ के पुत्र भरत का, भारत देश महान् ।
ऋषभदेव से महावीर तक, करे सु-मगल गान ।।
पॅचरग पाचो परमेष्ठी, युग को दे आशीष ।
विश्व-शान्ति के लिये झुकावे, पावन ध्वज को शीष ।।
जिन की ध्वनि जैन की सस्कृति, जग जग को वरदान ।
आदि ऋषभ के पुत्र भरत का, भारत देश महान ।।

समर्पण
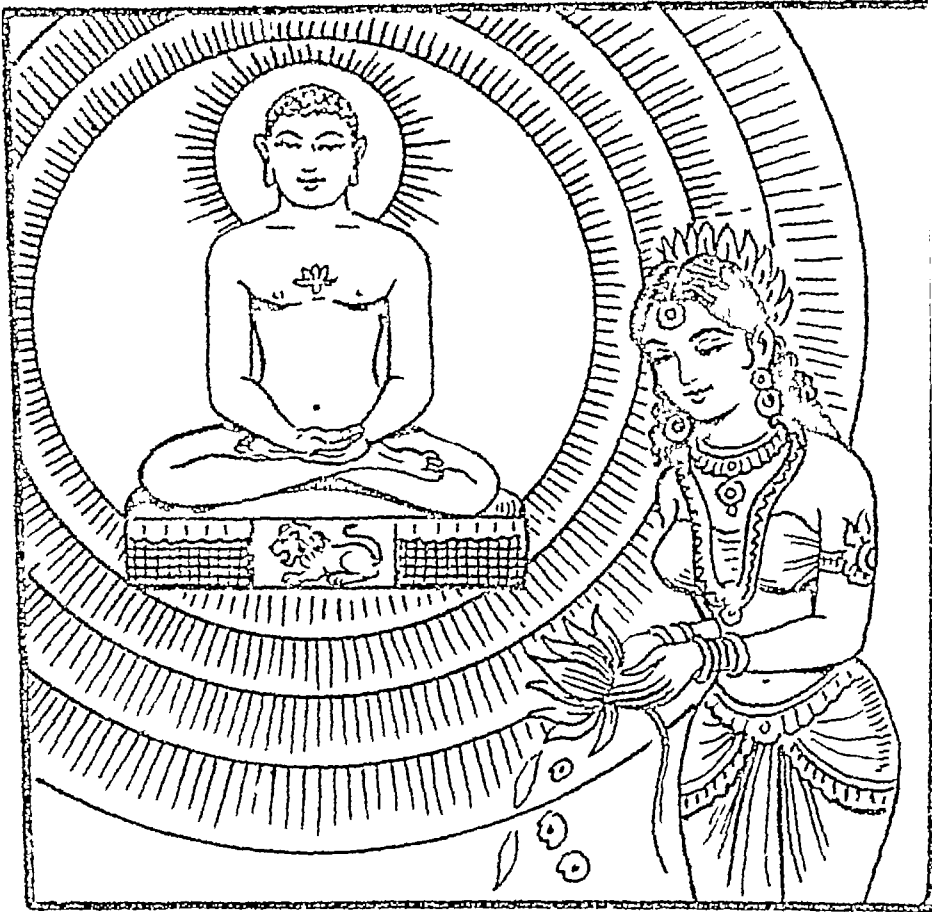
जिनका केवल ज्ञान चराचर, लोकालोक विलोकी दर्पण ।
महावीर श्री चित्र-शतक यह, उनके ही चरणों मे अर्पण ॥
यद्यपि यह उपचार मात्र है, तो भी निश्चय जागरूक है ।
वाचक जितना ही मुखरित है, उतना ही यह वाच्यमूक है ॥
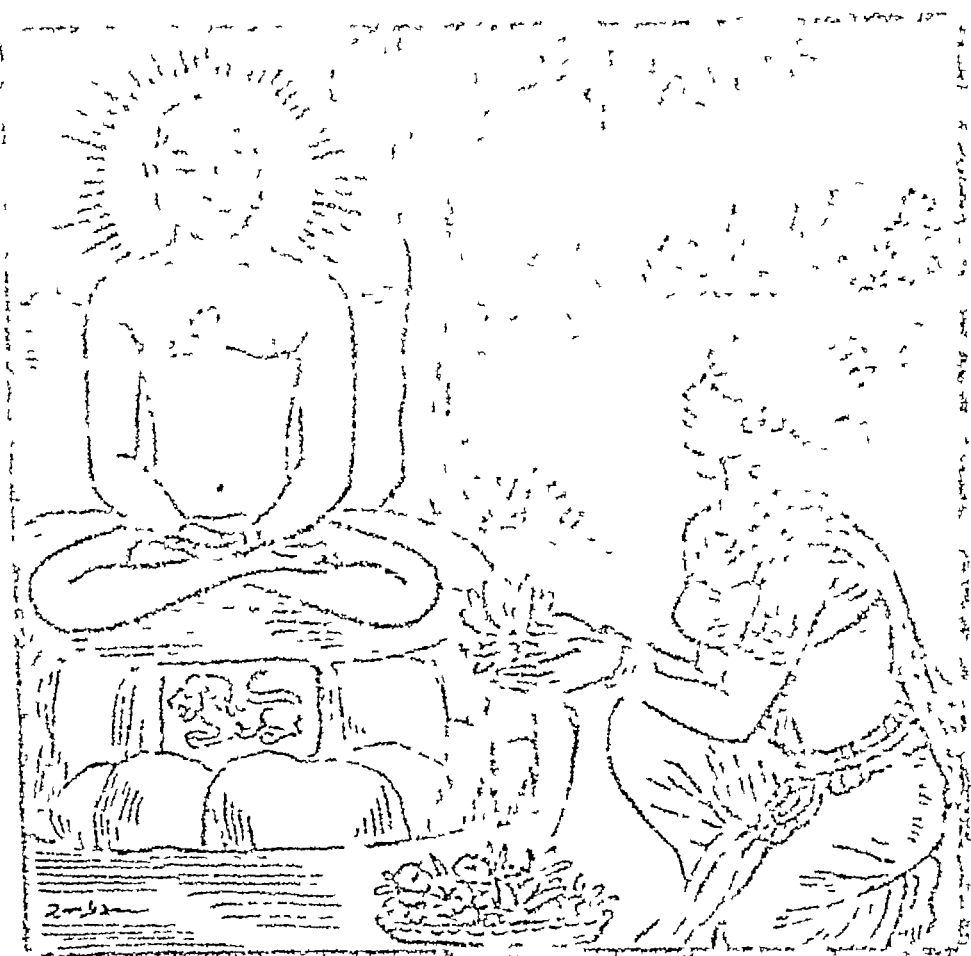
श्रद्धा के मणि मुक्ता कण से स्वर्णिम सजी ज्ञान मंजूषा ।
तपश्चरण पर करें निछावर मंजु रश्मिमयी मंगल ऊषा ।।
शुक्ल ध्यान की केवल किरणें केन्द्रीभूत हुई हैं ।
तेज मात्र से कर्मादितिया भस्मीभूत हुई हैं ।।

जैन प्रतीक तथा वर्द्धमान कीर्ति स्तम्भ
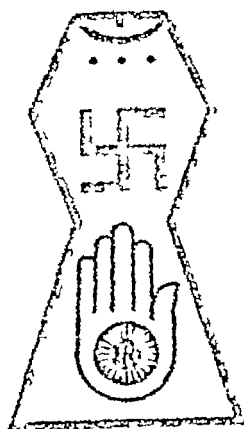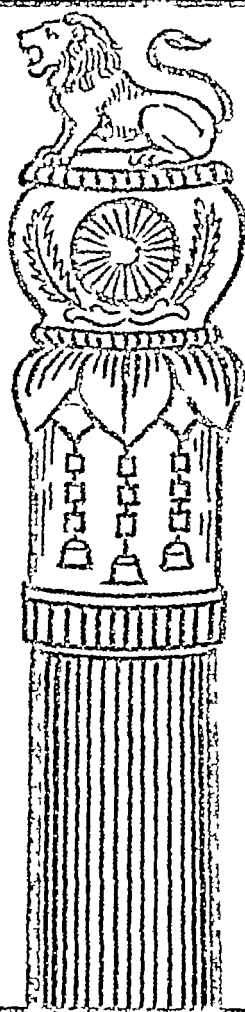
वर्द्धमान की अमर कीर्ति का, स्मारक स्तम्भ यही।
वीतराग-विज्ञान कला का, करता है प्रारम्भ यही॥
अनेकात अपरिग्रह एव, परम अहिंसा की जय हो।
धर्मचक्र सा हो अशोक, ऐव मृगेन्द्र सा निर्भय हो॥

वर्द्धमान प्रतीक
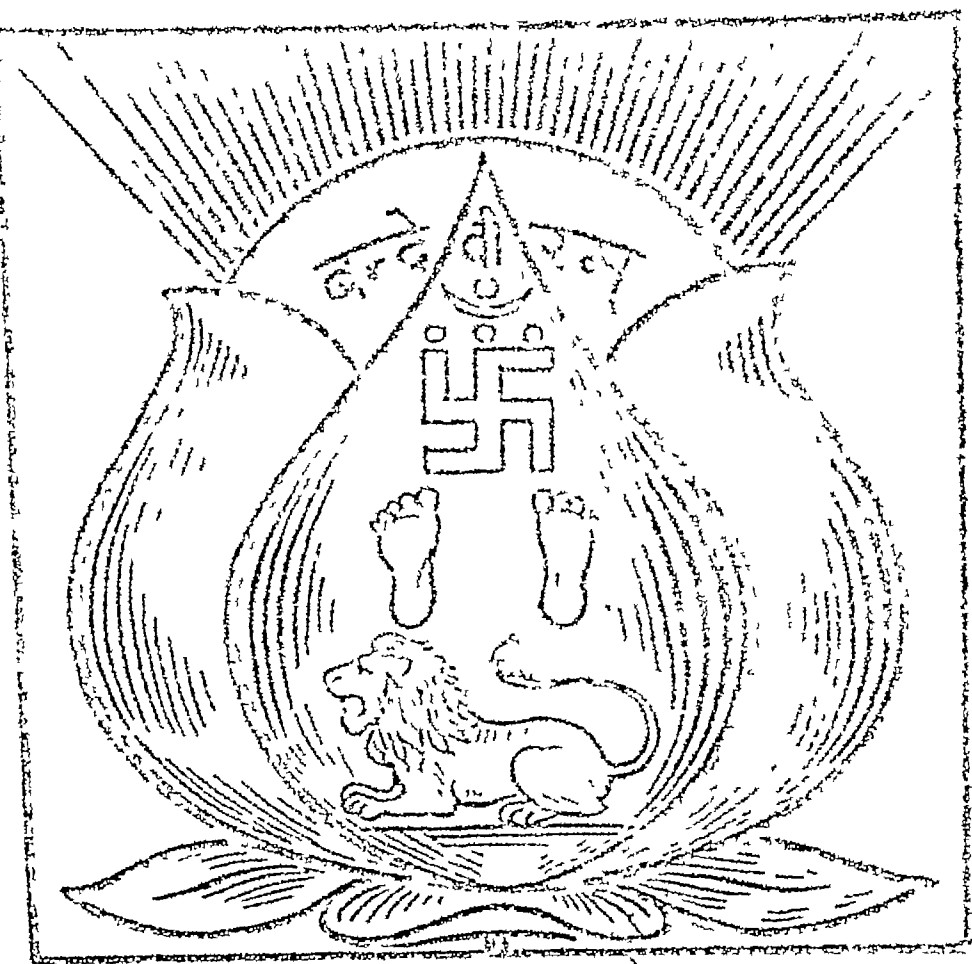
जिनने अपने को जीता हो, उनको महावीर कहते हैं ।
उनके स्वस्तिक चरण कमल युग, मेरे चेतन में रहते हैं ॥
रवि-प्रताप शशि शीतलता का, सिंह वीरता का प्रतीक है ।
महावीर का जीवन-दर्शन, तो नितान्त ही शोभनीक है ॥

वीर-शासन-चक्र

भरत क्षेत्र की कर्मभूमि मे, तीर्थंकर होते आये ।
वे अनादि से आतमतत्व का, अनुशासन बोते आये ॥
अमर रहे ऐसे जिनशासन, के ये चौवीसो आरे ।
आदि और वीरान्त प्रभू के रहे गूँजते जय-नारे ॥

धर्म-चक्र
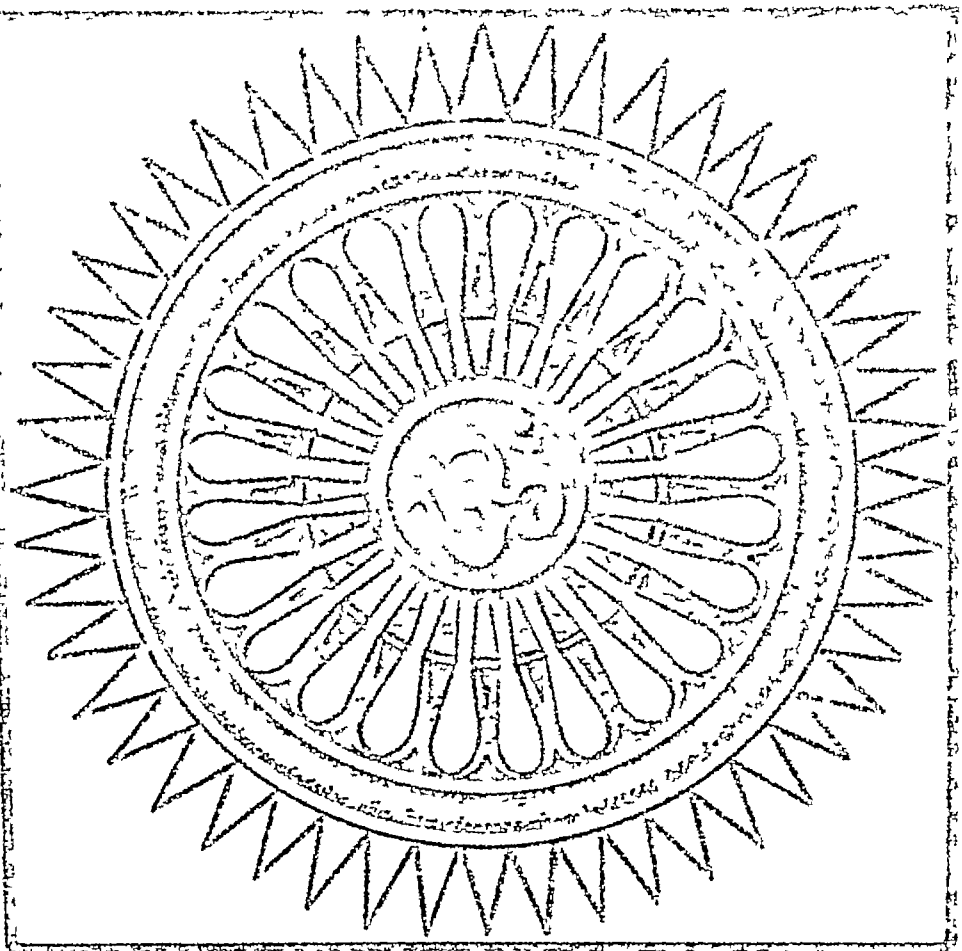
समवशरण के आगे आगे धर्म-चक्र जो चलता है ।
तीर्थंकर के अतिशय पुण्यो की यह परम सफलता है ॥
धर्म-चक्र से हो सचालित प्राणि मात्र का जीवन हो ।
ज्ञान चरित जीवन के आगे सम्यक् चक्र सुदर्शन हो ॥

"श्री"

षोडस अलंकारों से विभूषित युवराज वर्द्धमान

(१)

यद्यपि श्रीवर वर्द्धमान की है किशोर प्रस्तुत प्रतिमूर्ति ।
तो भी इसे न समझा जावे श्वेताम्बर भूषण की पूर्ति ॥

(२)

क्योकि झलकती इसमे उनकी अनासक्त गृहस्थावस्था ।
इसको त्याग दिगम्बर मुद्रा धारेगे सौम्यावस्था ॥

(३)

अलंकार थे इस प्रकार उन राजकुमार सलौने के ।
मणि माणिक्य जवाहर हीरे मोती चादी सोने के ॥

(४)

शेखर कंकण चचल कुडल अगद कर्णफूल केयूर ।
ग्रैवेयक आलंबक मुद्रा कटीसूत्र मजीर प्रपूर ॥

(५)

कटक पदक श्रीगध मध्यवधुर सुन्दरतम आभूषण ।
पट्टहार युत अलंकार शुभ सोलह करते थे धारण ॥

(६)

अपने जीवन काल मध्य क्या ? पूजे जाते थे युवराज ।
हाँ उसकी साक्षी मे प्रतिकृति तत्कालीन मिली है आज ॥

(७)

राज मुकुट आभूषण मडित वर्द्धमान जयवन्त रहे ।
ध्यान मग्न त्रिशत वर्षीय युग कुमार जीवन्त रहे ॥

रत्नगर्भा वसुन्धरा से वीर बिम्ब का आविर्भाव
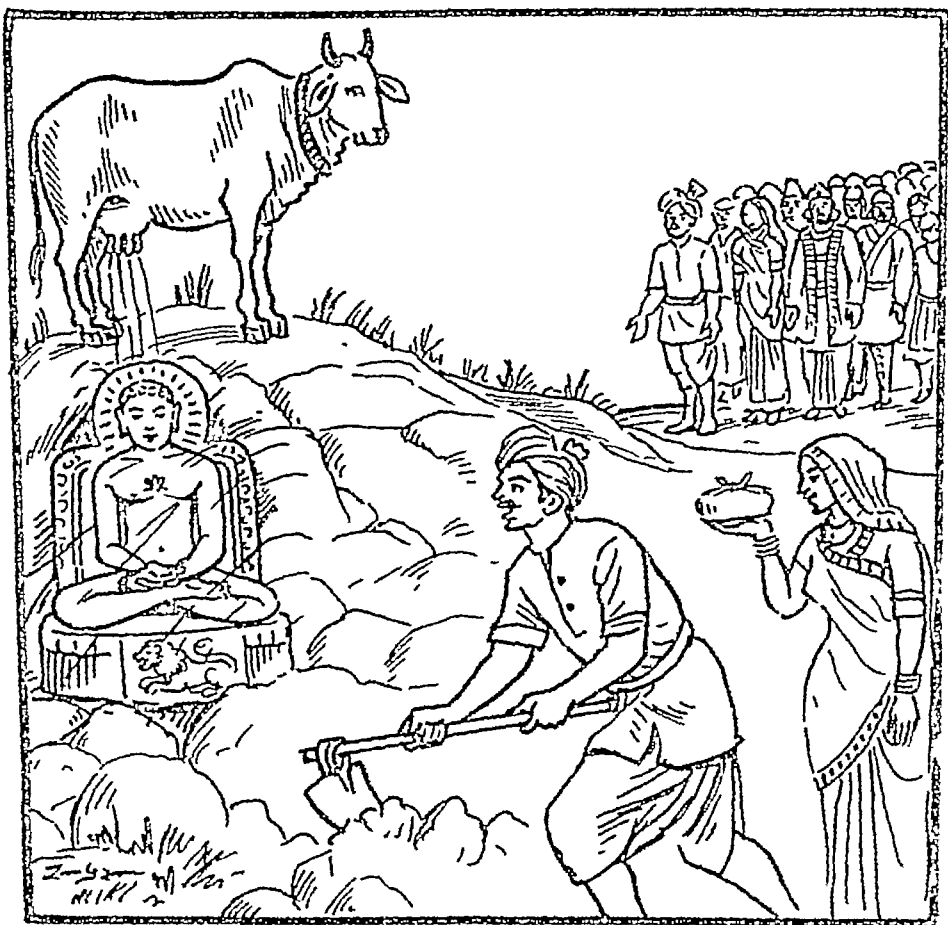
शुभ शकुनो की सत् निमित्त की ऐसी ही कुछ परपरा है।
जव जव गर्भित मणि रत्नो को प्रकटाती यह वसुधरा है ॥
तव तव वत्सलता की धाग दूधो उन्हे नहाती है।
कामधेनु वन महावीर श्री की प्रतिभा प्रकटाती है ॥

महावीरश्री अतीत की परतो मे–

१ भिल्लराज पुरुरवा
२ सौधर्म स्वर्ग मे देव
३ भरतपुत्र मारीचिकुमार
४ ब्रह्मस्वर्ग मे देव
५ जटिल ब्राह्मण ऋषि
६ सौधर्मस्वर्ग मे देव
७ पुष्पमित्र ब्राह्मण ऋषि
८ सौधर्मस्वर्ग मे देव
९ अग्नि सह ब्राह्मण साधु
१० सनत्कुमारस्वर्ग मे देव
११ अग्निमित्र ब्राह्मण साधु
१२ माहेन्द्रस्वर्ग मे देव
१३ भारद्वाज ब्राह्मण ऋषि
१४. ब्रह्मस्वर्ग मे देव
१५ स्थावर द्विज
१६ माहेन्द्रस्वर्ग मे देव
१७ युवराज विश्वनन्दी
१८ महाशुक्र स्वर्ग मे देव
१९ त्रिपृष्ठ नारायण
२० सातवे नर्क मे नारकी
२१ हिंसक सिंह
२२ प्रथम नर्क मे नारकी
२३ क्रूर हिंसक सिंह
२४ सौधर्मस्वर्ग मे सिंहकेतु देव
२५ कनकोज्ज्वल विद्याधर
२६ लान्तवस्वर्ग मे देव
२७ हरिषेण राजा
२८ महाशुक्र स्वर्ग मे देव
२९ प्रियमित्रकुमार चक्रवर्ती
३० सहस्रारस्वर्ग मे देव
३१ युवराज नन्दकुमार
३२ अच्युतस्वर्ग मे देव

३३ तीर्थङ्कर महावीर-वर्द्धमान

नोट :—नं० १४ तथा १५ वे भवो के अन्तराल मे मारीचि के जीव की पर्यायो का इतिहास इतना अधिक अन्धकार पूर्ण रहा है जो वर्णनातीत है। इस अन्धकार पूर्ण काल मे मारीचि के जीव ने नरक निगोद, विकलत्रय त्रस स्थावर आदि चौरासी लाख योनियो मे भव भ्रमण किया जिसका उल्लेख क्रमबद्ध रूप से जैन पुराणो मे नही मिलता।

—सम्पादक

हीयमान से वर्द्धमान

प्रथम तीन पर्यायें क्रमश महावीर की निम्न प्रकार ।
पुरुरवा, सौधर्म स्वर्गसुर, भरत-पुत्र मारीचि कुमार ॥१॥
फिर चौथी से लेकर छटवी पर्यायो का है इतिहास ।
ब्रह्म स्वर्गसुर जटिल तपस्वी प्रथम स्वर्ग मे पुन निवास ॥२॥
सप्तम से नवमे भव तक फिर उनने यो भव भ्रमण किया ।
पुष्पमित्र पुनि प्रथम स्वर्ग मे अग्निमित्र अवतरण किया ॥३॥
दशवाँ ग्यारहवाँ बारहवाँ, भव क्रमश इस भाँति भये ।
सनत्कुमार स्वर्गसुर होकर अग्निभूति माहेन्द्र गये ॥४॥
तेरहवाँ एव चौदहवाँ भव उनके इस भाँति हुए ।
भारद्वाज विप्र मर करके ब्रह्म स्वर्ग मे देव हुए ॥५॥
इसके बाद अनन्त काल तक नर्क निगोद प्रवास किया ।
स्थावर विकलत्रय त्रस मे युगो युगो तक वास किया ॥६॥
फिर पन्द्रहवाँ भव स्थावर नामक ब्राह्मण रूप हुआ ।
सोलहवे भव स्वर्ग चतुर्थ जाकर देव अनूप हुआ ॥७॥
सत्रहवाँ भव विश्वनन्दि मुनि महाशुक्र अट्ठारहमाँ ।
था उनीसवाँ नारायण पद बीसम नारक महातमा ॥८॥
इक्कीस और बाईस तथा तेईस हुए भव यो क्रमश. ।
सिह नारकी प्रथम नर्क का, सम्यक्त्वी सिह हुआ पुन ॥९॥
चौबीस और पच्चीस तथा छब्बीस भवो की पर्याये ।
सौधर्म स्वर्ग सुर विद्याधर फिर स्वर्ग सातवे पहुचाये ॥१०॥
सत्ताईस नृपति हरिषेणा महाशुक्र सुर अट्ठाईश ।
चक्रवर्ति उनतीस तीसवे सहस्रार के हुए अधीश ॥११॥
एकतीसवे भव मे आये बनकर मुनिवर नन्दकुमार ।
बत्तीसम मे लिया जिन्होने अच्युत स्वर्ग मे सुर अवतार ॥१२॥
अन्तिम भव मे अच्युत स्वर्ग से चयकर सुत सिद्धार्थ हुए ।
हीयमान से वर्द्धमान यो सिद्ध प्रसिद्ध कृतार्थ हुए ॥१३॥

भिल्लराज पुरुरवा का उद्धार
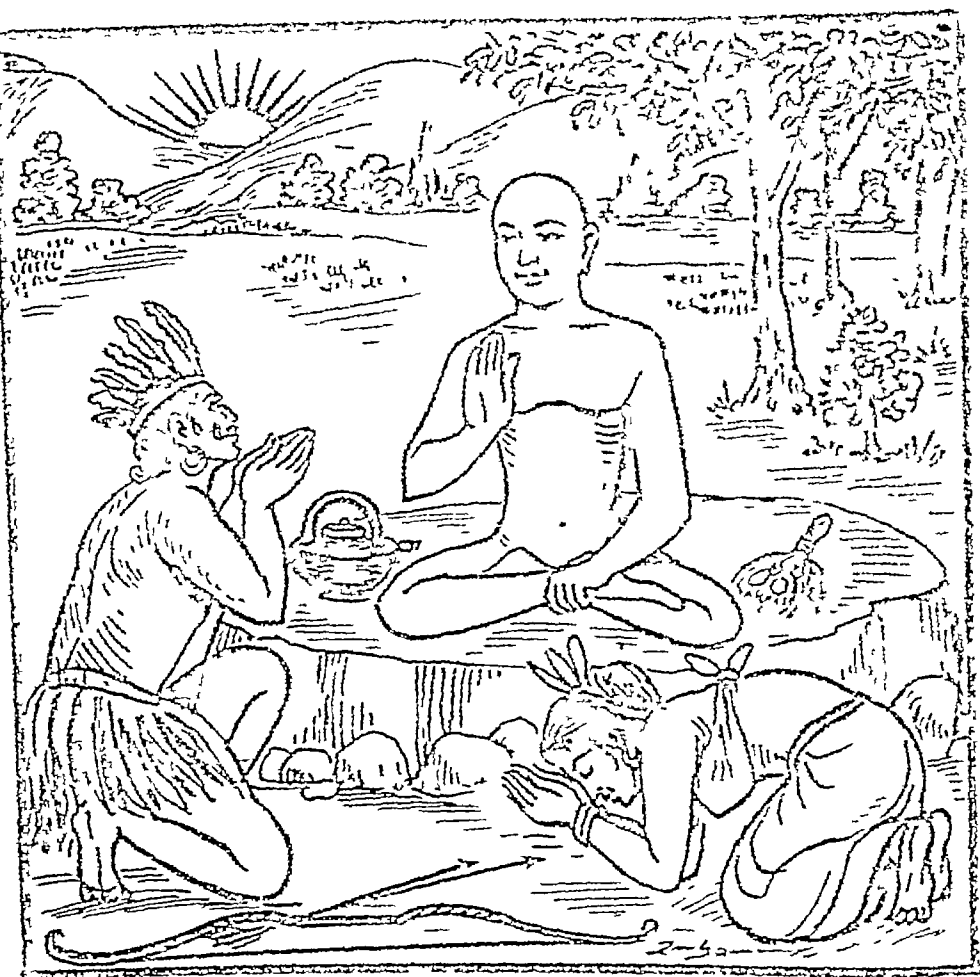
सुनकर यह कल्याणी वाणी, भीलराज को जागा ज्ञान ।
तत्क्षण पाद मूल मे पहुचा, फेक वही पर तीर-कमान ।।
मुनिश्री ने तव भव्य जान कर, उनको दिया धर्म उपदेश ।
मद्य मास मधु सप्त व्यसन से, वर्जित श्रावक व्रतान-शेष ।।

सौधर्म स्वर्ग में पुरुरवा के जीव द्वारा—

धारण कर सम्यक्त्व सहित वह जप तप सयम अणुव्रत शील ।
प्रथम स्वर्ग मे देव महर्द्धिक हुआ समाधि मरण से भील ॥
अत सपरिकर चैत्य वृक्ष पर स्थित अरिहतो को नित्य ।
भक्ति भाव से पूजा करता था ले अष्ट द्रव्य साहित्य ॥

महावीर पर्याय कल्पद्रुम

पत्ते पत्ते रहा डोलता वैभाविक पर्यायो पर ।
जैसी दृष्टि सृष्टि वैसी ही महावीर सदेश अमर ॥
निम्न अवस्थाओ से लेकर ऊँचे से ऊँचे विकास की ।
क्रमश झाकी यहाँ देखिये महावीर के मोक्ष वास की ॥

पुरुरवा द्वारा दि० मुनि पर शर-सन्धान
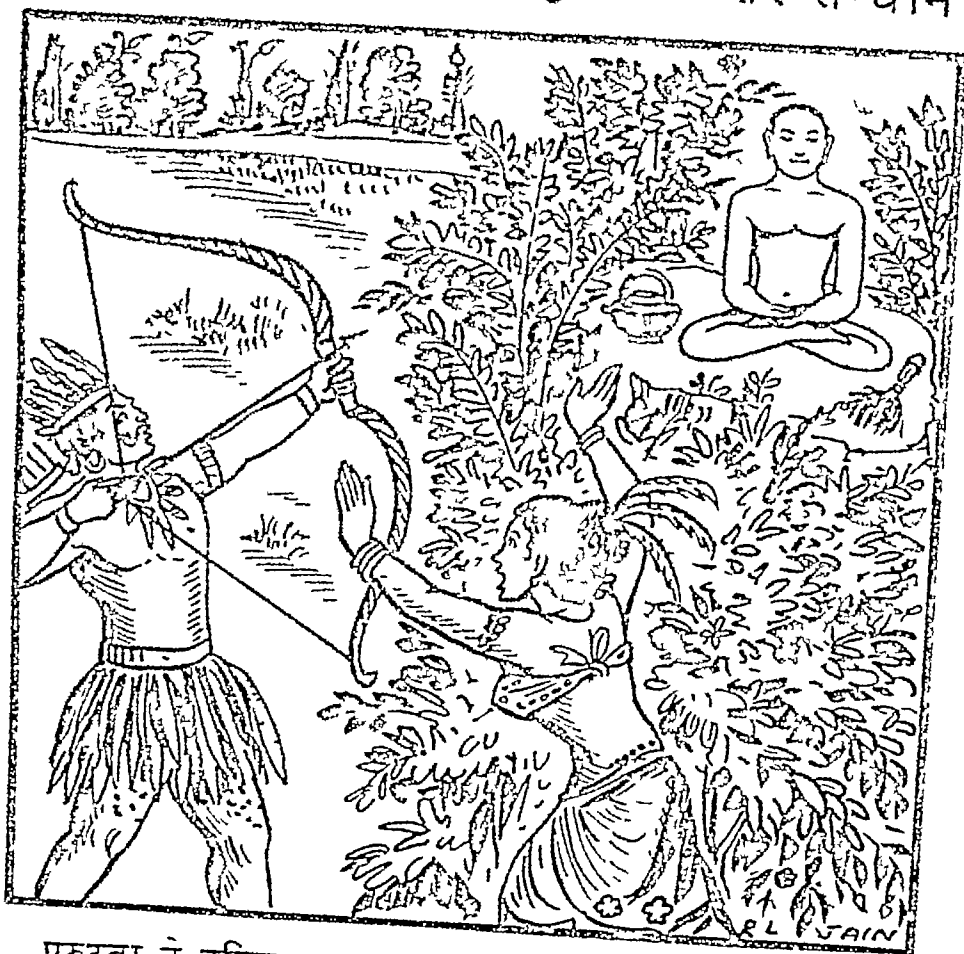
पुरुरवा ने हरिण समझ उन, मुनि पर शर-सधान किया।
किन्तु कालिका ने निज पति के, दृष्टि दोष को जान लिया॥
बोली नाथ! रुको मत मारो, ये वन-देव दिगम्बर है।
आत्मलीन ये पर उपकारी महाव्रती जिन गुरुवर है॥

भरत चक्रवर्ति पुत्र मारीचि कुमार

आयु पूर्ण कर देव-धरा पर, ऋषभदेव का पौत्र हुआ।
भरत चक्रवर्ती के घर मे, यह मारीचि सुपुत्र हुआ॥
उसी अयोध्या मे चक्री की, प्रिया "धारिणी" के उर मे।
सुत मारीचि हुआ मेधावी, चय कर सौधर्मी सुर से॥

पद भ्रष्ट मारीचि इन्द्र द्वारा प्रताड़ित

जो दिव्यध्वनि अनुसार कभी तीर्थंकर होने वाले है।
वह द्रव्यलिङ्ग मुनि वन भव के वीजो को बोने वाले है ॥
तब वन मे स्थित देवराज पथ भ्रष्टो को समझाते है।
यह वेष दिगम्वर पावन है इसको यो नही लजाते है ॥

मारीचि द्वारा मिथ्या मत का प्रचार

तब होनहार अनुसार बना वह मिथ्यामत का नेता था।
वह परिव्राजक का वेष धार उपदेश विपर्यय देता था॥
हाँ, मैं भी श्री जिन आदिनाथ सा जगत्‌गुरु कहलाऊँगा।
उन जैसा ही मैं भी अपना अब पथ अलग अपनाऊँगा॥

हठयोगी मारीचि ब्रह्म स्वर्ग में
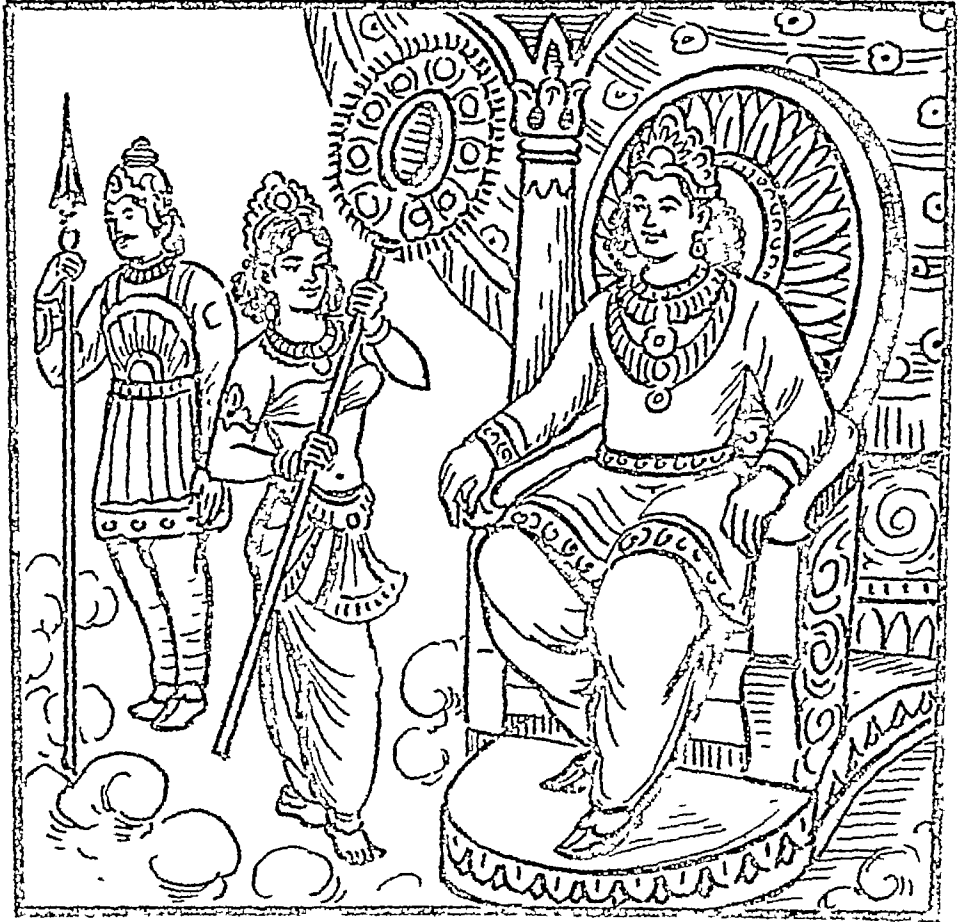
परिव्राजक निज तप प्रभाव से आयु पूर्ण कर स्वर्ग गया।
ब्रह्मस्वर्ग मे दस सागर तक सब सुख भोगे पूर्णतया ॥
मिथ्या तप के भी प्रताप से मिल जाते जब सुख स्वर्गीय।
तो फिर सत्य तपस्या द्वारा क्यो न मिले फल अद्वितीय? ॥

सांख्य मत प्रचारक जटिल ऋषि
(मारीचि का जीव)
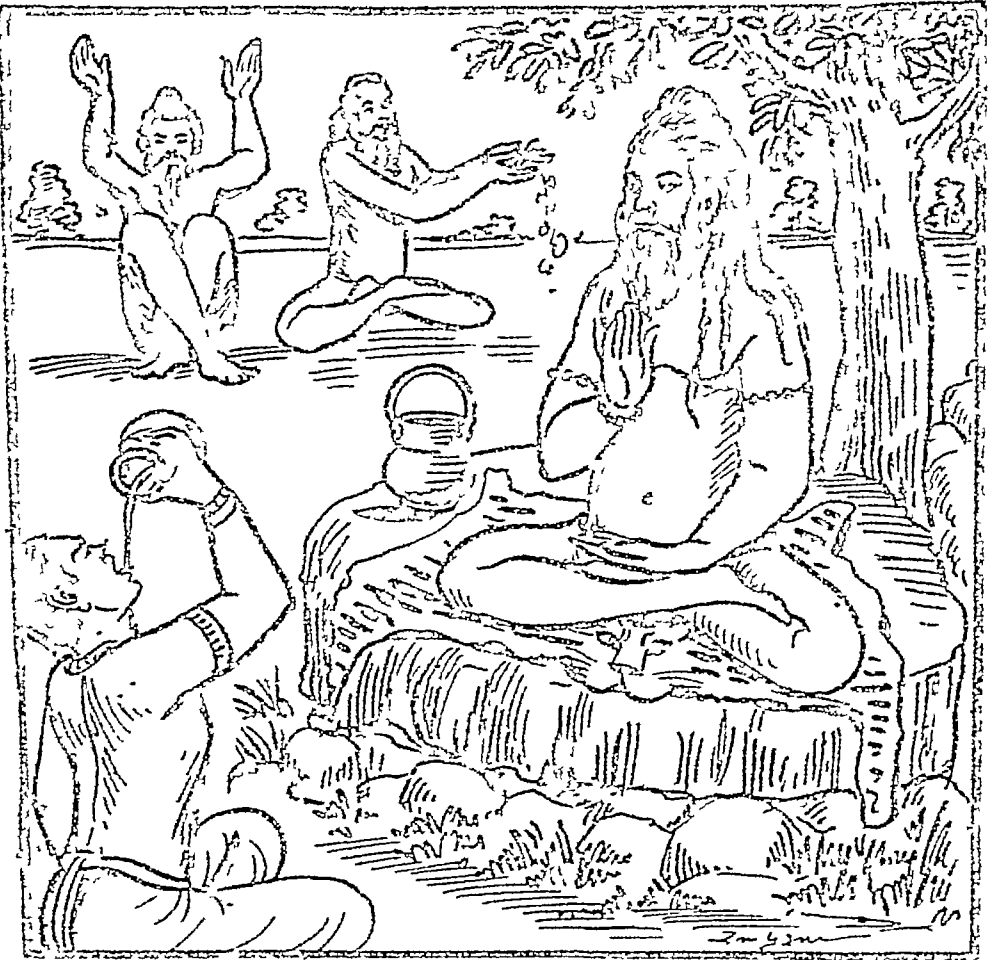
ब्रह्मस्वर्ग से चय कर वह मारीचि जीव अवनी पर।
जटिल नाम का पुत्र हुआ द्विज कपिल और काली घर ॥
ऋषि बन कर मिथ्यात्व धर्म का उसने अति उपदेश दिया ॥
भाँति-भाँति की करी तपस्या एवं काय-क्लेश किया ॥

कुतप द्वारा सौधर्म स्वर्ग में जटिल ऋषि का जीव

आयु पूर्ण कर उस तापस ने प्रथम स्वर्ग से जन्म लिया।
स्वर्गिक वैभव जिन वदन मे ही निज काल व्यतीत किया॥
भोगों को वह भोग रहा था पर सचमुच वह भुक्त बना।
इसीलिये तो दो सागर तक वह माया से युक्त बना॥

जटिल महर्षि का जीव
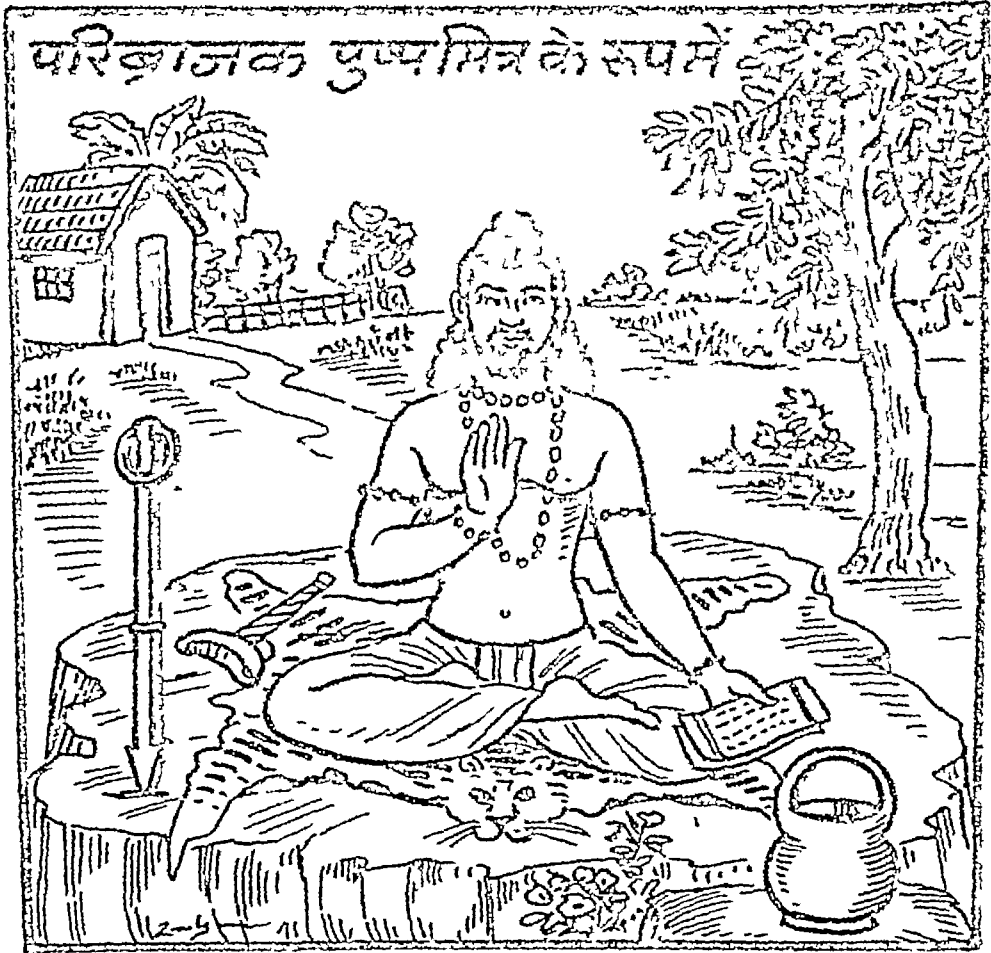
भारद्वाज-पुष्पदत्ता ये भारतीय द्विज दम्पति थे।
इनके सुत मारीचि जीव अब पुष्पमित्र नामक यति थे॥
वे स्वर्गो का वैभव तज कर नगर अयोध्या आये थे।
साख्य धर्म के उपदेशो से जन-जन को भरमाये थे॥

आयु पूर्ण कर पुन--हुये, सौधर्म स्वर्ग अधिकारी ।
क्योकि तपस्या के प्रभाव से, मिले सम्पदा भारी ॥
आयु एक सागर की पाकर, भोगो मे तल्लीन हुये ।
पुन उतरना पडा वहाँ से, क्योकि पुण्य फिर क्षीण हुये ॥

पुष्य मित्र का जीव

भरत क्षेत्र श्वेतिक नगरी मे, अग्निभूति ब्राह्मण थे ।
प्रिया गौतमी के सग सुख मे, करते जो कि रमण थे ॥
वह मारीचि इन्ही के घर में, अग्निसह्य अवतरित हुआ ।
जिसके द्वारा परिव्राजक का, मिथ्यामत स्फुरित हुआ ॥

खोटे तप के प्रभाव से

सनत्कुमार स्वर्ग में पहुँचा, आयु पूर्ण कर तापस।
सात सागरों तक सुख भोगा, स्व पुण्यों का मधुर रस॥
इन्द्रिय जन्य सभी सुख नश्वर, पराधीन बन्धक हैं।
बाधा युक्त विषम फल दाता, दुःख के उत्पादक हैं॥
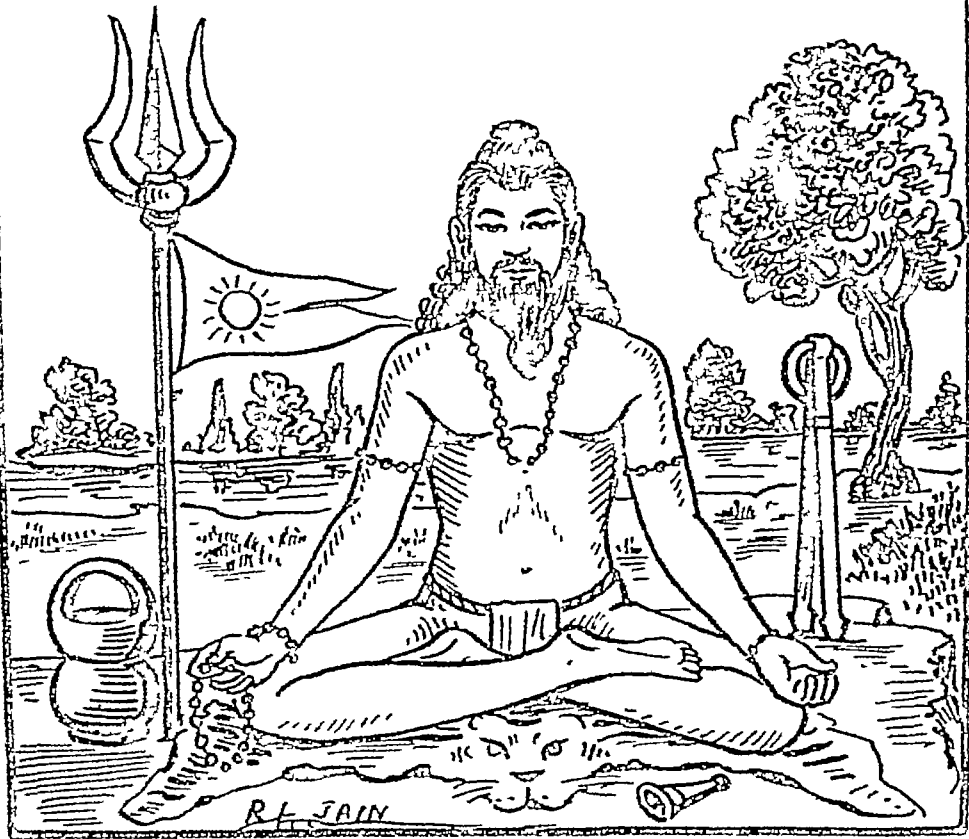
त्रिदंडी साधु अग्निभूत

सनत्कुमार स्वर्ग से चय कर मन्दिर नाम नगर में।
अग्निभूति यति हुआ त्रिदडी गौतम द्विज के घर मे ॥
मिथ्या शास्त्रो का प्रवचन कर ऐकान्तिक फैलाया।
वन पत्थर की नाव स्वयं ही डूबे और डुबाया ॥

माहेन्द्र स्वर्ग में
(त्रिदंडी साधु अग्निभूत का जीव)
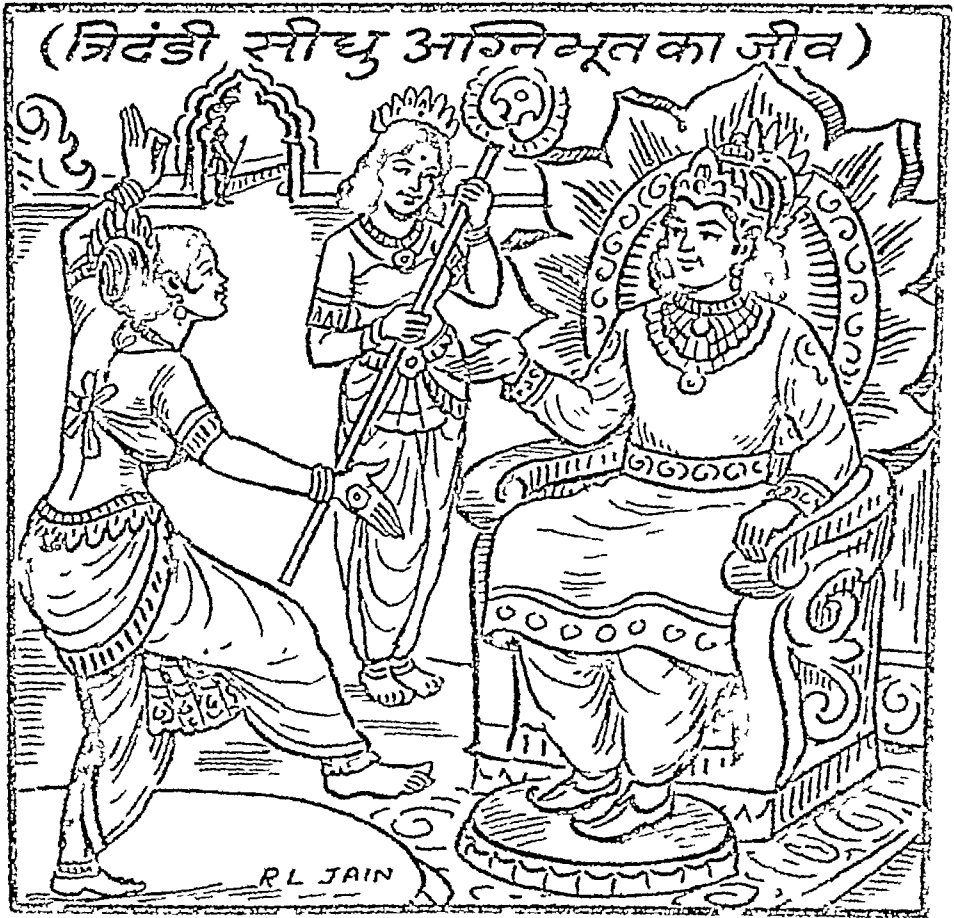
देह त्याग कर साधु त्रिदंडी स्वर्ग पांचवें पहुंचा।
कर्म चेतना का फल भोगा शुभ ऊँचे से ऊंचा॥
निज ज्ञायक को लक्ष्य बनाने वाली ज्ञान चेतना है।
उसमें विभव विभाव नही है वह स्वभाव ही अपना है॥

मनुष्य-देव पर्यायों के पश्चात (मरीच जीव निगोद में)

आलू शकरकद लहसुन मे, फिर उपजे फिर और मरे।
एक देह मे ही अनत, अक्षर अनतवॉ ज्ञान धरे।
सिद्धों का सुख एक ओर था, उससे उतना ही विपरीत।
दुख निगोद मे नरको से भी, अधिक सहा था वचनातीत ।।

नरकों की असह्य वेदना
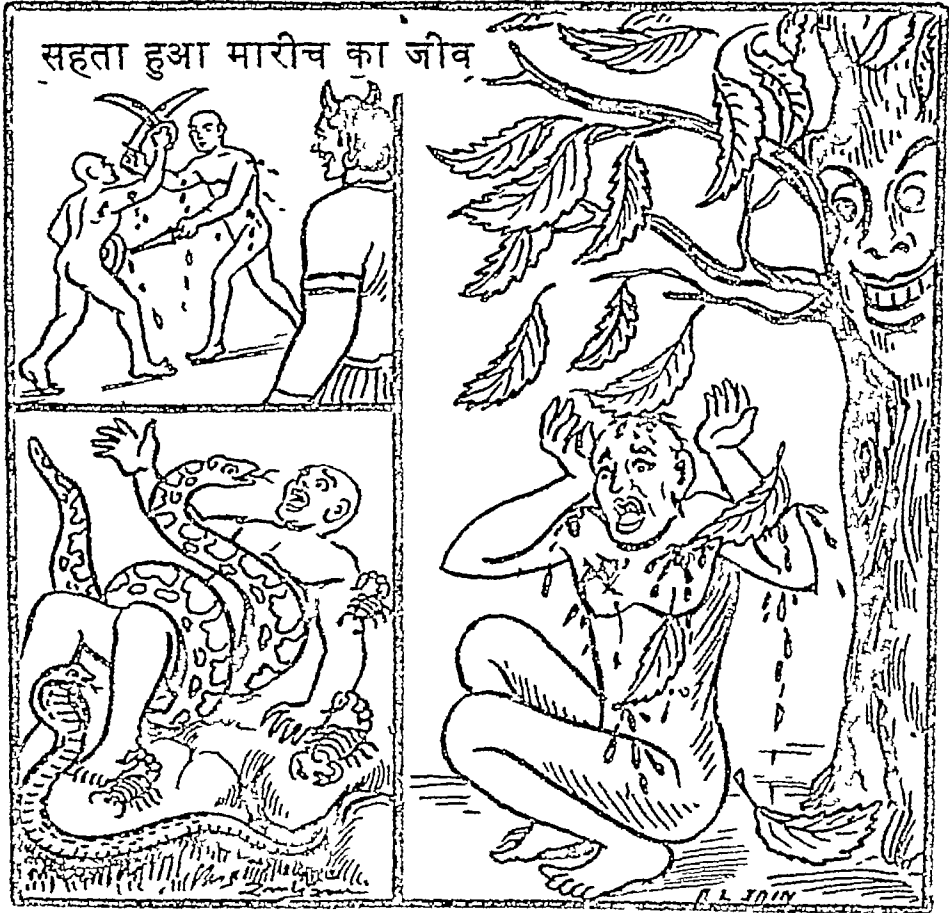
आर्त-रौद्र मोहित परिणामो के फल नरको मे भोगे ।
खून पीप की वैतरिणी मे पहिन वैक्रियक चोगे ।।
एक साथ विच्छू सहस्र मिल, मानो डक मारते हो ।
सेमर तरु के पत्ते-पत्ते भी तलवार धारते हो ।।

महामिथ्यात्वी बाल तपस्वी ब्राह्मण
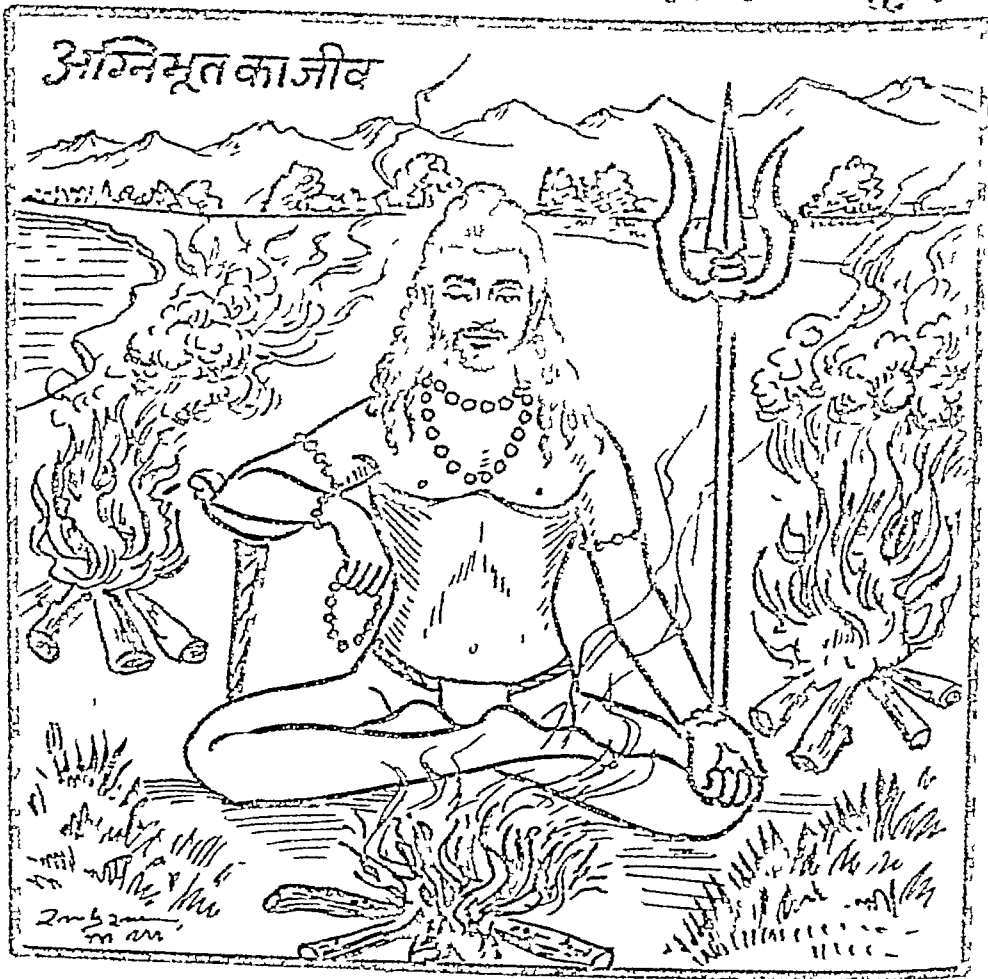
मातु मदिरा ब्राह्मणी थी जनक साकलायन थे ।
भारद्वाज नाम के उनके सुत बहुश्रुत ब्राह्मण थे ॥
जो कि स्वर्ग से चय कर आये पूर्व सस्कारो वश ।
ऐकान्तिक मिथ्यात्व प्रचारक बने त्रिदडी तापस ॥

ब्रह्म स्वर्ग में भारद्वाज ब्राह्मण

फल स्वरूप देवायु बाँध कर, स्वर्ग पाँचवे पहुँचे ।
मद कपायी बाल-तपस्वी, सुग्गति मे ही पहुँचे ।।
पुण्याश्रव को पुण्य बंध को, जब तक संवर माना ।
तब तक मिथ्यात्वी जीवों ने, धर्म नही पहिचाना ।।
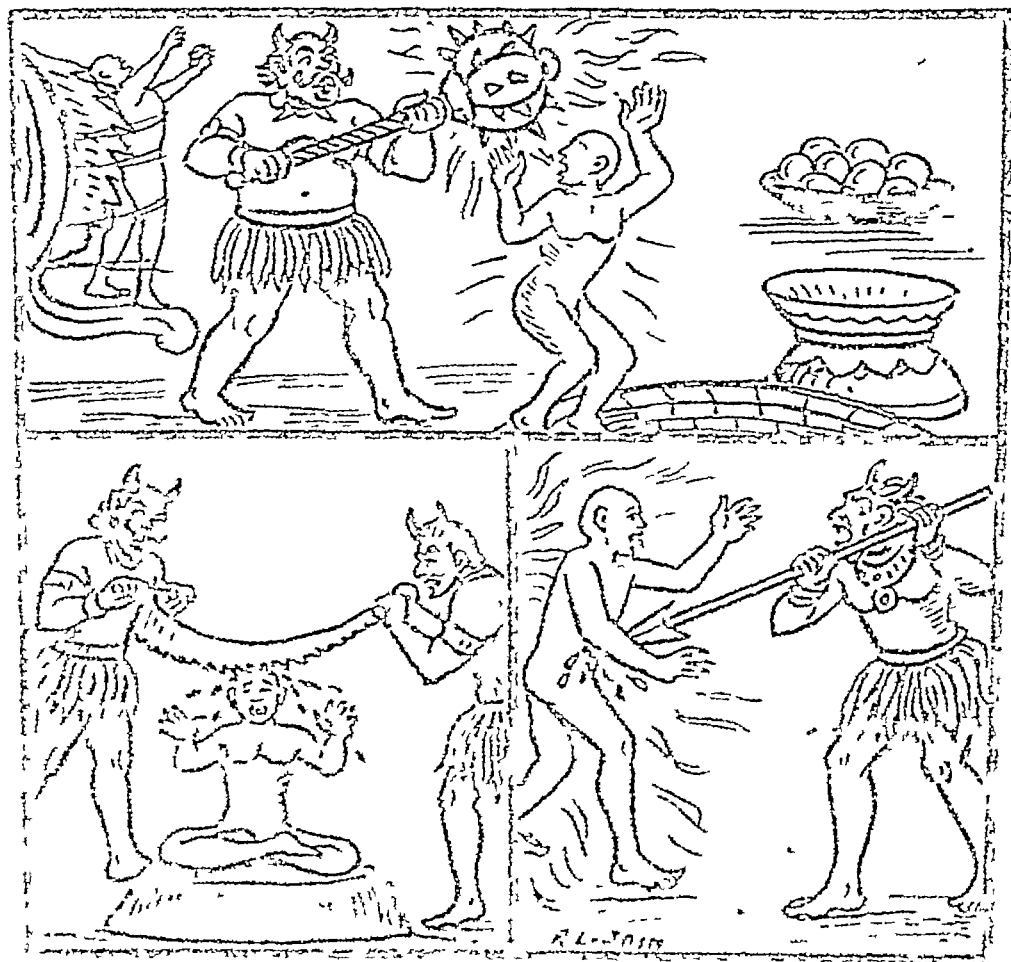
पंच स्थावरों में भटकता मारीचि का जीव

उम्र तीन दिन-रात रही कई बार अग्नि कायिक होकर ।
वायु काय का जीव हुआ यह, तीन हजार वर्ष सोकर ।।
दस हजार वर्षों तक थी, प्रत्येक वनस्पति की उच्चायु ।
ईंधन-राधन-काटन-छेदन-भेदन, दु:ख सहे थे निरुपायु ।।

लज्जा जनक हीन पर्यायों का इतिहास
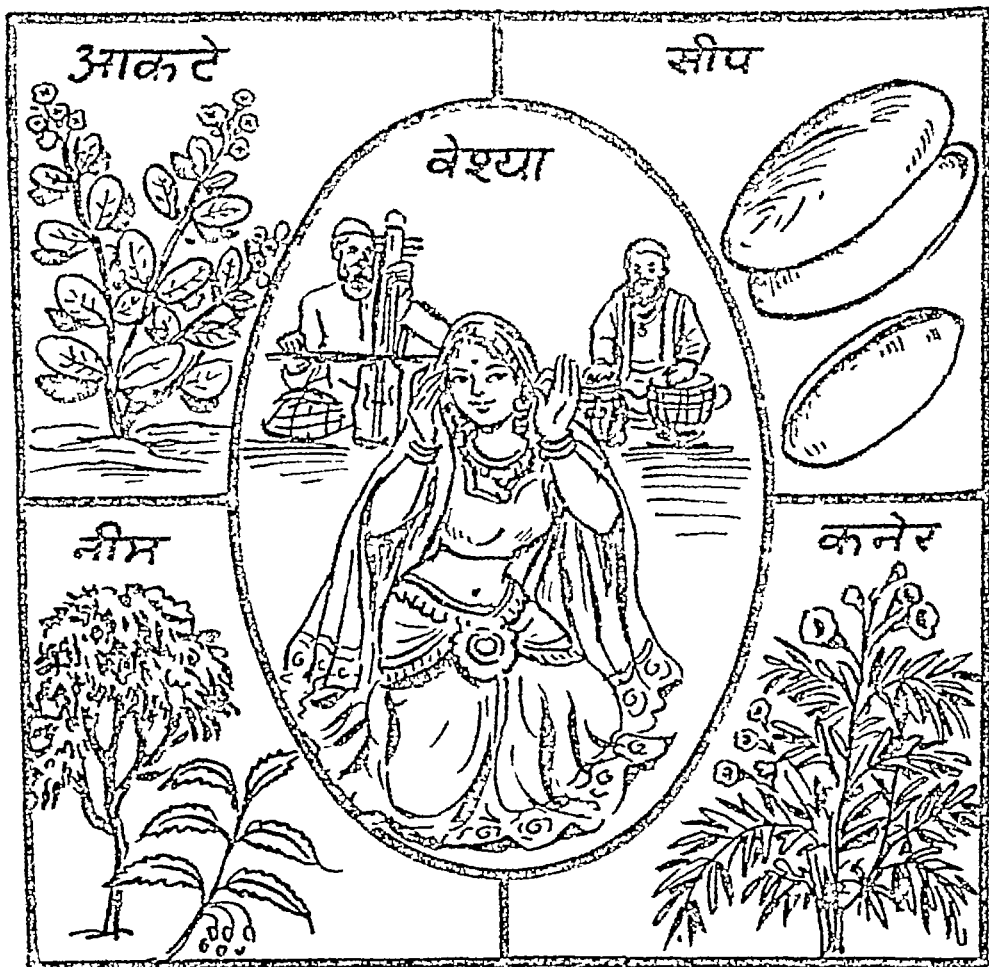
डेढ हजार अकौआ की थी, सीप योनि अस्सीय हजार ।
नीम और केला तरु की थी, सहस बीस नव क्रम अनुसार ।।
तीस शतक चदन तरु एव, पच कोटि भव हुये कनेर ।
वेश्या साठ हजार वार बन, पाच कोटि तन धरे अहेर ।।

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जीवो के दुखों का वर्णन

(१)

लट-चीटी-भँवरा विकलत्रय द्वय त्रय चतुरिन्द्रिय के जीव।
चितामणि सम दुर्लभ है त्रस जिसमे रह दुख सहे अतीव॥

(२)

कुचले-पीसे गये प्रवाहित हुये अग्नि मे भस्मीभूत।
खाये गये पक्षियो द्वारा सहे दुःख मारीचि प्रभूत॥

(३)

पचेन्द्रिय जव हुआ असैनी हित अनहित का नही विवेक।
ज्ञान अल्प था, मोह तीव्र था धर्महीन दुख सहे अनेक॥

(४)

सज्ञी पचेद्रिय पशु होकर लघु जीवो का किया शिकार।
स्वय दीन कातर होने पर वना सशक्तो का आहार॥

(५)

छेदन-भेदन-क्षुधा-पिपासा की पीडाये क्या कहना ?।
सर्दी-गर्मी बोझा ढोना-वध-बन्धन परवश सहना॥

(६)

पुण्य योग से नर भव पाया, किन्तु न पाई मानवता।
इसीलिये दुख सहे अनेको गर्भ-जन्म एव शिशुता॥

(७)

पृथ्वी जल की अग्नि वायु की वनस्पती की वादर काय।
अपर्याप्त पर्याप्त रूप से धारी असख्यात पर्याय॥

(८)

पृथ्वी कायिक मे भोगी उत्कृष्ट आयु वाईस हजार।
जल कायिक मे भोगी थी उत्कृष्ट आयु पुनि सात हजार॥

विकलत्रय त्रस एवं मानव पर्याय में मारीचि
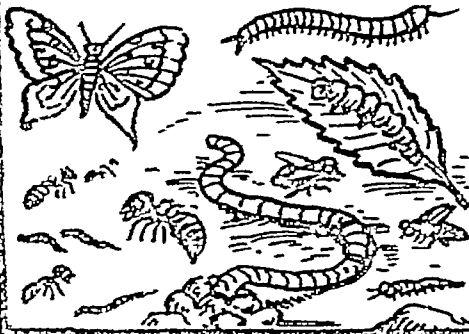
बालकपन मे खेल-कूद मे सारा समय व्यतीत हुआ।
भोग विलासो भरी जवानी मे कुछ भी न प्रतीत हुआ॥
बूढी सब हो गई इन्द्रियाँ किन्तु वासना रही जवान।
मरघट मे पग लटक गये पर आया नही धरम का ध्यान॥

पंचेन्द्रिय त्रिर्यच पर्यायों में मारीचि
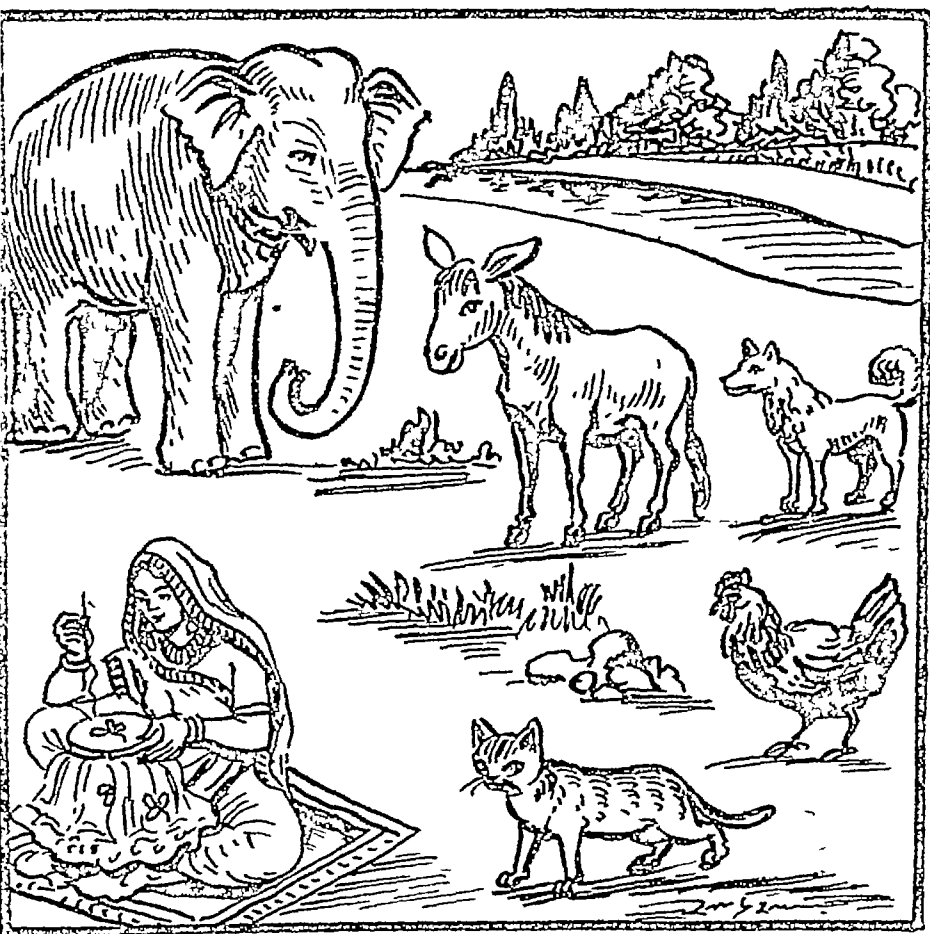
बीस कोटि अवतार गजो के गर्दभ पशु के साठ करोड ।
स्वांग श्वान के तीस कोटि थे साठ लाख क्लीबो के जोड ।।
बीस कोटि नारीपर्याये, रजक वृत्ति की नव्वे लक्ष ।
मार्जार एव तुरगी के बीस आठ कोटिक क्रम कक्ष ।।

शांडली पुत्र स्थावर द्विज के रूप में
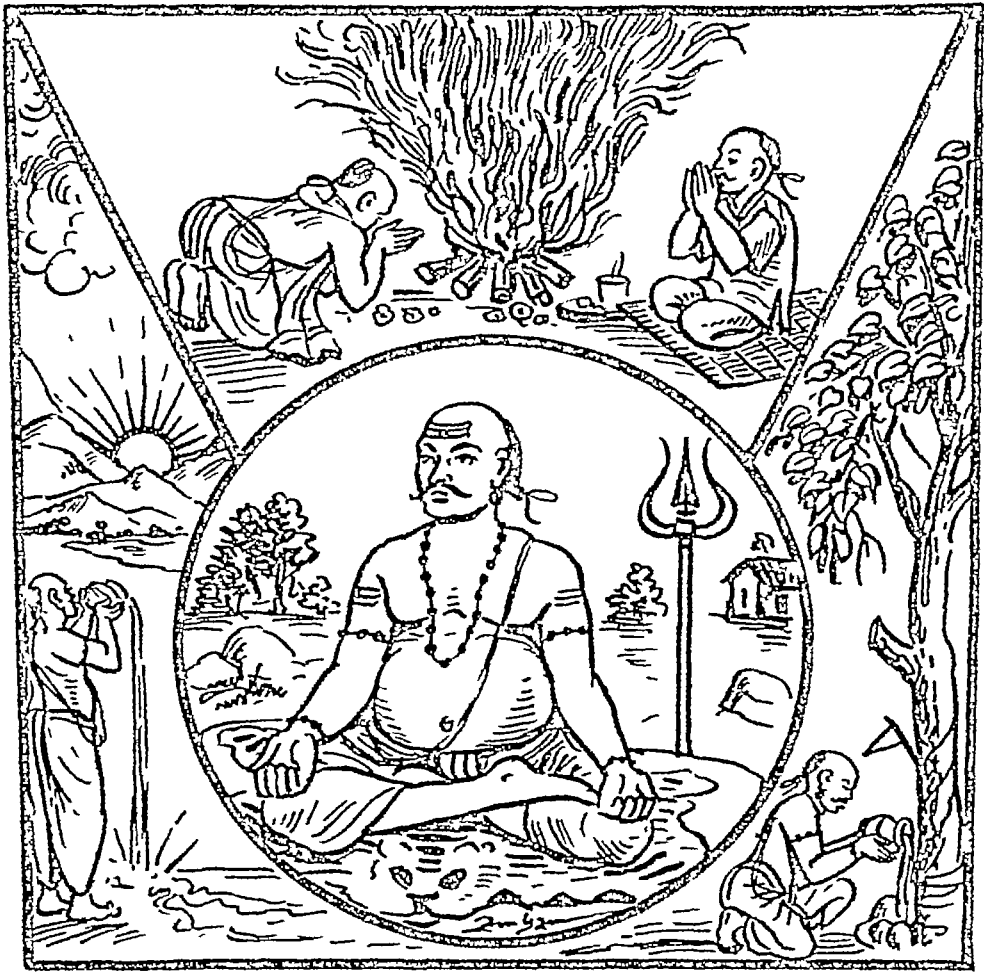
जन्म मरण के साठ लाख तक कष्ट असंख्यां काल सहे।
शुभ कर्मों से शाडली (क) के स्थावर द्विज बाल रहे॥
इह भवघाती आतम हनन ही सब से दुखकर पाप यहा है।
जन्म जन्म घाती मिथ्यात्वी! वना पाप का बाप यहा है॥

स्थावर द्विज माहेन्द्र स्वर्ग में

आयु पूर्ण कर स्वर्ग चतुर्थे पाई विप्र ने सुर पर्याय।
क्योंकि स्वर्ग सुख दे सकती है बिन समकित ही मद कषाय।।
लाखों शून्य इकट्ठे होकर नही बने है कभी इकाई।
लाखों पुण्यो ने मिलकर क्या कभी धर्म की संज्ञा पाई ? ।।

विश्वनन्दी द्वारा वैसाखनन्द पर वृक्ष प्रहार

स्वर्ग सुखों से च्युत होकर सुर, हुआ विश्वनंदी युवराज ।
उसका शत्रु चचेरा भाई, था वैशाखनंद शिरताज ।।
उद्धत हो वैशाखनंद ने, उपवन पर अधिकार किया ।
वृक्ष उखाड़ विश्वनंदी ने, उस पर अतः प्रहार किया ।।

विश्वनंदी द्वारा वैशाखनंद पर वृक्ष-स्तम्भ प्रहार

बच कर भागा चढा खभ पर, वह बैसाखनद भयभीत ।
तोडा उसे विश्वनदी ने, हुई साथ ही आत्म प्रतीति ।।
मानव से मानव डरता है, इतना कायर है ससार ।
अगर वीर मुझ को बनना है, लूँ विरागता के हथियार ।।

विश्वनन्दी द्वारा दिगम्बरत्व ग्रहण
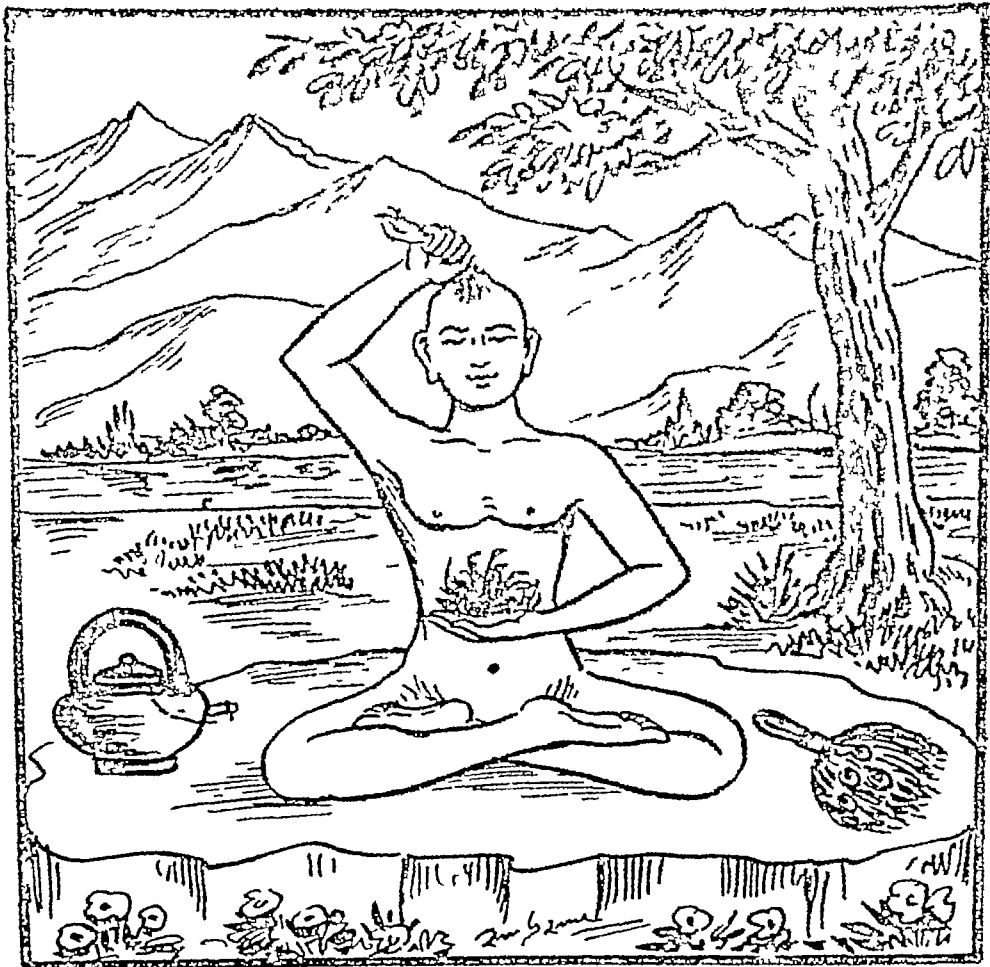
विश्वनदि बैशाखभूति ने, नग्न दिगम्बर धारे भेष ।
कठिन तपस्याओ के कारण, काया जर्जर हुई विशेष ॥
पच महाव्रत पच समिति त्रय, गुप्ति धर्म दश धारी वे ।
शुभ उपयोग सहित छटवे गुण, थानक शुद्ध बिहारी वे ॥

मुनि विश्वनंदी का आहारार्थ गमन
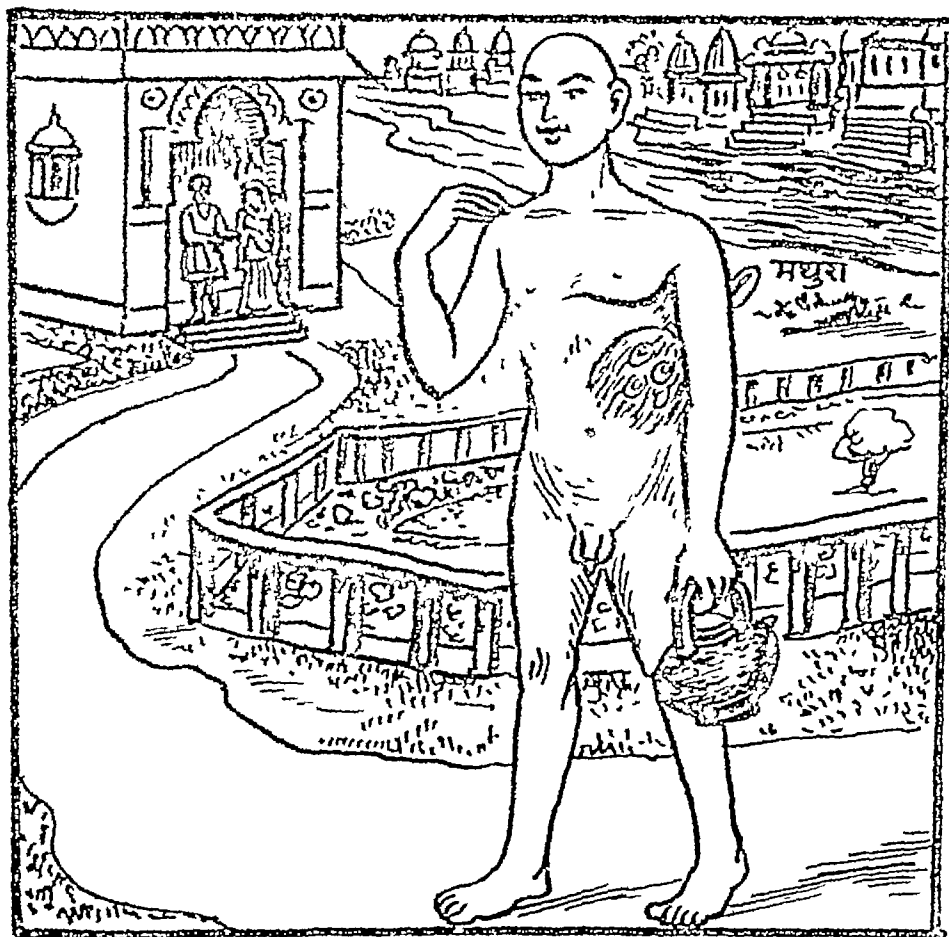
पाणिपात्र खड्गासन मुद्रा मे ही नीरस अल्पाहार ।
सिहवृत्ति से निरतराय मुनि जीवनार्थ करते स्वीकार ।।
एक दिवस श्री विश्वनदि जी आहारार्थ निकलते है ।
मथुरा नगरी ओर मुनीश्वर ईर्यापथ से चलते है ।।

वलिष्ठ बैल द्वारा विश्वनंदी मुनि पर आक्रमण
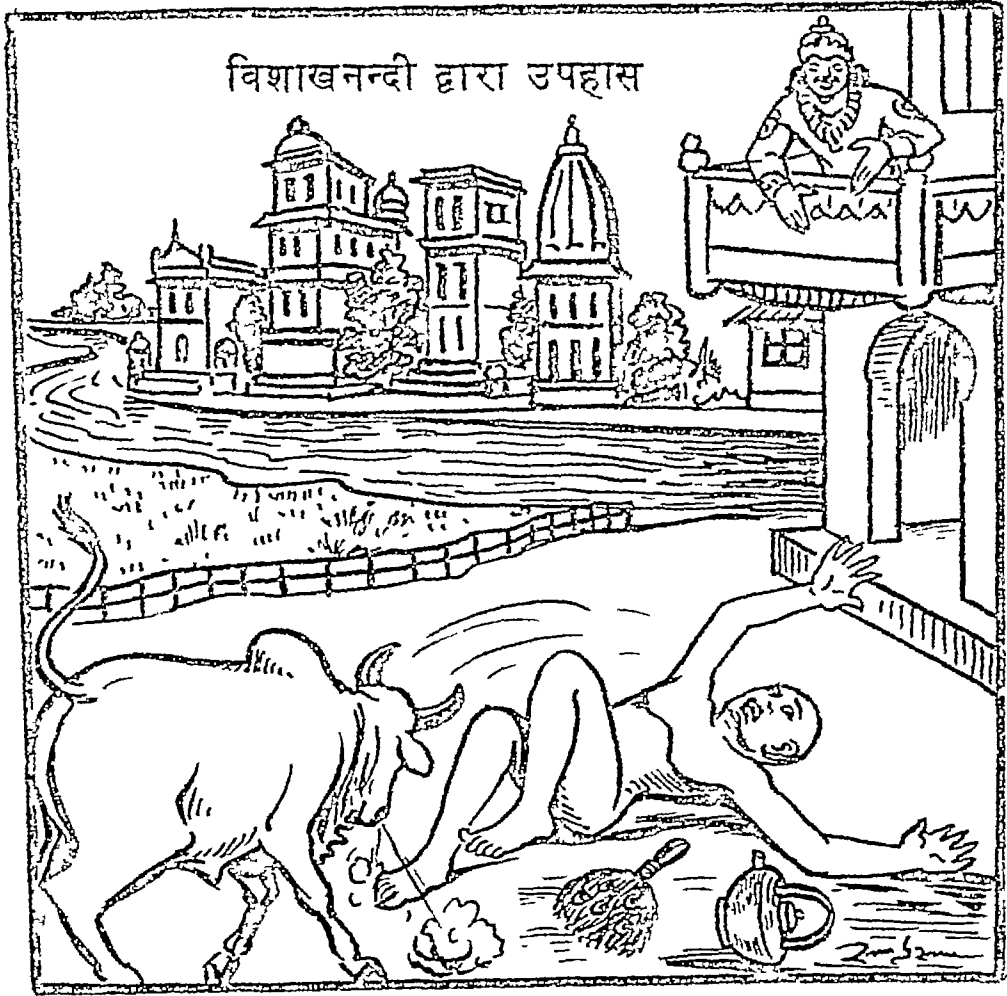
तभी भागते हुए बैल की टक्कर से वे गिर जाते ।
किन्तु तनिक भी अपने मन मे नही कषायों को लाते ।।
राजमहल की छत पर से बैशाखनद ने देखा दृश्य ।
अट्टहास उपहास सहित वह बोला व्यगोक्तिया अवश्य ।।

विश्वनन्दी मुनि का महा शुक्र स्वर्ग में प्रयाण

दृष्टि के अनुसार सृष्टि है भावो के अनुसार भवन ।
विश्वनदि वैशाखभूति ने दशम स्वर्ग मे किया गमन ॥
मुनि निन्दक वैशाखनद भी सप्तम नर्क पहुँचता है ।
आगे की पर्यायो मे खल नायक इनका वनता है ॥

नारायण प्रति नारायण का द्वंद्व युद्ध

वेचारे उस ज्वलनजटी पर अश्वग्रीव चढ कर आया ।
मानो सन्मुख देख शेर को मृग वेचारा घवराया ॥
किन्तु न्याय के साक्ष्य हेतु आये नारायण वलभद्र ।
की सहायता ज्वलनजटी की अश्वग्रीव से छीना चक्र ॥

त्रिपृष्ठ नारायण द्वारा अश्वग्रीव प्रति नारायण का वध

थे त्रिपृष्ठ नारायण एव अश्वग्रीव प्रतिनारायण।
नियत व्यवस्था नही बदलती दोनो मे होता है रण॥
किन्तु नियमत मारा जाता है नारायण के द्वारा।
खल नायक प्रति नारायण था अश्वग्रीव रिपु बेचारा॥

त्रिपृष्ठ नारायण द्वारा गायक शय्यापाल पर आक्रोश

गायक शय्यापाल किन्तु था गाने मे इतना तल्लीन।
राजा के निद्रित होने की खबर न उसको हुई स्वाधीन॥
स्वर लहरी मे निद्रा टूटी नही क्रोध का पारावार।
गायक के मुख-कर्ण डाल दी गर्म गर्म शीशे की धार॥

पापोदय से त्रिपृष्ठ नारायण सातवें नर्क में उत्पन्न

नारायण का नरको जाना, सर्वज्ञो ने देखा है।
उसको कौन बदल सकता जो, अमिट नियति की रेखा है॥
बव्हारंभ परिग्रह से या, विषय-भोग परिणाम स्वरूप।
आर्त-रौद्रध्यानो से मर कर, गया सातवे नर्क कु—भूप॥

त्रिपृष्ठ नारायण नर्क से निकल कर सिंह पर्याय में

कई सागर पर्यन्त नर्क के, दुख सहे उसने घनघोर।
निकल वहाँ से हुआ शेर वह, हिंसक पशु गणा की ओर॥
किंतु अभी भी उस तिर्यंच को सूझा नहीं कोई सदुपाय।
अथवा ऐसा कहो कि युगपत्, मिले नहीं पाचों समवाय॥

क्रूर हिंसक सिंह प्रथम नर्क में

फलस्वरूप वह प्रथम नरक मे पहुँचा पुन आयु कर पूर्ण ।
अहॅकार मिथ्यात्व आदि सब विधि के द्वारा होते चूर्ण ॥
नारकीय जीवन की झाँकी दिखलाना अत्यन्त कठिन ।
वहाँ रौद्र वीभत्स भयकर मृत्यु वेदना भय छिन छिन ॥
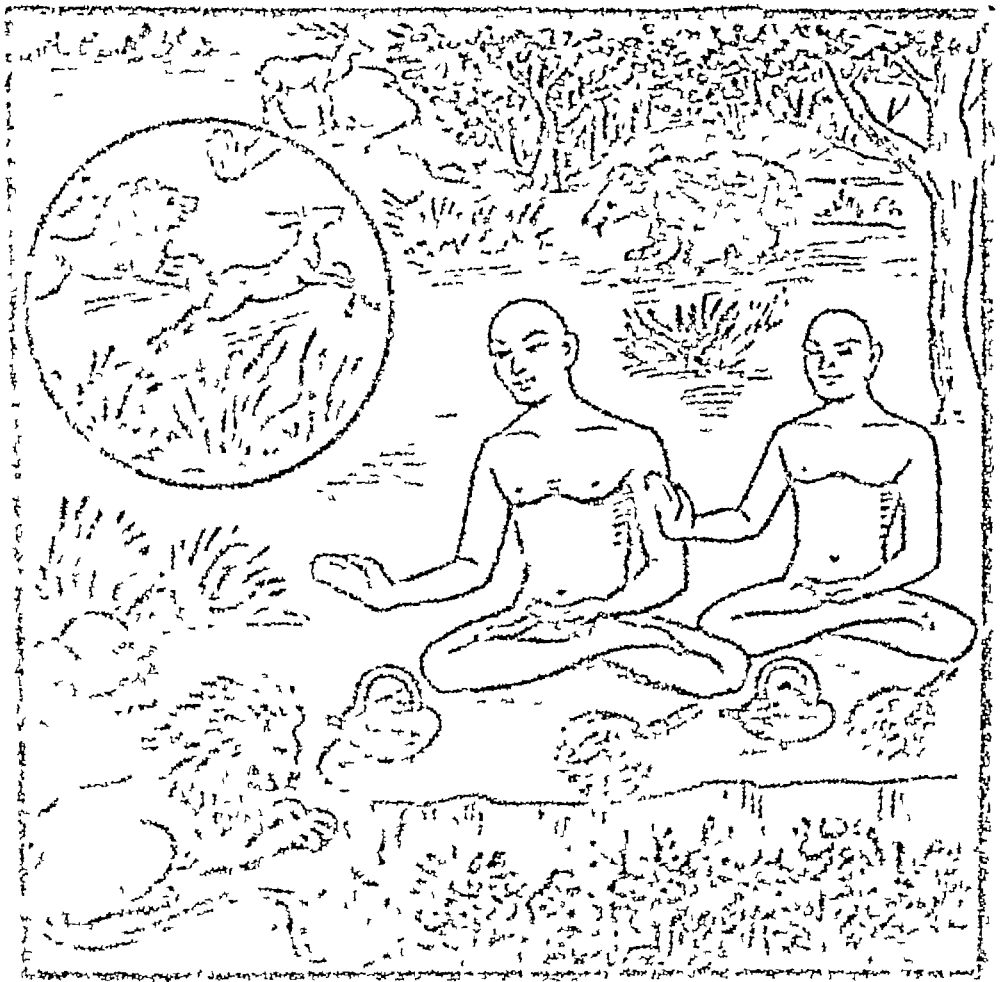
सिंह-संबोधन

(१)

पर्याय मूढता के द्वारा तुम तो अनादि से भटक रहे।
तुम आत्म-विपर्यय होकर ही चहुँ गति में औंधे लटक रहे।।

(२)

अब अपनी सम्यक् दृष्टि करो, अपने स्वरूप को पहिचानो।
त्रैलोक्य धनी तुम 'महावीर' यह दिव्य-दृष्टि द्वारा जानो।।

(३)

मिथ्यात्व सरीखा पाप नही सम्यक्त्व सरीखा धर्म नही।
शोभा तुम को दे सकता है इस हिंसा का अब कर्म नही।।

(४)

श्री ऋषभदेव के युग से ले भव भव मिथ्यात्व रचा तुमने।
पाखण्डवाद को फैलाकर बस आत्म वचना की तुमने।।

(५)

पिछली पर्यायें मत देखो मत देखो अगली परयायें।
उनका इतिहास देखने से पैदा होती आकुलतायें।।

(६)

यद्यपि सिंह की पर्याय तुम्हे जो वर्तमान मे प्राप्त हुई।
वह तीव्र कषायी भावो की रचना तन मन मे व्याप्त हुई।।

(७)

अब वर्तमान मे सावधान होकर स्वरूप को पहिचानो।
तिर्यञ्च क्रूर तुम सिंह नही यह दिव्य-दृष्टि द्वारा जानो।।

(८)

सशय विभ्रम को छोड बनो हे चेतन तन से निर्मोही।
नि शकित होकर पालो तुम सर्वज्ञ निरूपित दोनो ही।।

(९)

निश्चय व्यवहार समन्वित ही निज गृहण पूर्वक त्याग कहा ।
अपने से वाहिर जाना ही शुभ-अशुभ रूप मय राग कहा ॥

(१०)

यह भेद ज्ञान की कला तुम्हे सम्यक् पथ पर लाने वाली ।
इसका अभ्यास करो प्रतिक्षण जो कर्मों को ढाने वाली ॥

(११)

तुम मासाहार तजो पहिले फिर अणुव्रत पालन कर लेना ।
लेकर समाधि फिर अत समय जिन भक्ति हृदय मे धर लेना ॥

(१२)

ससार शरीरो भोगो मे नश्वरता है अशरणता है ।
एकत्व त्रिकाली शुद्ध ध्रौव्य अपवित्रा अन्य वरणता है ॥

(१३)

पाप पुण्य के आश्रव तो चेतन का वधन करते हैं ।
इसलिये हेय इनको मानो कर्मो का सर्जन करते है ॥

(१४)

है धर्म सुसंवर स्वय पुरुषार्थ निर्जरा का करता ।
फिर लोक भ्रमण का कर विचार निज वोधि भाव मन मे धरता ॥

(१५)

दश धर्म रूप रत्नत्रय ही यह जैन धर्म कहलाता है ।
जो परम अहिसा धर्म नाम से जग में जाना जाता है ॥

(१६)

मुनि वचनो पर श्रद्धा करके, आत्मा का ज्ञान विवेक जगा ।
सम्यक् दृष्टी के दर्शन से लो युग-युग का मिथ्यात्व भगा ॥

(१७)

अव उदासीन श्रावक सा रह वह अपना समय विताता था ।
अपने भव-भव के कृत कर्मो पर, वार वार पछताता था ॥

विवेकी सम्यक्त्वी सिंह पश्चाताप मौन मुद्रा में
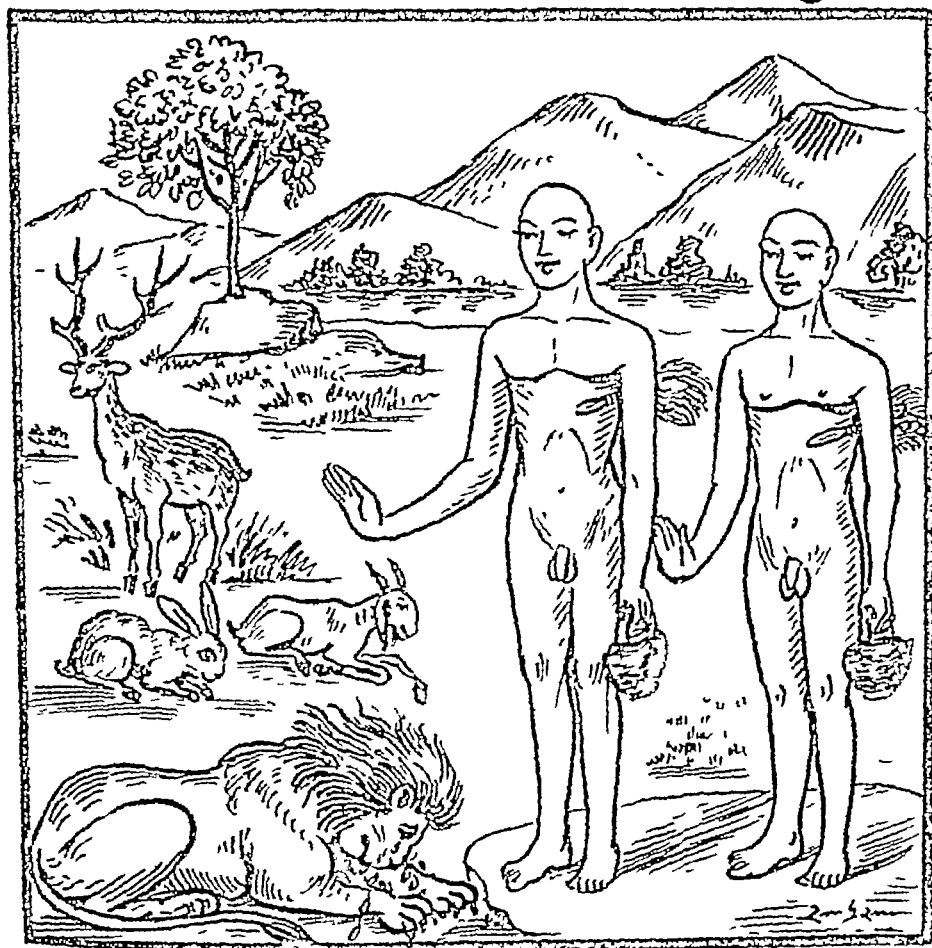
अब सम्यक् दर्शन धारण कर श्रावक के व्रत स्वीकार करो ।
हे मृगपति! पशु निर्दोषो का, मत आगे अब संहार करो ॥
मुनिश्री का उपदेशामृत सुन आँखो से आँसू टपक पडे ।
प्रायश्चित पापो का करके, मृगपति चरणो मे लुढक पडे ॥

सौधर्म स्वर्ग का देव "सिंह केतु"

(सिह का जीव)
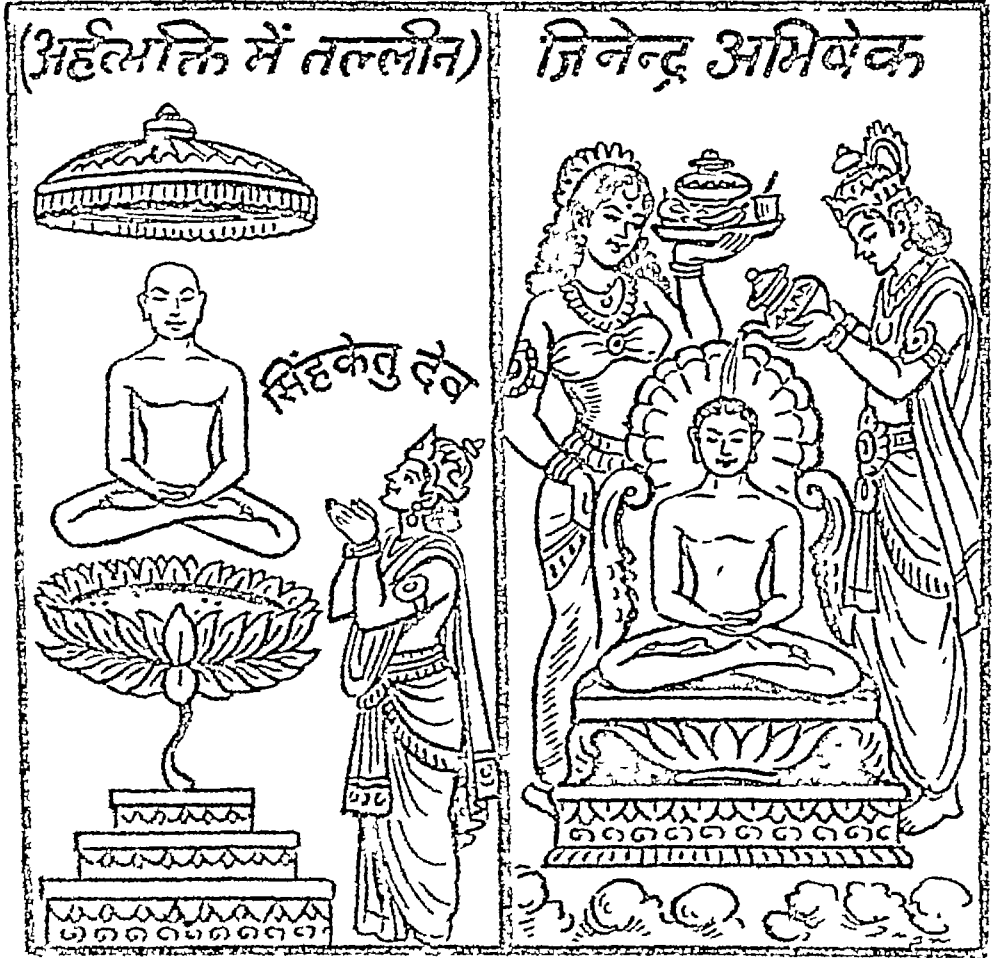
सम्यक्त्व सहित जब मरण किया सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ ।
श्री सिंहकेतु संज्ञा उसकी अरिहंत भक्त स्वयमेव हुआ ॥
अभिषेक जिनेश्वर का करता वह सम्यक् दृष्टी भव्य महा ।
गुण साधन धर्मसाधन ही था उसका निज कर्त्तव्य वहाँ ॥

सिंहकेतु देव द्वारा पचंमेरु की वन्दना
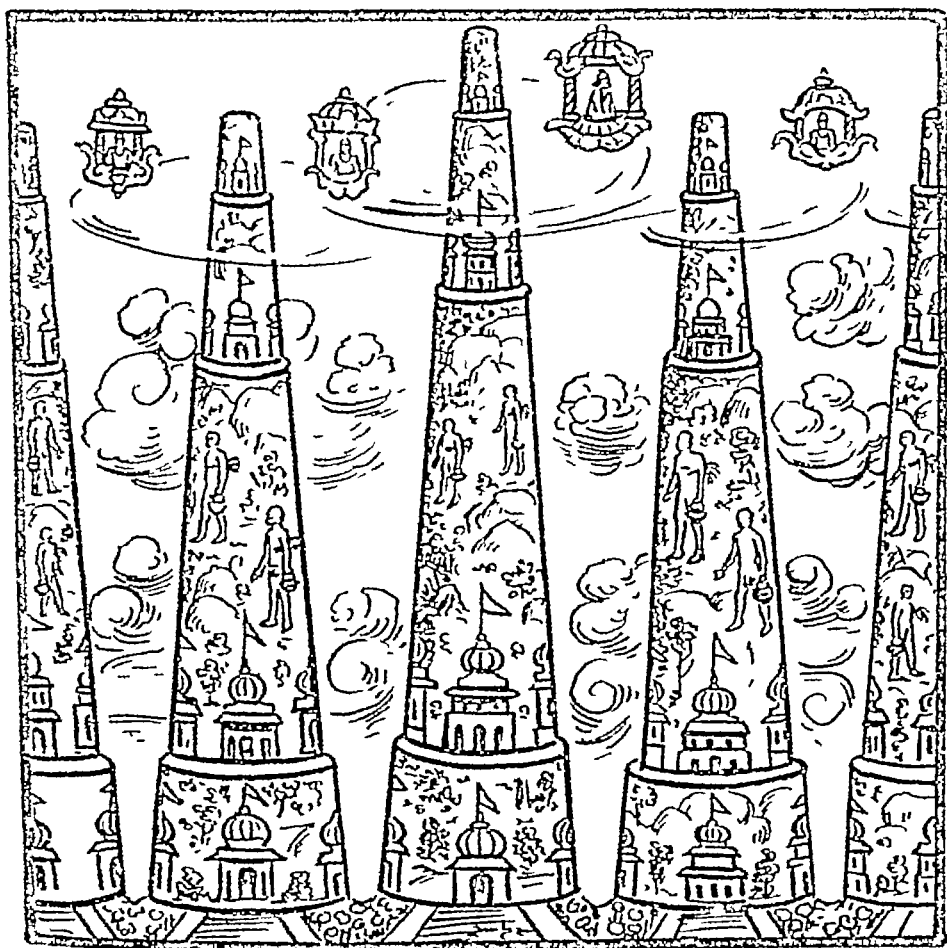
वह पचमेरु के चैत्यो की वन्दन करता था यदा-कदा।
शुभ राग और सुख वैभव मे ही रहता था तल्लीन सदा ॥
निश्चय ही धर्म जहाँ रहता शुभ भाव पुण्य सहचारी है।
सहचारीपन के ही कारण शुभ पुण्य धर्म अधिकारी है ॥

सिहकेतु देव का जीव कनकोज्ज्वल विद्याधर

सौधर्म स्वर्ग से चय कर फिर कनकोज्वल राजकुमार हुआ ।
देश कनकप्रभ नृपति पख विद्याधर घर अवतार हुआ ॥
जल से भिन्न कमल वत् रहकर विद्याधर ने भोगे भोग ।
एक दिवस गुरु के वचनो का प्राप्त हुआ था शुभ सयोग ॥

कनकोज्ज्वल युवराज वैराग्य की ओर
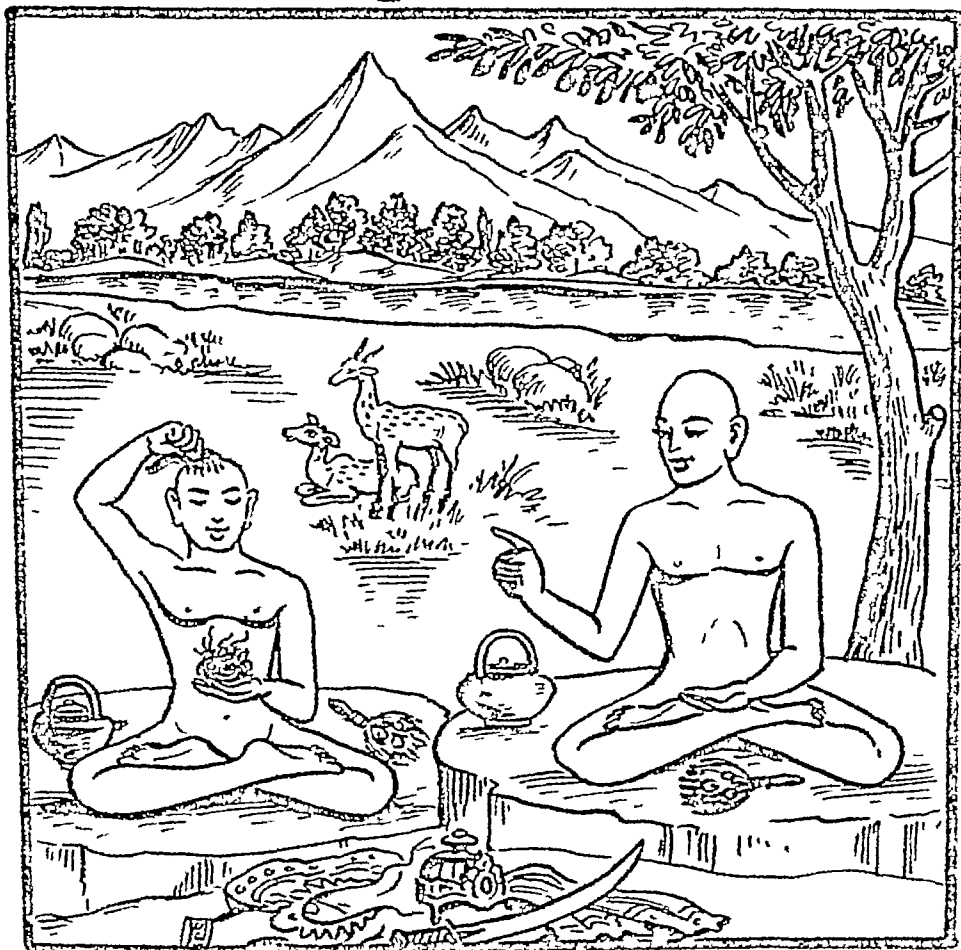
ससार देह एव भोगो से वह युवराज विरक्त हुआ ।
महाव्रती निर्ग्रन्थ दिगम्वर रत्नत्रय का भक्त हुआ ।।
कनकोज्ज्वल मुनिवर भावलिग शुद्धोपयोग मे रहते थे ।
अस्थिरता होने पर किचित शुभ उपयोगो मे वहते थे ।।

लान्तव स्वर्ग की विभूति से विभूषित कनकोज्ज्वल का जीव
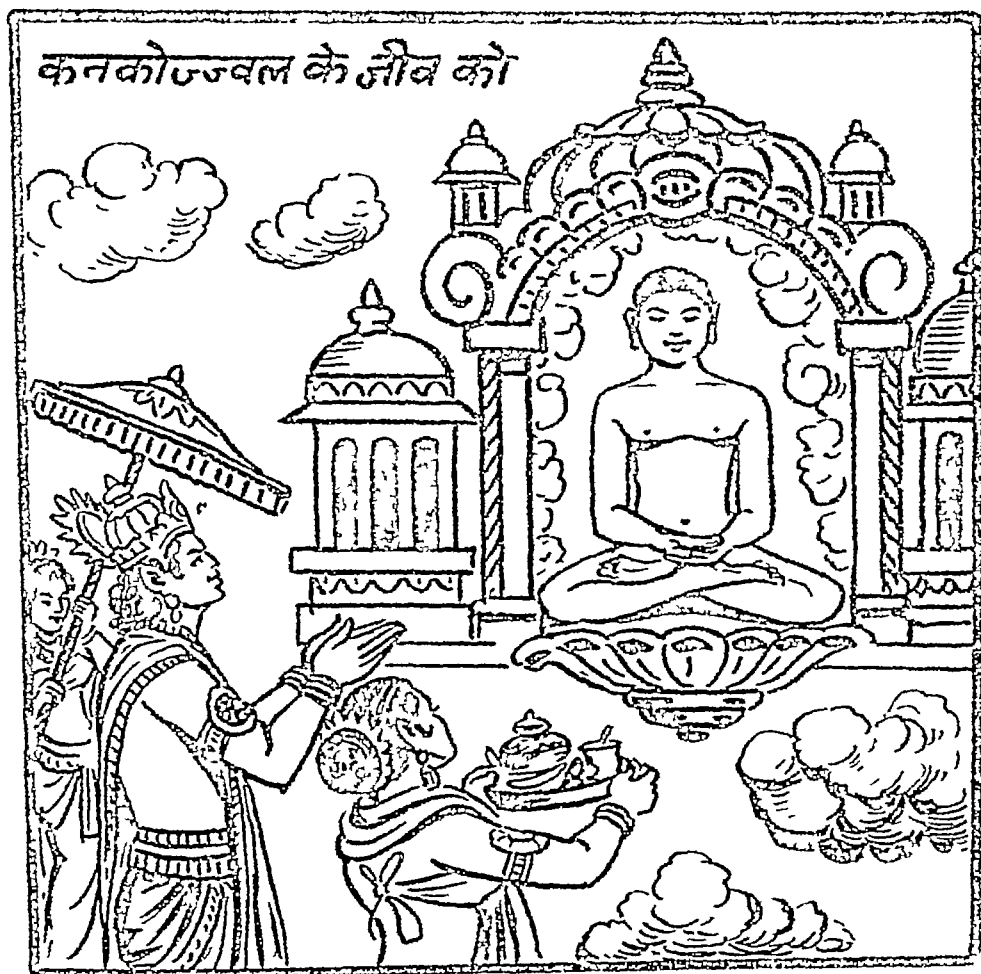
सम्यक्त्व सहित जब मरण किया तब उसको सप्तम स्वर्ग मिला।
मानो विराग के सागर मे सुख ऐश्वर्यो का कमल खिला॥
वह अविरत सम्यक्दृष्टी था पर सयम की थी छटापटी।
इसलिये न क्षण भर भी उसकी ज्ञायक स्वभाव से दृष्टि हटी॥

राजा हरिषेण द्वारा दिगम्वरत्व ग्रहण
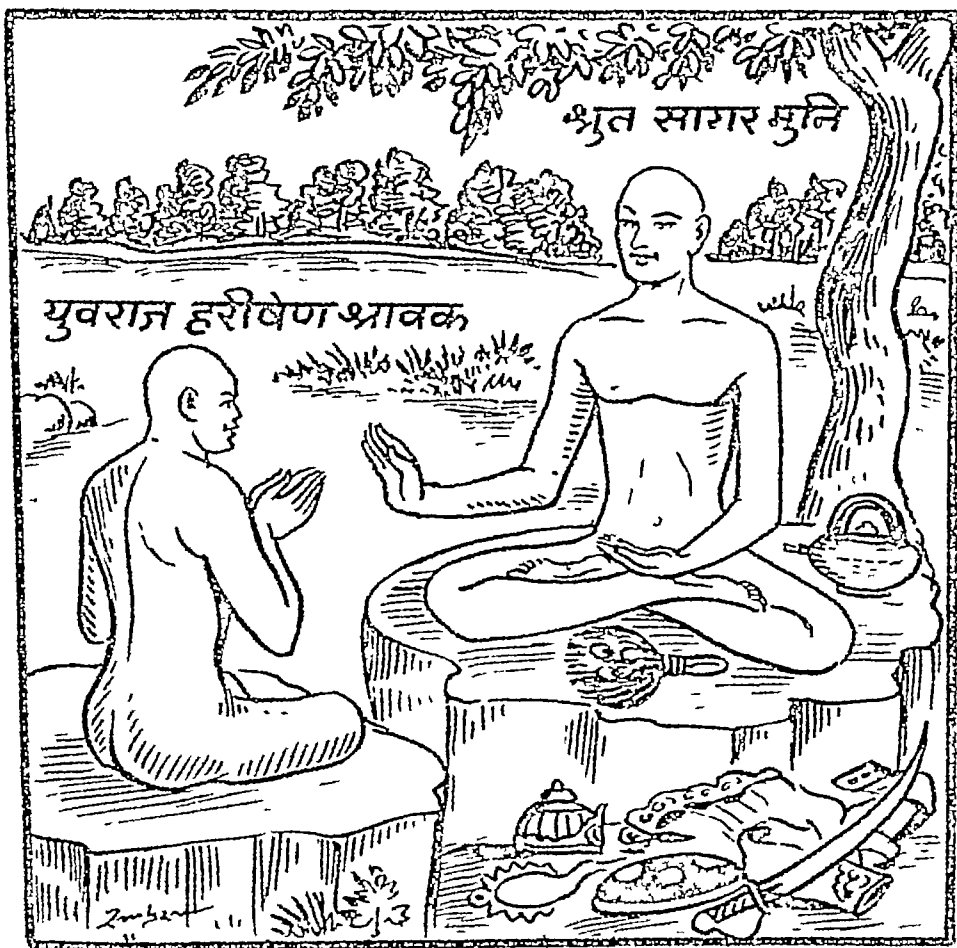
आयु पूर्ण कर वह सम्यक्त्वी अवधपुरी युवराज हुआ ।
वज्रसेन सुत हरीषेण नामक श्रावक सिरताज हुआ ॥
श्रुतसागर मुनि से दीक्षित हो यथाकाल निर्ग्रन्थ हुआ ।
रत्नत्रय तप से प्रशस्त उनके द्वारा शिव-पथ हुआ ॥

हरिषेण मुनि श्री का जीव महा शुक्र स्वर्ग में

धर्म और पुण्यो के फल से प्राप्त हुआ तव स्वर्ग दशम ।
अन्तर्मुहूर्त मे हुए युवा तन धातु रहित था दिव्योत्तम ॥
निज अवधिज्ञान से जान लिया यह वैभव धर्मो का फल है ।
चचल भोगों मे इसीलिये वह रहा वहाँ भी अविचल है ॥

हरिषेण का जीव चक्रवर्ती प्रियमित्र कुमार

पुडरीकणी है विदेह मे उसमे ही प्रियमित्र कुमार ।
सहस छियाणव राजरानियो के थे चक्रवर्ति भरतार ॥
कोटि अठारह अश्व और गज थे जिनके चौरासी लाख ।
मुकुट बद्ध राजा सेवक थे सहस तीस द्वय आगम साख ॥

निर्ग्रंथ तपस्वी प्रियमित्र कुमार
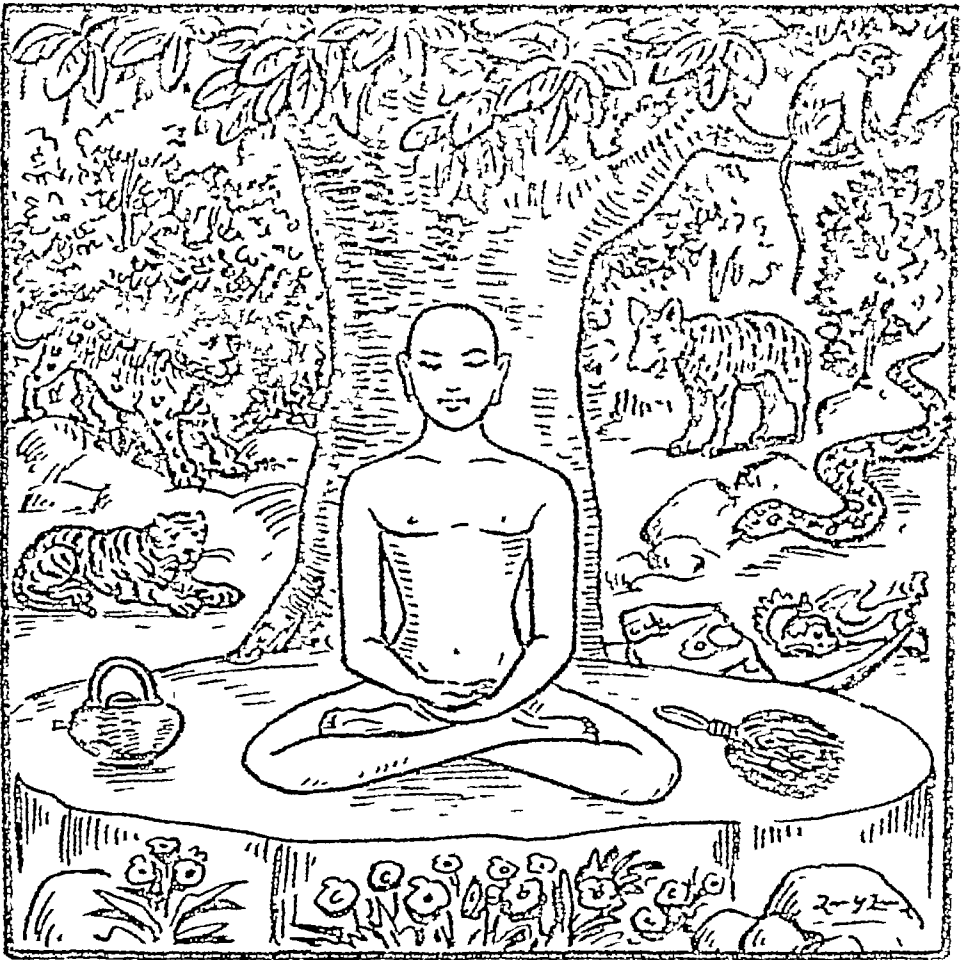
सुन कर जिनवर वाणी को वे उद्‌वोधन को प्राप्त हुए।
निर्ग्रन्थ तपस्वी वन कर निज अन्तश्चेतन मे व्याप्त हुए॥
रत्नत्रय चारो आराधन पाचो व्रत समिति पालते थे।
त्रय गुप्ति सहित वे भाव द्रव्य आश्रव हो सतत टालते थे॥

निर्ग्रंथं मुनि प्रियमित्र कुमार का जीव

फिर आयु पूर्ण कर मुनिवर ने द्वादश स्वर्ग मे गमन किया।
भोगो से रह कर अनासक्त सुर ने निज का अध्ययन किया ॥
थी सूर्य प्रभा सम दिव्य देह शुभ आयु अठारह सागर की।
निज ज्ञान चेतना मय परणति की महिमा वहाँ उजागर की ॥

युवराज नंद (सहस्रार स्वर्ग के देव) द्वारा दीक्षा ग्रहण

आयु पूर्ण कर चय कर आये छत्राकार नगर से।
नन्दिवर्द्धनम् वीरवती दम्पति के पावन घर से॥
नंद नाम युवराज हुआ वह शुभ सम्यक्त्वी श्रावक।
प्रोष्ठिल मुनि से दीक्षा धारी तज विषयों की पावक॥

अर्हत् केवली पाद-मूल मे भाई सोलह कारण।
भावनाएँ जो पुन्य प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ है बन्धन ।।
तीर्थकर पद की महिमा को गा न सके जव गणधर।
सुरपति सरस्वती फणपति भी पूजे जिनको हरिहर ।।

नंद मुनि का जीव तत्त्व चर्चा में तल्लीन

नद मुनीश्वर ने तप करके अपनी काया त्यागी।
अच्युत नामक स्वर्ग लोक मे इन्द्र हुऐ वडभागी॥
निरत तत्त्व चर्चा मे रहकर काल असख्य विताया।
भोगो मे भी अनासक्त रह शुभ उपयोग लगाया॥

महावीर गर्भावतरण
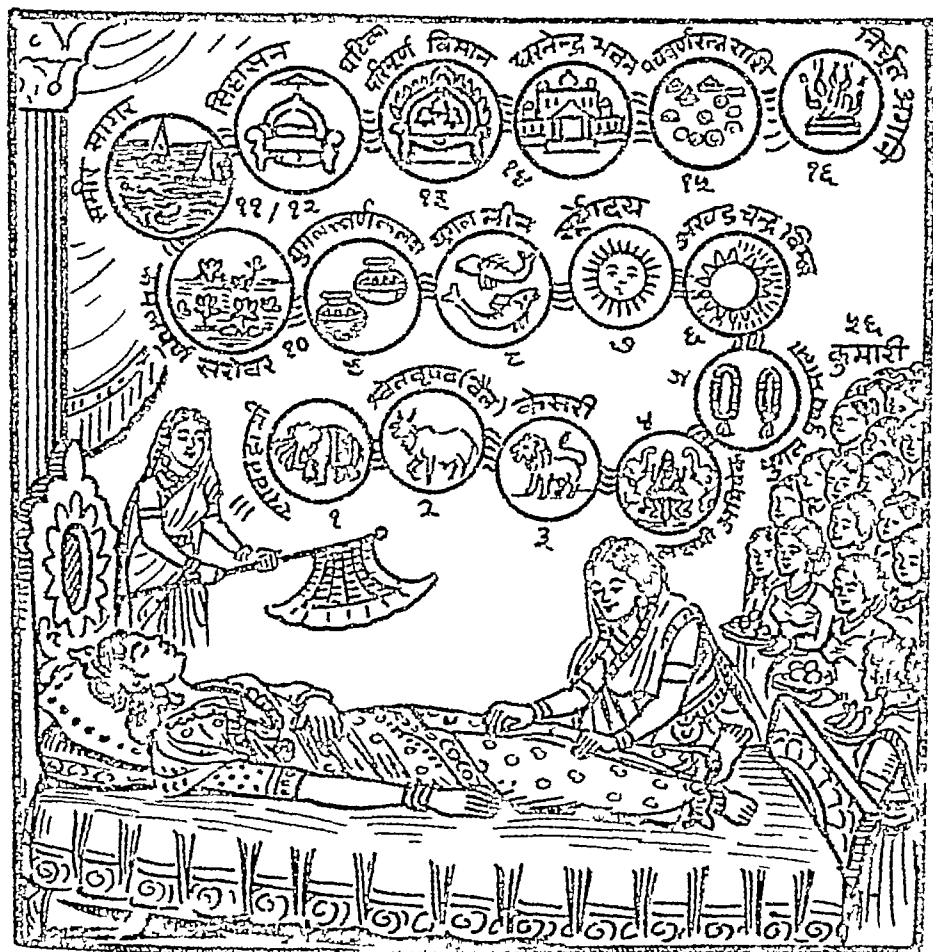
अच्युत स्वर्ग से उतर इन्द्र प्रियकारिणि की कुक्षि पधारे।
आसाढीपष्ठी शुक्ला को हुए पूर्ण गर्भोत्सव सारे॥
पन्द्रह महिने तक देवों ने पृथ्वी पर बरसाये हीरे।
माता ने देखे शुभ सोलह सपने सार्थक धीरे धीरे॥

वीर शिशु को लेकर शची का सौर भवन से निर्गमन

गुप्त रूप से इन्द्राणी ने सौर-भवन में किया प्रवेश ।
जननी को सुख निद्रा देकर शीघ्र उठाया बाल-दिनेश ॥
उनके बदले मायामय सद्य प्रसूत शिशु सुला दिया ।
फिर बाहर आकर सुरपति की हर्षित बाहों में झुला दिया ॥

वीर प्रभु के जन्माभिषेक की शोभा-यात्रा
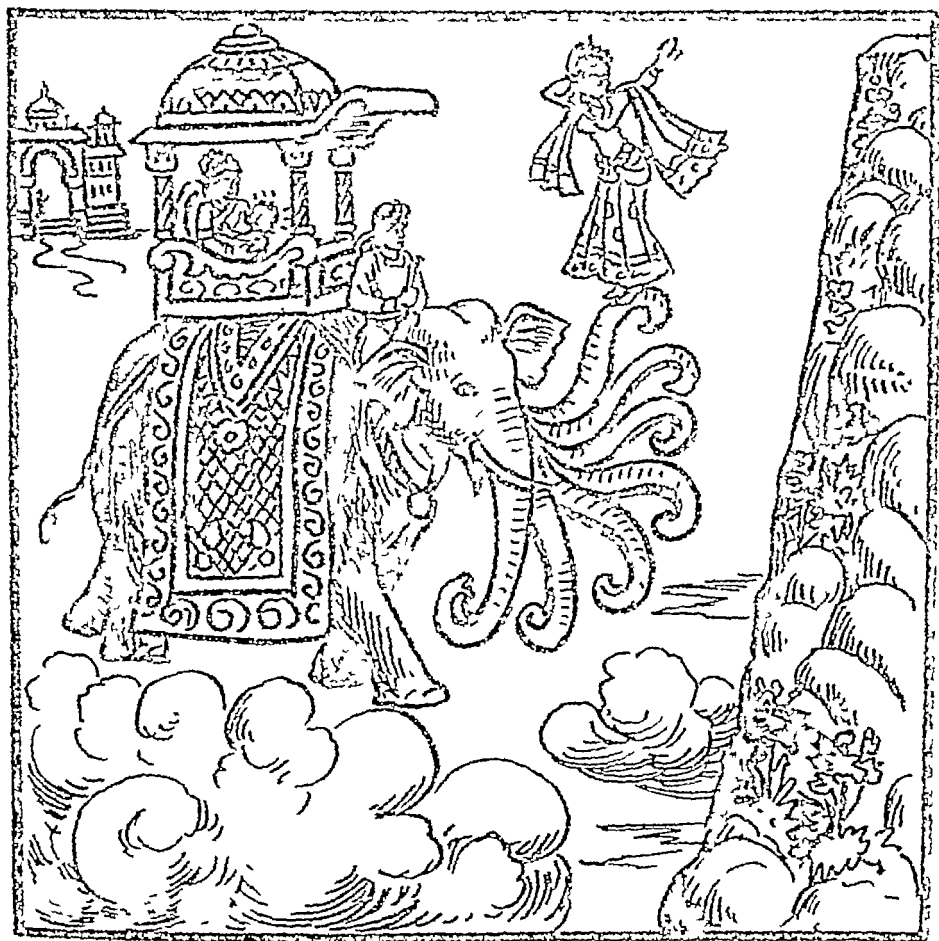
स्वर्गो से उतर जुलूस रहा नभ-पथ से शुभ वैशाली पर।
सुर इन्द्रो की शोभा-यात्रा जन्मोत्सव की खुशहाली पर ॥
यह दिग्गज ऐरावत देखो जिसके दन्तो पर है सरवर।
सर मे सरोज है खिले हुए नचती है सुर-परिया जिन पर ॥

नवजात महावीर श्री के जन्माभिषेक की मंगल वेला

जो क्षीर सिन्धु के नीर-कलश स्वर्णिम सुरगण भर-भर लाते।
इन्द्रों द्वारा धारावाही वे शिशु शिर पर ढारे जाते॥
अभिषेक जिनेश्वर का होता दश शतक अष्ट कलशों द्वारा।
संगीत नृत्य कौतूहल मय है दृश्य अलौकिक ही सारा॥

अपूर्व अध्यात्म प्रभावः सन्मति नामकरण
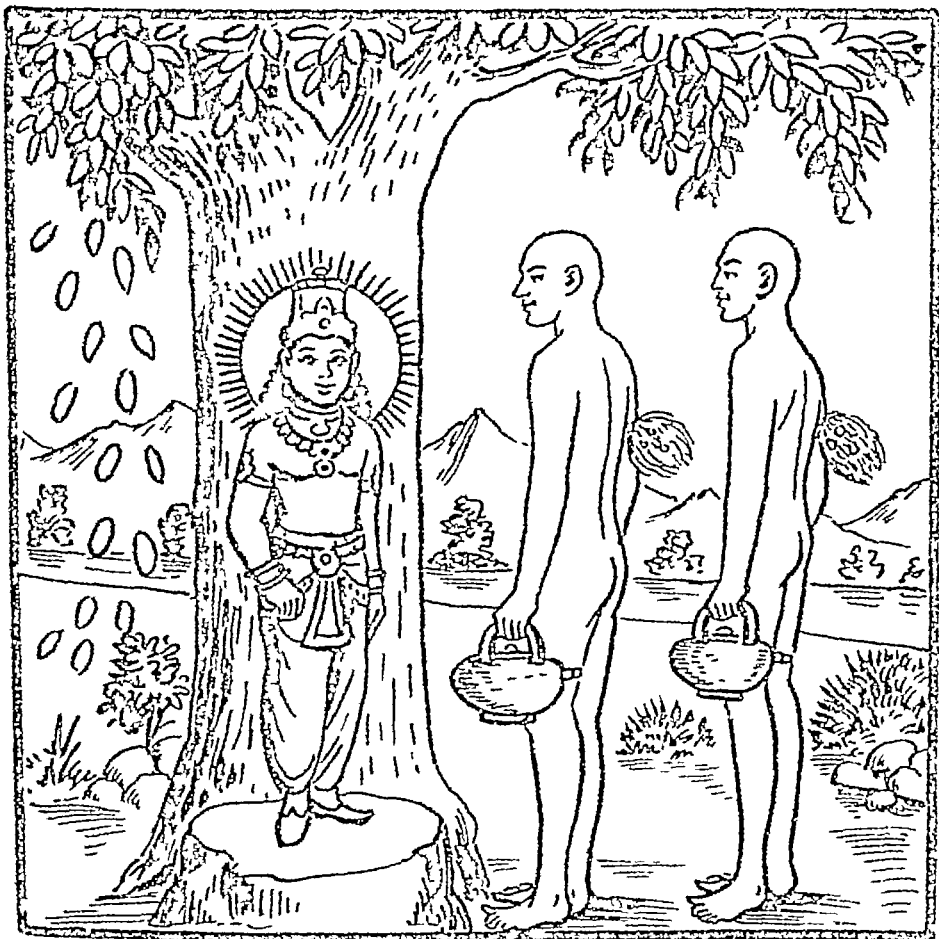
शैशव-सुलभ वाल लीलाएँ लोकोत्तर थी वर्द्धमान की।
सजय विजय मुनीश्वर चारण की शकाये समाधान की ॥
ज्यो ही वालवीर को देखा उन्हे तत्व का बोध हो गया।
वर्द्धमान का नाम करण तब सन्मति से सबोध होगया ॥

आम्ली (अन्डाडावरी) क्रीडा मे रत राजकुमार वीर श्री की

संगम नामक एक देव तव शक्ति परीक्षा लेने आया।
महा भयकर नाग रूप धर उसी वृक्ष पर जा लिपटाया ॥
जिस पर खेल रहे थे सन्मति साथी सयुत अड-डावरी।
उतरे फण पर निडर पैर रख देव विक्रिया हुई वावरी ॥

थैयां छूने की क्रीड़ा में रत मायावी संगमदेव और वर्द्धमान कुमार

अत पराजित होकर सगम बन कर सखा खेलने आया।
थैया छूने की क्रीडा मे वर्द्धमान ने उसे हराया।
इतने पर भी सुर-सगम ने उनकी शक्ति नही पहिचानी।
अत पुन उस मायावी ने उन्हे गिराने की विधि ठानी ॥

महावीर जी के [illegible]
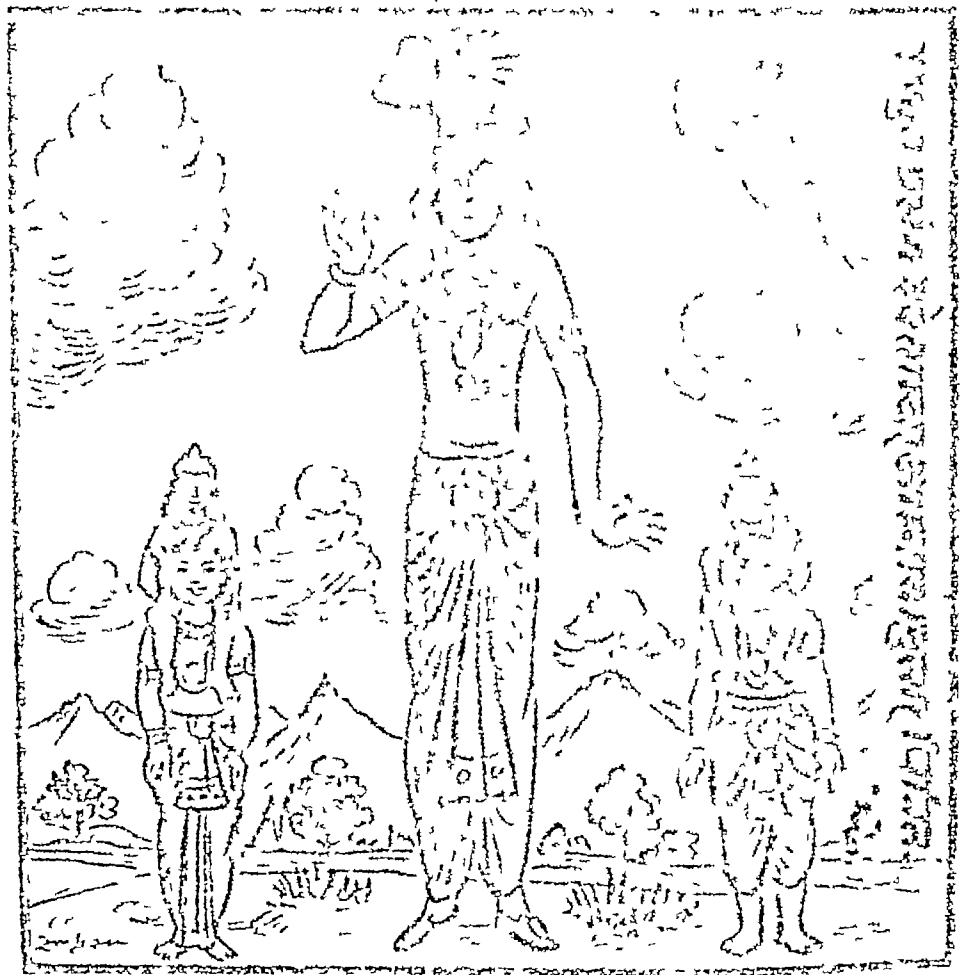
थी क्रीडा की शर्त विजेता को पराजित लादे कंधों पर।
तदनुसार चढ बैठे बालक वीर उसी समय के ऊपर॥
किन्तु विक्रिया करके सुर ने अपना लम्बा रूप बनाया।
सिर पर घूंसा मार वीर ने उसे यथावत् पुनः बनाया॥

आक्रामक निरंकुश हस्तीकोवश करने वाले "अतिवीर"

अत तभी से वर्द्धमान शिशु सन्मति महावीर कहलाये ।
वश मे किया मत्त हाथी जब तब से प्रभु अतिवीर कहाये ॥
वीरोचित थे कार्य बाल के जिनमे पौरुष झलक रहा था ।
जड काया को भेद-भेद कर चेतन का रस छलक रहा था ॥

धर्म के ठेकेदारों द्वारा रोका गया हरिकेशी चाण्डाल

जब तरुण वीर वैरागी ने वन के प्रति कदम बढाया था ।
तब जन समूह दर्शक गण का मानो सागर लहराया था ।।
इस जन समूह को चीर बढा वह हरिकेषी चाडाल वहाँ ।
पर मना किया रोका उसको था उच्च वर्ग का जाल वहाँ ।।

पतितोद्धारक युवराज वर्द्धमान

पर स्वय वीर ने उसे देख अपने ही निकट बुलाया था ।
अपनी स्नेहिल बाहो मे भर उसको गले लगाया था ।।
इस युग के सम्प्रति शासन मे उस युग की ही प्रतिछाया है ।
वैदिक युग के अन्त्यज को सन्मति युग ने उच्च उठाया है ।।

स्याद्वाद सिद्धान्त की पृष्ठ भूमि पर
प्रतिष्ठित वैशाली का सत खंड भवन
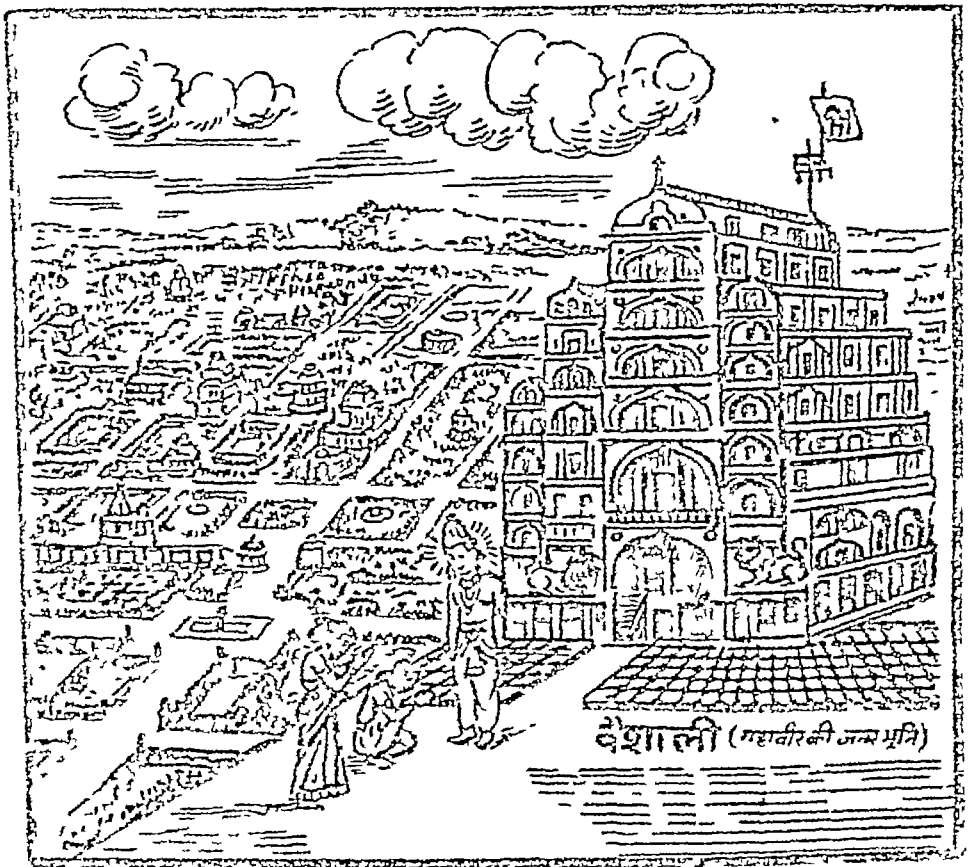
प्रस्तुत प्रसंग श्वेताम्बर आम्नायानुसार चित्रित

अनेकान्त-रहस्य

निज सत खडे राज-भवन की, चौथी मजिल के सुकक्ष में।
बैठे सोच रहे थे सन्मति, अपेक्षाओ के न्याय पक्ष मे ।।

उसी भवन की पहली मजिल मे स्थित थी त्रिशला देवी।
किन्तु सातवी पर पितु श्री थे, देव शास्त्र गुरु के पद सेवी ।।

समवयस्क ने आकर तब ही पूँछा पूजनीय माता जी।
वर्द्धमान है कहाँ अवस्थित ? ऊपर बोली श्री त्रिशला जी ।।

बालक सत्वर चढा भवन की उसी सातवी मजिल ऊपर।
पूछा नृप से हे जनकश्री ! वर्द्धमान जी गये कहाँ पर ? ।।

नीचे, उत्तर दिया उन्होने बालक अजमजस मे डोला।
ऊपर नीचे की अपेक्षा समझ न पाया बालक भोला ।।

ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर आते-जाते समवयस्क ने।
खोज न पाया वर्द्धमान को उस निराश ने अनमनस्क ने ।।

किन्तु दूसरे दिन मिलने पर उसको सन्मति ने समझाया।
ऊपर नीचे के आशय को भली भाँति मन मे बैठाया ।।

माता जी की तो अपेक्षा मैं सचमुच ऊपर बैठा था।
किन्तु तातश्री की अपेक्षा तो मैं नीचे ही ठहरा था ।।

दोनो की वाणी सम्यक् थी किन्तु न थी निरपेक्ष सर्वथा।
अतः भ्रमित तुम हुये क्योकि मैं चौथी ही मजिल मे था ।।

इस घटना ने आगे जाकर खोज निकाला स्याद्वाद को।
अनेकान्त सापेक्षवाद ने दूर भगाया विसवाद को ।।

याज्ञिक क्रिया काँडो के विरुद्ध वीर का सिंहनाद

धर्म नाम पर जीवित नर पशु वैदिक युग में होमे जाते ।
स्वार्थ लोभ वश पडो द्वारा टिकटस्वर्ग के वाटे जाते ।।
हिसा का यह नॅगा ताँडव धर्म नाम पर आत्म भ्राति को ।
देखा तरुण किशोर वीर ने अत जगाया लोक क्राति को ।।

साम्यवाद-समाजवाद सर्वोदय के ज्वलन्त प्रतीक
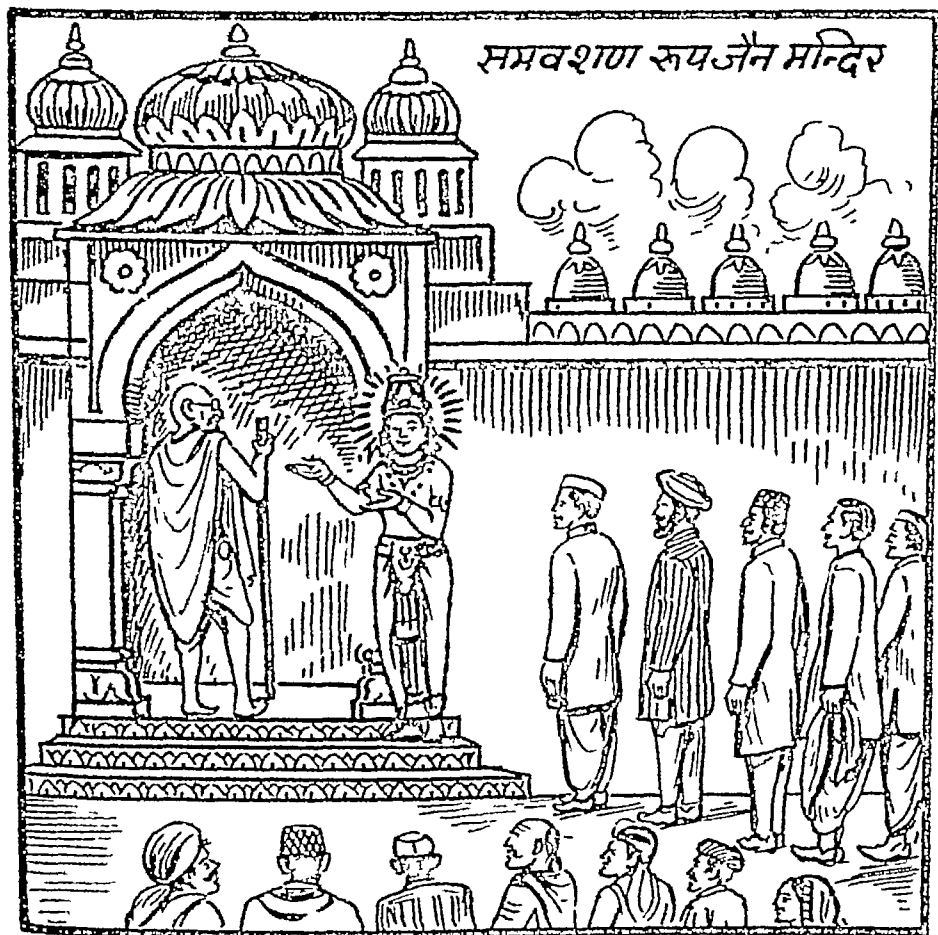
वर्द्धमान युवराज क्रांतियो के प्रशान्तिमय अग्रदूत थे ।
सामाजिक एव धार्मिक सब सत्य तथ्य उनसे प्रसूत थे ।।
पतितो को जो पावन करदे वही धर्म सचमुच पावन है ।
दीन-वन्धु का यह दरवाजा सर्वोदय का ही कारण है ।।

वैवाहिक प्रस्तावों को सविनय ठुकराते हुए वर्द्धमान

जितशत्रु कलिंगाधीश आदि निज सुता साथ मे लाते थे ।
पर वर्द्धमान सारे परिणय-प्रस्तावो को ठुकराते थे ।।
चौबीस वर्ष के तरुण वीर थे मोहित मुक्ति मोहिनी पर ।
इसलिये मानते भी कैसे ? पितु-माता के समझाने पर ।।

विरागी तरुण वीर का महाभिनिष्क्रमण

मगसिर कृष्णा दशमी के दिन राजपाट वैभव ठुकराकर।
वीर विरागी ने तन मन से दिगम्बरत्व का दीप जला कर॥
ज्ञातृखड नामक अरण्य की ओर चली चन्द्रप्रभा पालकी।
मानव सुरगण द्वारा वाहित भावलिंग मुनि वीर बालकी॥

दीक्षा कल्याणक पर लौकान्तिक देवों द्वारा अनुमोदना

ॐनम सिद्धेभ्य पूर्वक केशो का लुचन कर डाला ।
लौकान्तिक दीक्षा कल्याणक पर लाये अनुमोदन माला ॥
अध्रुव अशरण और अपावन देह भोग नश्वरता जग की ।
पर से भिन्न एक चेतन मे सवर निर्जरता शिव-मग की ॥

चंड कौशिक सर्प कृत उपसर्गो पर वीर-विजय

चले उसी वन वीर जहाँ वह सर्प चडकौशिक रहता था ।
जहरीली फुकारो से जो दावानल वन कर दहता था ।।
क्रोधित होकर ज्यो ही उसने डसा वीर प्रभू के मृदु पग मे ।
लगी निकलने धार दूधिया त्यो ही अगूठे की रग मे ।।

गो-पालक का आक्रोश-वीर प्रभू-की सहिष्णुता
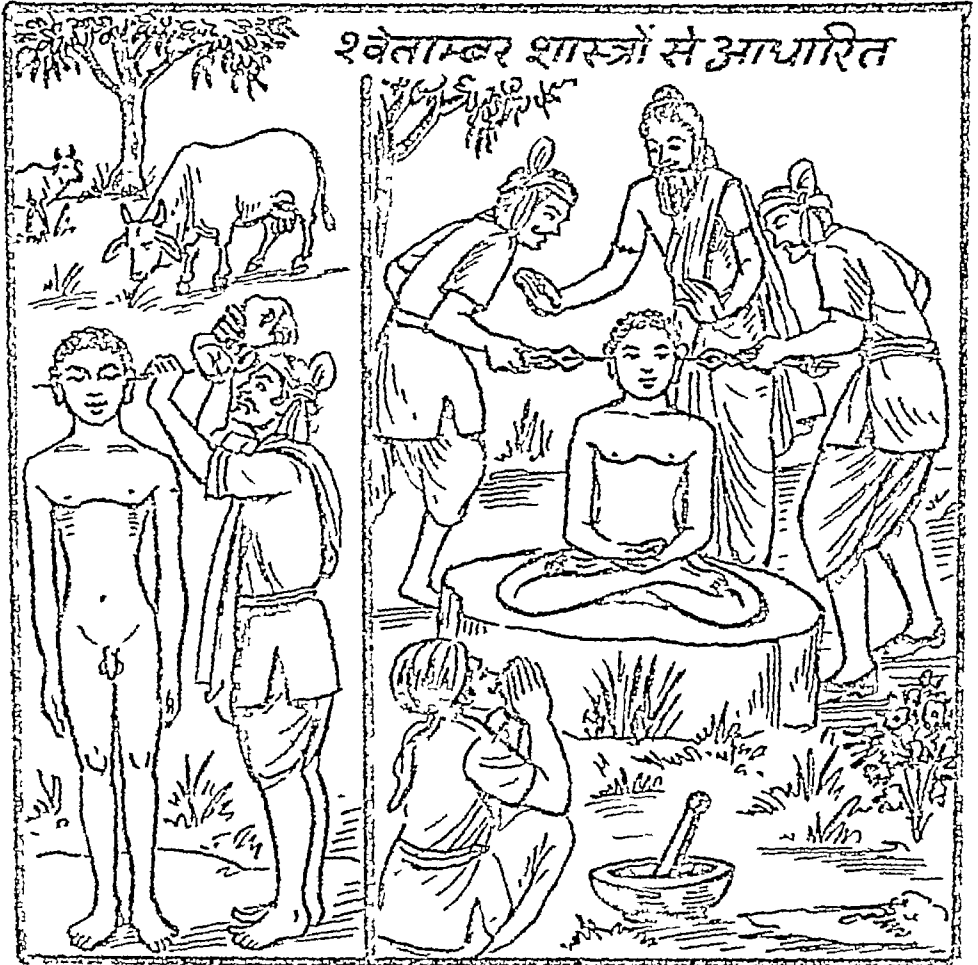
सौंप गया वह पशु-गण अपने महावीर को चरवाहा था ।
आकर वापिस ले लूँगा मै उसने ऐसा ही चाहा था ।।
किन्तु मौन ध्यानस्थ वीर को इन वातो से था क्या मतलव ।
अत दुष्ट ने कर्ण युगल में कीला ठोक दिया ही था तव ।।

रुद्र कृत उपसर्गों के विजेता महावीर
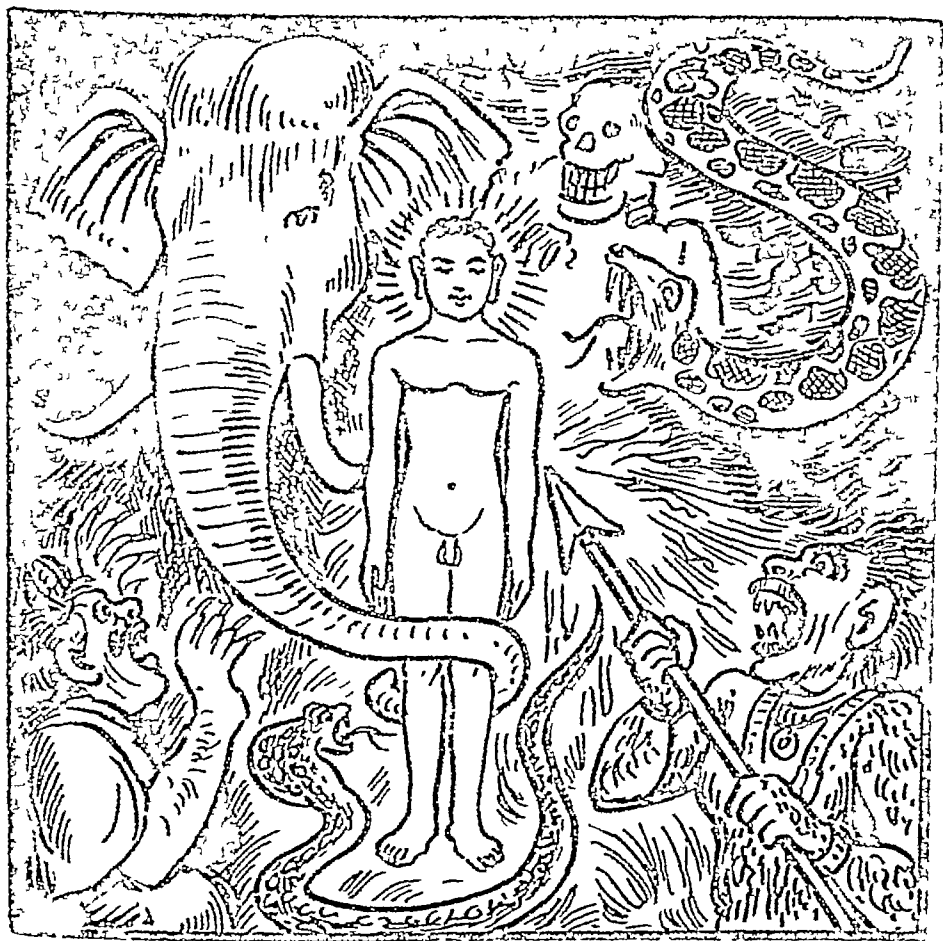
ग्यारहवाँ भव रुद्र वीर के तप की कठिन परीक्षा लेने।
उज्जयिनी के श्मसान मे जोर-जोर से लगा गरजने॥
किन्तु विदेहीनाथ वीर को क्षपकश्रेणि मय शुक्ल ध्यान था।
उनकी ज्ञान चेतना को पर नश्वर तन का कहाँ भान था?॥

हिसक वन्य पशुओ के वेश में रुद्रकृत उपसग
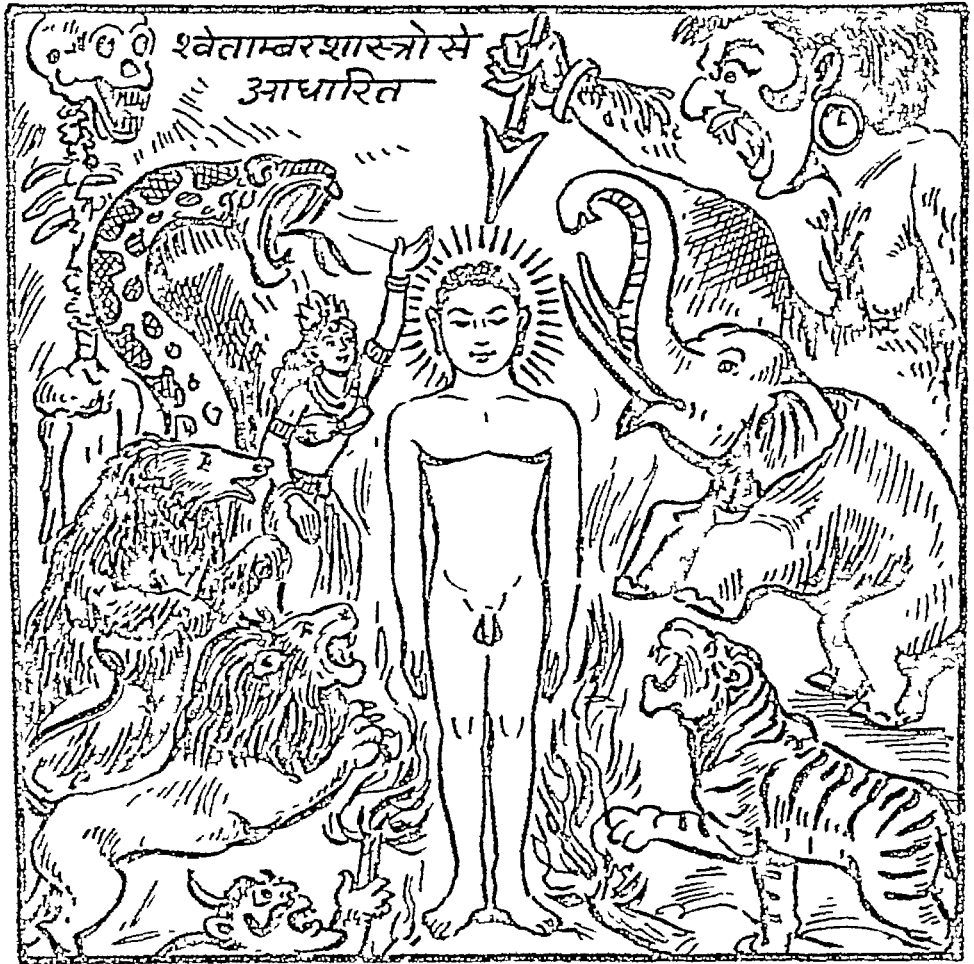
धीर वीर गभीर सौम्य थी शान्त सहिष्णु वीर की मुद्रा ।
आतम शक्ति से हार गई थी क्षुद्र-रुद्र की माया रुद्रा ॥
रुद्र रौद्र परिणामो द्वारा नरक आयु का पात्र होगया ।
सु-विख्यात अतिवीर नाथ का तप कर स्वर्णिम गात्र होगया ॥

काम विजेता वीतराग वर्द्धमान द्वारा पराजित अप्सराएँ

लोक विजेता महामल्ल सब काम-सुभट योद्धा से हारे।
रभा और तिलोत्तमाओ पर हरिहर ब्रह्मादिक भी वारे ।।
तप से विचलित करने प्रभु को अप्सराओ ने हाव-भाव से।
खूब रिझाया महावीर को हार गई पर ब्रह्मभाव से ।।

सती चन्दना द्वारा वीर श्रमण को निरन्तराय आहार
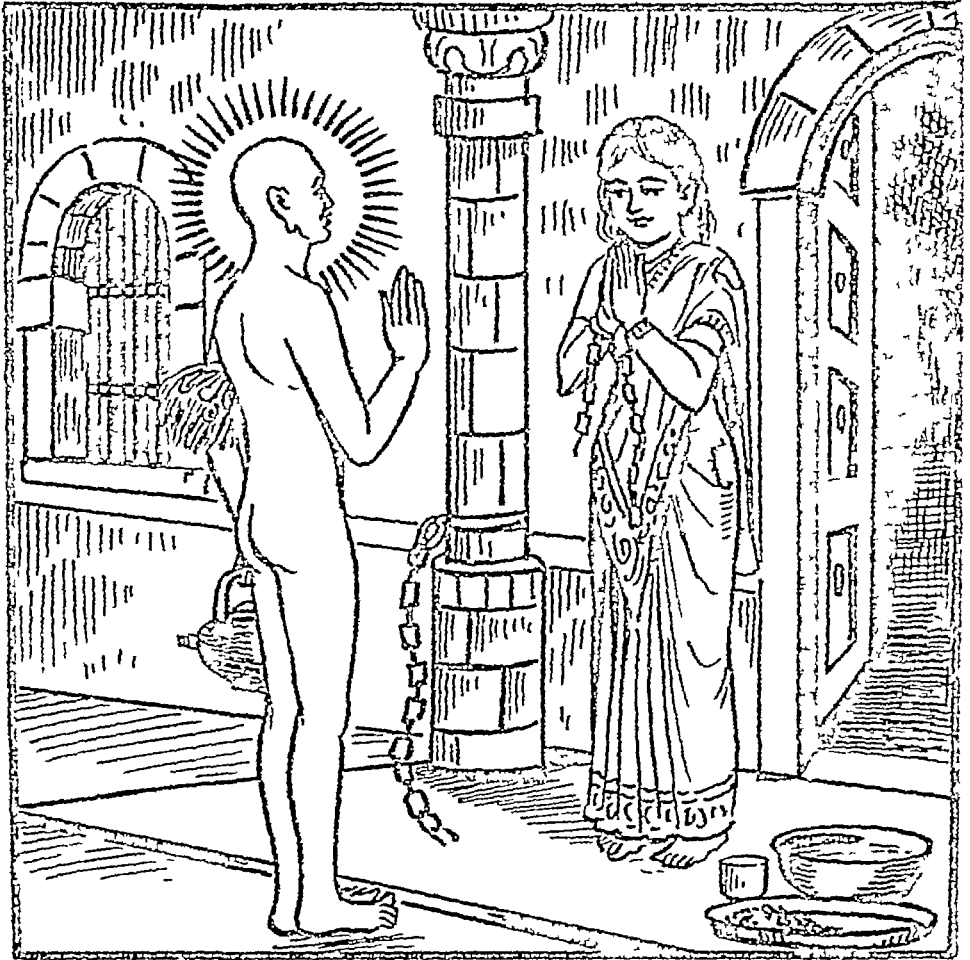
उस अभागिनी दासी ने जब महाश्रमण को पडगाहा था।
पराधीनता ने स्वतन्त्रता की देवी को अवगाहा था॥
कोदो के दाने खीर बने फिर निरन्तराय आहार हुआ।
पचाश्चर्य चदना का यो सचमुच पतितोद्धार हुआ॥

वैभव की खोज में पुष्पक ज्योतिषी

वीर श्रमण ने आहारों के बाद किया वन प्रति प्रस्थान ।
आर्द्र भूमि मे चरण तलो के उनके बनते गये निशान ॥
पुष्पक नामक एक ज्योतिषी उसी पथ पर आता है ।
पद-चिन्हो को देख शास्त्र से रेखा ज्ञान मिलाता है ॥

ज्योतिषी का अन्तर्द्वन्द्व

(प्रस्तुत प्रसंग श्वेताम्बर आम्नायानुसार वर्णित)

(१)

तेजस्वी सम्राट् प्रतापी के ही चरण-चिन्ह् है ये।
क्योकि शास्त्र अनुसार ज्ञान से दिखते नही भिन्न है ये ॥

(२)

शायद पथ को भूल भटकता होगा वह इस जगल मे।
अगर राह बतलादू मुझ को नव निधि मिले इसी पल मे ॥

(३)

इसी लोभवश पथ चिह्नो को देख-देख बढता जाता।
एक जगह वह तरु से आगे कोई चिह्न नही पाता ॥

(४)

अत वही पर रुक जाता है जहाँ वीर ध्यानस्थ खडे।
आशा के विपरीत अकिंचन वस्त्र विहीन दिखाई पडे ॥

(५)

मेरा ज्योतिष ज्ञान गलत है अथवा झूठी पुस्तक है।
अत क्रोध से लगा फाडने वह सामुद्रिक पुष्पक है ॥

(६)

किन्तु श्रमण के मुख-मडल से फूट रही थी जो किरणे।
उनकी आभा से चट्टाने सोना-चादी लगी उगलने ॥

महत्वाकॉक्षी पुष्पक ज्योतिषी का आत्म समर्पण
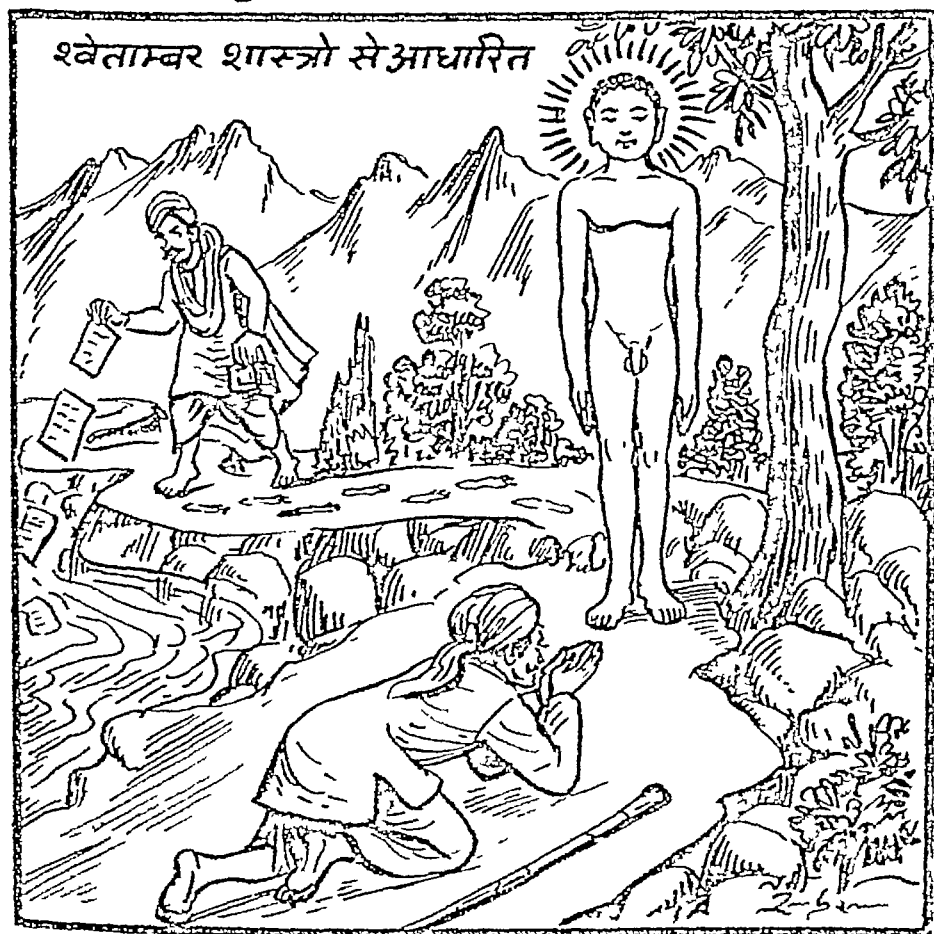
जिन्हे अकिचन समझा मैने वे तो सचमुच वहुत वडे है।
सम्राटो के वैभव सारे पद-रज मे ही भरे पडे है ॥
अत शीघ्र ही सामुद्रिक वह दभ छोड चरणो मे आया।
वीर चरण चिह्नो पर चल कर उसने निज भव्यत्व जगाया ॥

परमज्योति महावीरश्री को केवलज्ञान की प्राप्ति
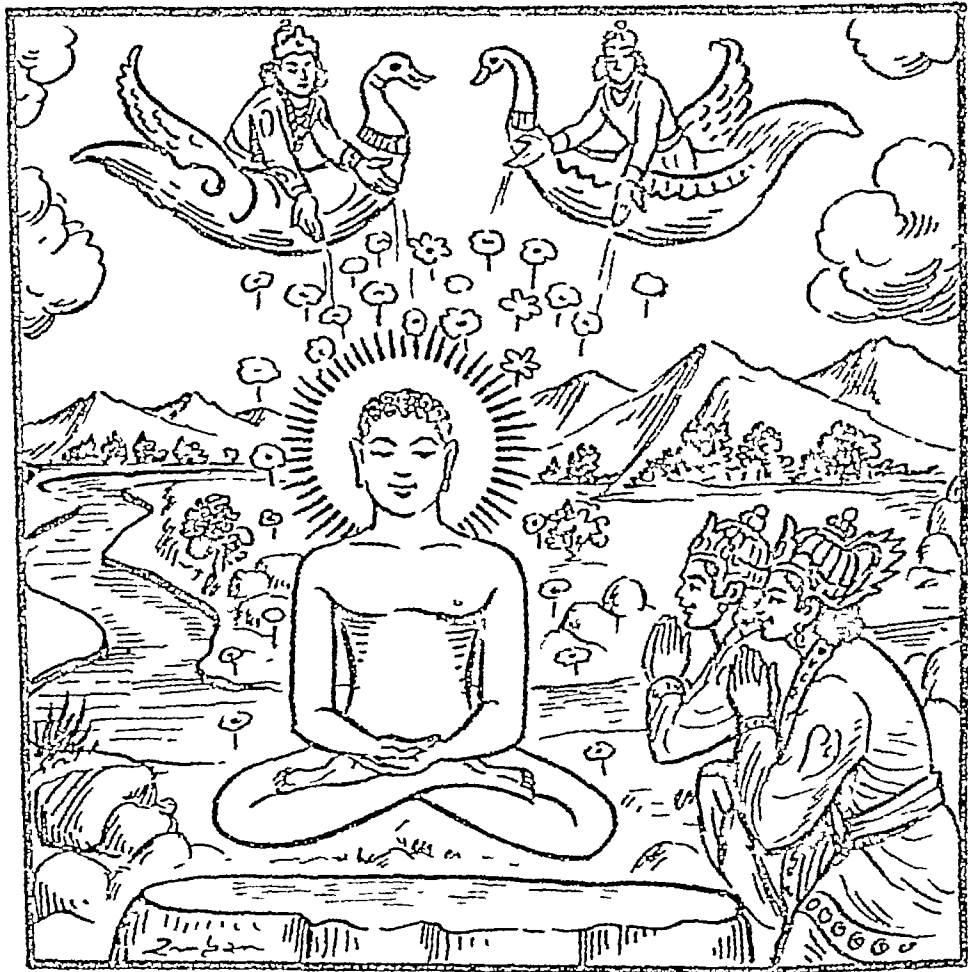
प्रकृति त्रिसठ कर्म घातिया किये नष्ट अरिहंत हुये ।
त्रैकालिक त्रैलोक्य विलोकी वे केवलि भगवंत हुये ।।
ऋजुकूला सरिता के तट पर महावीर सर्वज्ञ घने ।
बैसारवी शुक्ला दसमी को देवोत्सव भी हुये घने ।।

सर्वज्ञ तीर्थंकर भ० महावीर की धर्म सभा
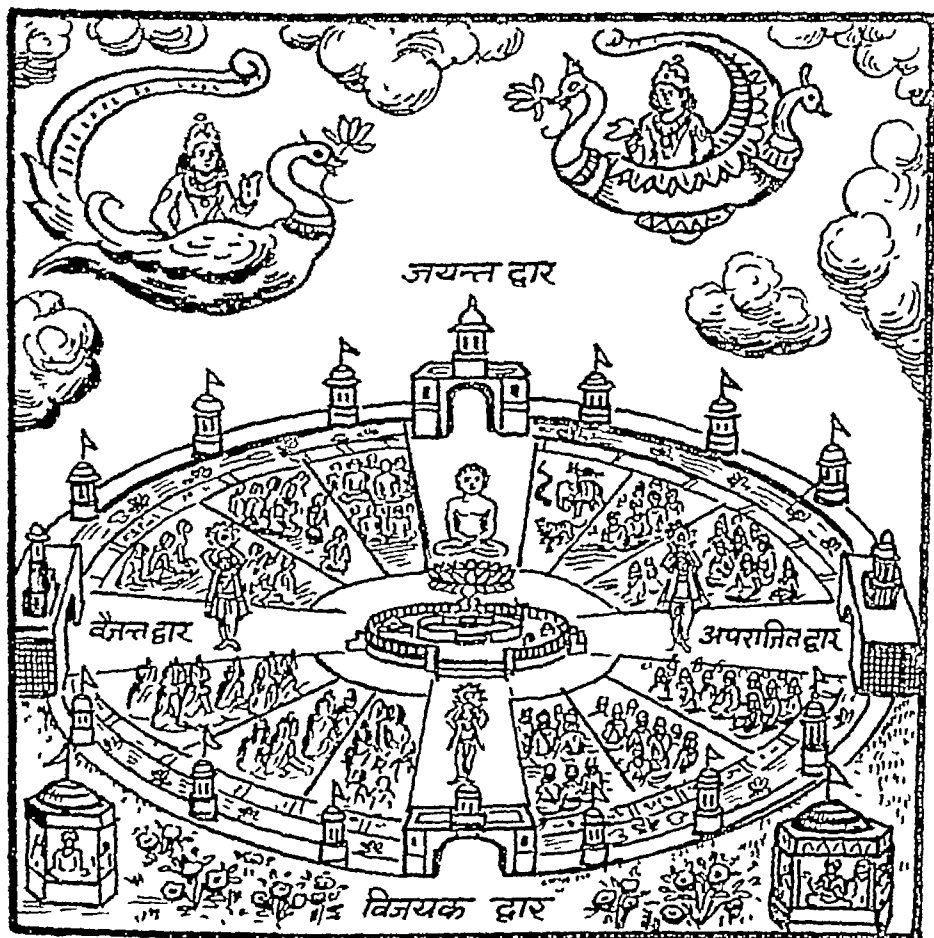
भक्तामर द्वारा रचित सभा-मडप वैभव युत समवशरण ।
लय गोलाकार प्रकोष्ट सहित विस्तृत सर्वोदय का कारण ॥
मानाङ्गण मे चौपथ चौदिशि जिन प्रतिमा मानस्तम्भ खडे ।
उनके आगे सरवर सुदर पुनि प्रथम कोट मे रतन जडे ॥

विराट् धर्म सभा विवरण

(१)

खाई को घेरे वन-उपवन पुनि दिशा चतुर्दिक ध्वजा पीठ।
फिर स्वर्णिम कोट दूसरा है द्वारो पर भवनो के किरीट॥

(२)

पुनि कल्प वृक्ष वन में मुनि सुर के वने हुए हैं सभा भवन।
है मणिमय कोट तृतीय रचा द्वारो पर कल्पो के सुर-गण॥

(३)

पुनि लता भवन स्तूप आदि श्री मडप क्रमश' तने हुए।
है केन्द्र स्थल मे गधकुटी चौदिशा कक्ष है वने हुए॥

(४)

इन वारह् कक्षो मे क्रमश मुनि कल्पवासिनी आर्यिकाएँ।
ज्योतिप व्यन्तर भवनत्रिक की हैं समासीन देवाङ्गनाएँ॥

(५)

फिर देव भवन व्यन्तर ज्योतिप अरु कल्प वासि नर पशु के है।
ये सभी सभ्य श्रोता वनकर सन्मति वाणी को सुनते है॥

(६)

उस गधकुटी कमलाशन पर है अन्तरीक्ष श्री वर्द्धमान।
हैं समवशरण के जीव सभी दिव्यध्वनि श्रवणातुर महान॥

इन्द्र की सूझ-बूझ

(१)

सर्वज्ञ केवली हुए वीर फिर भी दिव्यध्वनि नही खिरी।
छियासठ दिन यद्यपि बीत गये फिर भी मौनी है वीरश्री ।।

(२)

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र शीघ्र इसका रहस्य जब जान चुका।
तब वृद्ध विप्र का स्वॉग बना गुरु कुलाचार्य के निकट रुका ।।

(३)

जो पच शतक निज शिष्यो को वेदान्त पढाया करता था।
निज विद्या प्रतिभा का मिथ्या बस दभ सदा ही भरता था ।।

(४)

उस युग ने लोहा माना था उसके अकाट्य शास्त्रार्थों का।
था याज्ञिक क्रिया काड वेत्ता ज्ञाता था नाना अर्थों का ।।

(५)

हो ज्ञान अल्प अथवा अतिशय पर यदि उसमे सम्यकता है।
तो वन्दनीय वह देवो से वरना वह केवल मिथ्या है ।।

(६)

था। इन्द्रभूति गौतम बहुश्रुत आचार्य किन्तु मिथ्यात्वी था।
पर गणधर होने योग्य पात्र बस एक मात्र वह द्विज ही था ।।

(७)

जिनवर वाणी जो झेल सके उस युग का ऐसा योग्य पात्र।
सौधर्म इन्द्र की प्रज्ञा मे था इन्द्रभूति ही एक मात्र ।।

(८)

इसलिये वृद्ध का स्वाँग बना वह इन्द्र विप्र को ले आया।
उस समवशरण की ओर जहाँ था मानथंभ उन्नत काया ।।

मानस्तम्भ दर्शन और अहंकारी इन्द्रभूति गौतम का दर्प दलन
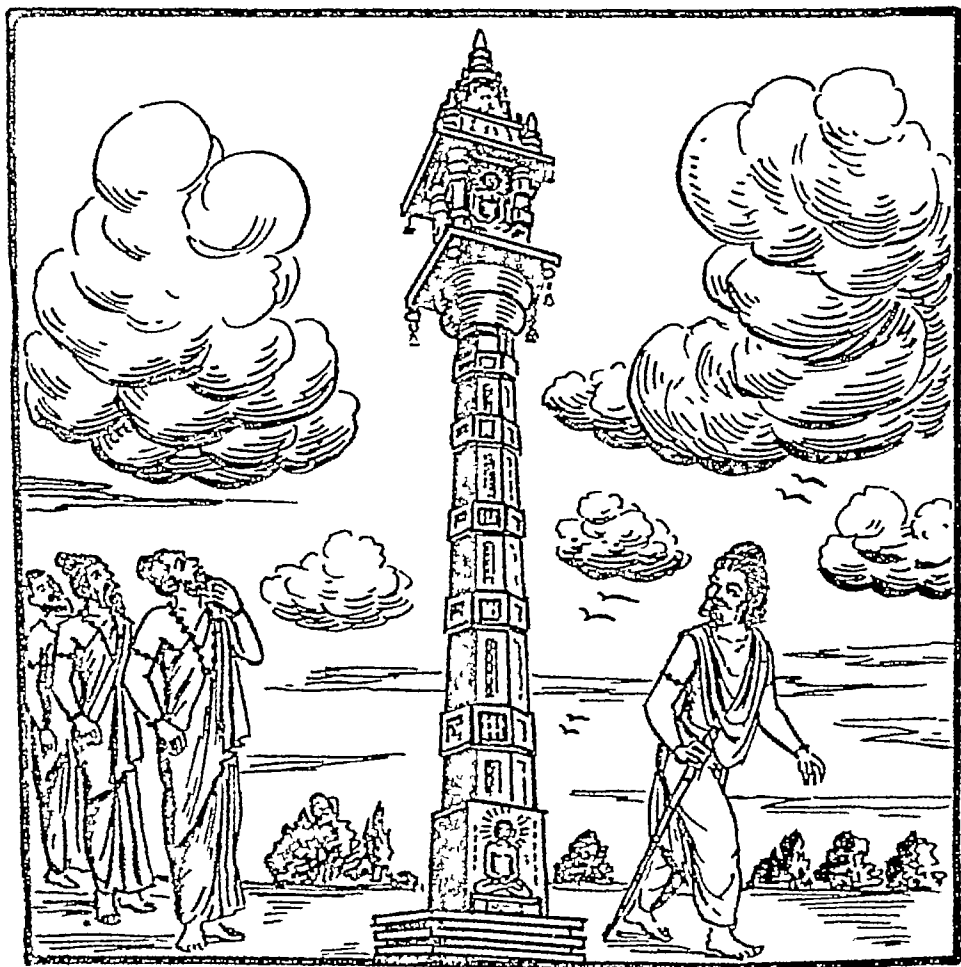
फिर क्या था गौतम ज्ञानी का मिथ्या मद सारा चूर हुआ।
स्तम्भ देख स्तम्भित था मिथ्यात्व अंधेरा दूर हुआ॥
सम्यक्त्व जगा निर्ग्रन्थ हुआ सन्मति का गणधर बन पहला।
श्रुत द्वादशाग में भाव गूँथ जिनवाणी अमृत रहा-पिला॥

वीर हिमाचल ते निकसी गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है

जिस दिवस दिव्य ध्वनि खिरी प्रथम वह सावन कृष्णा थी पावन।
तिथि महावीर के शासन की प्रतिपदा माँगलिक मन-भावन ॥
विपुलाचल से दिया गया जो प्रथम देशना का संदेश।
गौतम गणधर ने गूथा है उसको ही सामान्य-विशेष।

महावीर भगवान के विश्व व्यापी अमर सन्देश
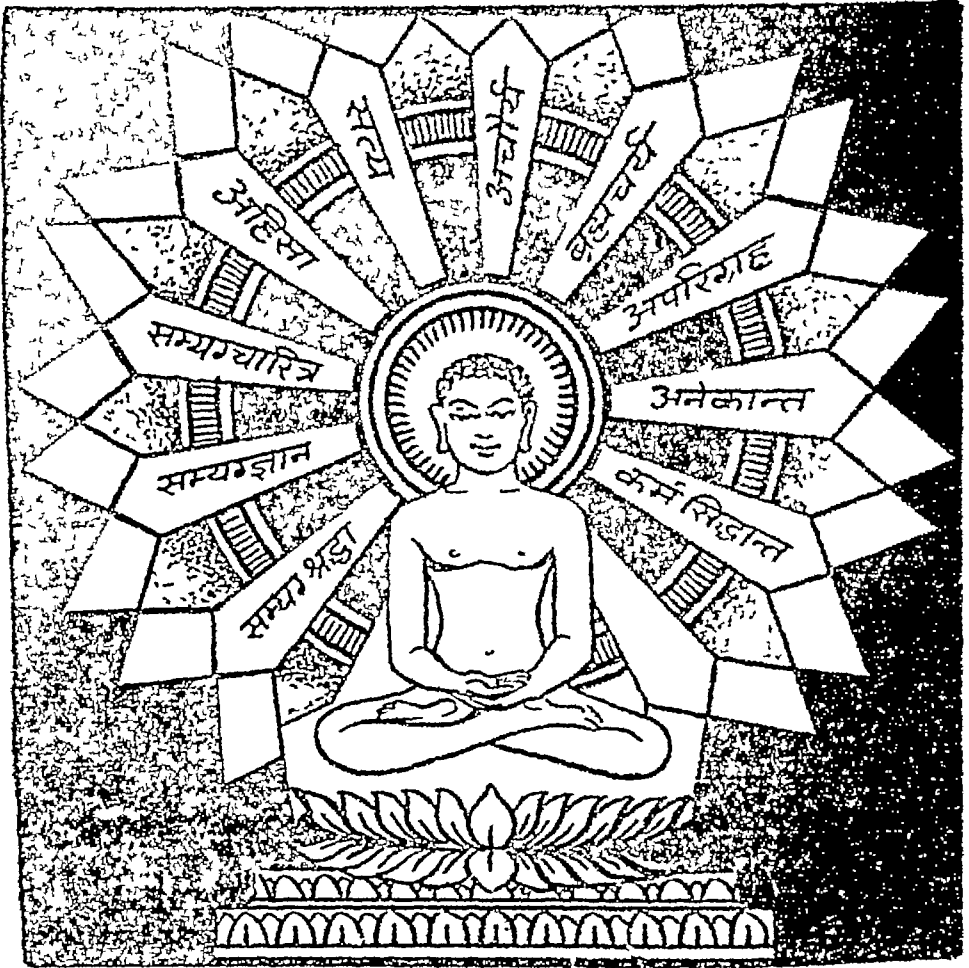
वीतरागता परम अहिंसा स्याद्वाद सर्वोदय ही ।
कर्मवाद निसगवाद हैं द्वादशाग वाणी मय ही ॥
पर द्रव्यो से भिन्न सर्वथा ज्ञान ज्योति हर चेतन है ।
स्वाभाविकता वीतरागता वैभाविकता बंधन है ॥

अहिंसा की छत्रच्छाया का दृश्य

जीने का अधिकार सभी को स्वय जियो जीने भी दो ।
शेर गाय को एक घाट पर करुणा जल पीने भी दो ।।
आत्मा को प्रतिकूल लगे जो औरो को भी वह प्रतिकूल ।
नही चुभाओ अत. किसी को कभी दु ख हिंसा के शूल ।।
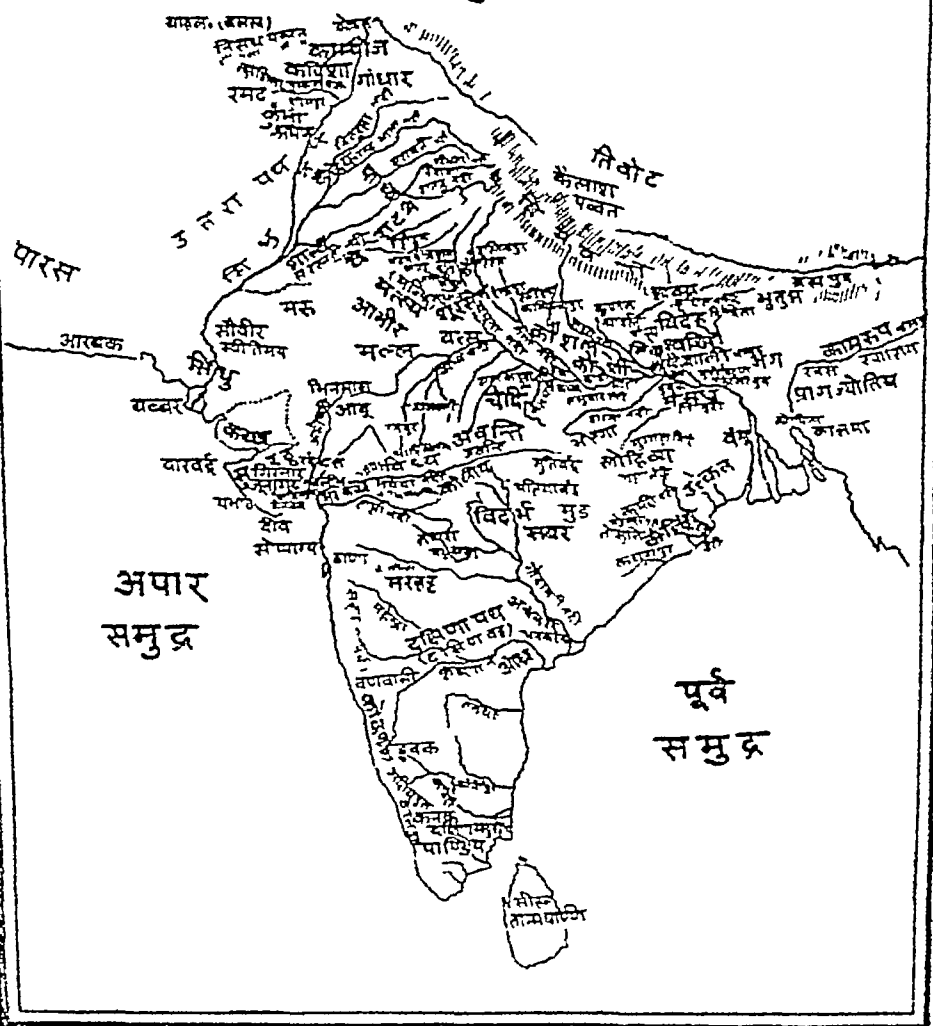
श्री वीर प्रभु की चरण-रज से

प्रभावित तत्कालीन भारत

महारानी चेलना द्वारा यशोधर मुनि का उपसर्ग निवारण

मुनि तन को हा ! छेद-छेद कर चीटी रुधिर पान करती थी।
सम्यक्त्व शिरोमणि राज्ञि चेलना देख-देख आहे भरती थी॥
किन्तु अतत कीडी दल को वडे यत्न से शीघ्र उतारा।
भौचक्का सा रहा देखता श्रेणिक मुनि का गौरव सारा॥

ऐतिहासिक सम्राट् बिम्बसार श्रेणिक द्वारा धर्म परिवर्तन
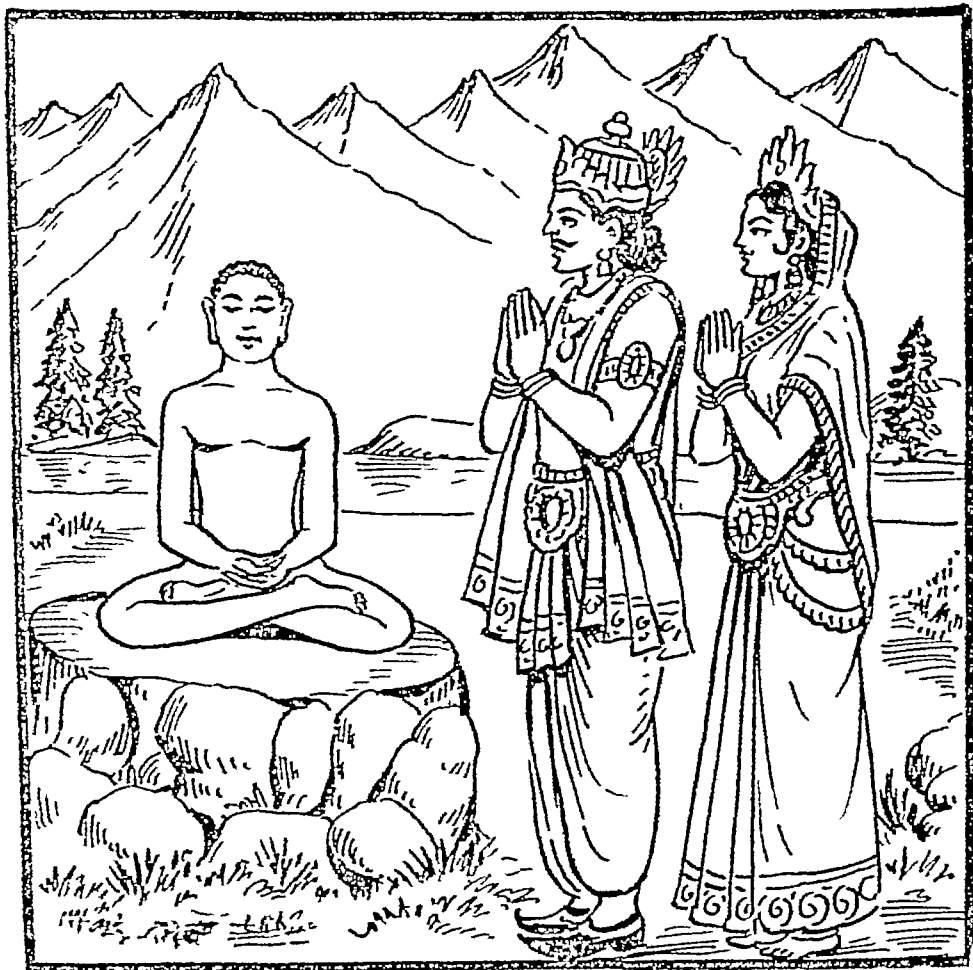
राजा श्रेणिक बौद्ध धर्म तज क्षायिक सम्यक्त्वी हो जाते ।
वर्द्धमान के पाद-मूल मे भावी तीर्थंकर पद पाते ।।
साठ हजार किये प्रभुवर से प्रश्न इन्होने समवशरण में ।
फल स्वरूप अनुयायी बन कर भू-मंडल ही गिरा चरण मे ।।

वीर-दर्शन-पिपासु मेढक का उद्धार

एक कूप मड्क भक्ति वश कमल पखुडी लेकर आया ।
श्रेणिक के गजराज पैर से कुचल शीघ्र ही सुर-पद पाया ।।
भाव भक्ति का ही महत्व है द्रव्य भक्ति पीछे चलती है ।
व्यवहारो की माया सचमुच निश्चय छाया मे पलती है ।।

दस्युराज अर्जुन माली द्वारा
प्रपीडित नागरिक

छह पुरुप एक महिला का वध करता था वह अर्जुनमाली ।
दस्युराज था महाक्रूरतम राजगृह नगरी हुई खाली ॥
उपादान था भव्य दस्यु का अत. निमित्त मिला कुछ ऐसा ।
हिंसक कर भी वीर तेज से उठा रहा जैसे का तैसा ॥

दस्युराज अर्जुन का आत्म समर्पण

जव वीर-वदना हेतु सुदर्शन सेठ उसी पथ से आये ।
अर्जुनमाली उन पर झपटा क्षुधित सिह सा तव मुँहवाये ।।
पर आत्मतेज से ठिठक गया चरणो मे मस्तक झुका दिया ।
तव सेठ सुदर्शन ने उसको अपनी वाहो मे उठा लिया ।।

प्रस्तुत प्रसग श्वेताम्बर आम्नायानुसार चित्रित ।

ले चले उसे वे वहाँ जहाँ पापी से पापी तिरते थे ।
अधमो से अधमो के भी दिन जिस समवशरण मे फिरते थे ।।
हो गया हृदय का परिवर्तन सुनकर उपदेश अहिसा का ।
धारक भी वह होगया स्वय तत्काल दिगम्बर मुद्रा का ।।

महावीर श्री का महापरिनिर्वाण

कार्तिक कृष्ण अमावस की थी सुप्रभात वह मगल वेला ।
सिद्धालय मे हुआ विराजित सन्मति प्रभु का जीव अकेला ।।
अष्ट कर्म कर नष्ट सिद्ध पद पा जाते है त्रिशला नन्दन ।
ज्ञान शरीरी सिद्ध प्रभू के चरण-कमल मे शत शत वदन ।।

अग्निकुमार देवों के मुकुटो की अग्नि द्वार अन्तिम संस्कार

अग्निकुमार देव नत मुकुटो द्वारा प्रकटित हुई कृशानु।
उसके द्वारा दग्ध हुए उनके कर्पूरी तन परमानु॥
रत्न-वृष्टि करके देवो ने पावापुर जगमगा दिया।
कार्तिक कृष्ण अमावस निशि का मोह महातम भगा दिया॥

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन का

अगला भव्य प्रकाशन

अभूतपूर्व अदृष्टपूर्व साङ्गोपाङ्ग सिद्धिदायक

सचित्र भक्तामर महाकाव्य

(१) **मूल्य काव्य खण्ड**—अन्वय, सस्कृत टीका, भाषानुवाद, भावार्थ, विशिष्ट प्रवचन।

(२) **भाषा पद्यानुवाद खण्ड**—हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती मराठी, कन्नड, आदि भाषाओ के लगभग ६० पद्यानुवाद

(३) **कथा खण्ड**—संस्कृत की कथायें, पौराणिक कथानको का औपन्यासिक ढग से नवीनीकरण, तथा पद्यमय कथायें सचित्र। हिन्दी तथा सस्कृत मे

(४) **पंचाङ्ग विधि खण्ड**—सशोधित ऋद्धि, मत्र, तत्र, यत्र साधन विधि, फलाम्नाय सहित।

(५) **यन्त्राकृति खण्ड**—प्रत्येक काव्य की दो तरह की सुन्दर सुसज्जित नवनिर्मित यत्राकृतियाँ।

(६) **पूजा विधान खण्ड**—भक्तामर महामण्डल पूजा-विधान सचित्र। तीन आचार्यों की तीन कृतियाँ।

अपूर्व विशेषता—काव्यगत प्रत्येक श्लोक के भावाङ्कन कराने वाले मुगलकालीन ५०० वर्ष प्राचीन **५० ऐतिहासिक चित्र** ग्रन्थ की कुल पृष्ठ सख्या ७५० के लगभग। इस ग्रन्थराज को जोदानी धर्मात्मा छपाना चाहे सम्पर्क स्थापित करे।

व्यवस्थापक—कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन

खुरई (सागर) म० प्र०